Vedanga_Jyotisham

03-01-1562 BCE

विषयानुक्रमणिका

विज्ञप्ति			
भूमिका			**i-vi**
संकेत सूची			**vii-xii**
प्रथम अध्याय :		**ज्योतिष साहित्य परम्परा और वेदाङ्ग ज्योतिष**	**1–55**
	1.1	वैदिक साहित्य	3
	1.2	स्मृति तथा अन्य शास्त्रीय ग्रन्थ	5
	1.3	पुराण	6
	1.4	महाकाव्य (रामायण तथा महाभारत)	8
	1.5	स्वतन्त्र ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थ	11
	1.6	ज्योतिष शब्द की व्युत्पत्ति	17
	1.7	ज्योतिष शास्त्र के स्कन्ध	18
	1.7.1	सिद्धान्त	19
	1.7.2	संहिता	19
	1.7.3	होरा	20
	1.7.4	प्रश्न	21
	1.7.5	शकुन	22
	1.8	ज्योतिष साहित्य की परम्परा में वेदाङ्ग ज्योतिष का स्थान	23
	1.8.1	वेदाङ्ग का अर्थ तथा महत्त्व	23
	1.8.1.1	शिक्षा	25
	1.8.1.2	कल्प	27
	1.8.1.3	व्याकरण	29
	1.8.1.4	निरूक्त	30
	1.8.1.5	छन्द	32

1.8.1.6 ज्योतिष 34
1.8.1.6.1 वेदाङ्ग ज्योतिष के विभिन्न संस्करण 35
1.8.1.6.1.1 ऋक् या आर्च ज्योतिष 35
1.8.1.6.1.2 याजुष् ज्योतिष 38
1.8.1.6.1.3 आथर्वण ज्योतिष 42
1.8.1.6.2 वेदाङ्ग ज्योतिष का काल निर्धारण 47
1.8.1.6.3 वेदाङ्ग ज्योतिष पर किये गये कार्य 52

द्वितीय अध्याय : काल स्वरूप और वेदाङ्ग ज्योतिष 56-98

2.1 काल शब्द का एक सामान्य परिचय 56
2.2 संस्कृत साहित्य में काल के विकास की परम्परा 60
2.2.1 ऋग्वेद संहिता 60
2.2.2 यजुर्वेद संहिता 65
2.2.3 अथर्ववेद संहिता 66
2.2.4 ब्राह्मण ग्रन्थ 69
2.2.5 उपनिषद् साहित्य 72
2.2.6 वाल्मीकि रामायण 73
2.2.7 महाभारत 75
2.3 विभिन्न शास्त्रों में काल 79
2.3.1 दर्शनशास्त्र 79
2.3.2 चिकित्सा शास्त्र 82
2.3.3 ज्योतिष शास्त्र 83
2.4 वेदाङ्ग ज्योतिष में काल 88
2.4.1 ऋक् ज्योतिष 89
2.4.2 याजुष् ज्योतिष 91
2.4.3 आथर्वण ज्योतिष 94

तृतीय अध्याय	**:**	**वेदाङ्ग ज्योतिष में वर्णित काल परिमाण की इकाईयाँ**	**99–153**
	3.1	युग	102
		3.1.1 वेदाङ्ग ज्योतिषीय युग गणना प्रणाली	103
	3.2	सम्वत्सर	105
		3.2.1 वेदाङ्ग ज्योतिषीय संवत्सर प्रणाली	107
	3.3	अयन	108
		3.3.1 वेदाङ्ग ज्योतिषीय अयन प्रणाली	110
	3.4	ऋतु	112
		3.4.1 वेदाङ्ग ज्योतिषीय ऋतु प्रणाली	115
	3.5	मास	117
		3.5.1 वेदाङ्ग ज्योतिषीय मास विचार	120
	3.6	पक्ष	122
		3.6.1 वेदाङ्ग ज्योतिषीय पक्ष सम्बन्धी अवधारणा	124
	3.7	तिथि	125
		3.7.1 वेदाङ्ग ज्योतिष वर्णित तिथि स्वरूप	127
	3.8	वार	132
		3.8.1 वेदाङ्ग ज्योतिषीय वार विचार	133
	3.9	करण	135
		3.9.1 वेदाङ्ग ज्योतिषीय करण सम्बन्धी अवधारणा	135
	3.10	मुहूर्त्त	141
		3.10.1 वेदाङ्ग ज्योतिषीय मुहूर्त्त गणना पद्धति	144
	3.11	वेदाङ्ग ज्योतिष में वर्णित अन्य सूक्ष्म कालमान	150
चतुर्थ अध्याय	**:**	**वेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्र सम्बन्धी अवधारणा**	**154–228**
	4.1	नक्षत्र शब्द की परिभाषा तथा व्युत्पत्ति	155
	4.2	नक्षत्रों का विकास क्रम	158
		4.2.1 अश्विनी	165

4.2.2	भरणी	167
4.2.3	कृत्तिका	169
4.2.4	रोहिणी	171
4.2.5	मृगशीर्ष	173
4.2.6	आर्द्रा	175
4.2.7	पुनर्वसु	177
4.2.8	पुष्य	178
4.2.9	आश्लेषा	179
4.2.10	मघा	181
4.2.11	पूर्वा फाल्गुनी	183
4.2.12	उत्तरा फाल्गुनी	185
4.2.13	हस्त	186
4.2.14	चित्रा	188
4.2.15	स्वाति	190
4.2.16	विशाखा	191
4.2.17	अनुराधा	193
4.2.18	ज्येष्ठा	195
4.2.19	मूल	196
4.2.20	पूर्वाषाढा	198
4.2.21	उत्तराषाढा	200
4.2.22	श्रवण	201
4.2.23	धनिष्ठा	203
4.2.24	शतभिषा	205
4.2.25	पूर्वाभाद्रपद	206
4.2.26	उत्तराभाद्रपद	208
4.2.27	रेवती	209

		4.2.28 अभिजित्	211
	4.3	वेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्र विचार	212
		4.3.1 ऋक् ज्योतिष	213
		4.3.2 याजुष् ज्योतिष	216
		4.3.3 आथर्वण ज्योतिष	221
पञ्चम अध्याय	**:**	**वेदाङ्ग ज्योतिष की कैलेण्डर पद्धति की गणितीय प्रक्रियाएँ**	**229-286**
	5.1	कैलेण्डर	229
	5.2	कैलेण्डर विकास की प्रक्रिया	230
		5.2.1 वैदिक कैलेण्डर	231
		5.2.2 वेदाङ्ग ज्योतिष कैलेण्डर	233
	5.3	गणित	236
		5.3.1 गणित शब्द का अर्थ	237
	5.4	वेदाङ्ग ज्योतिष के संस्करणों में प्रयुक्त गणितीय संक्रियाएँ तथा सिद्धान्त	238
		5.4.1 संख्याएँ	239
		5.4.1.1 ऋक् ज्योतिष	240
		5.4.1.1.1 एक अङ्कवाली संख्याएँ	240
		5.4.1.1.2 दो अङ्कवाली संख्याएँ	242
		5.4.1.1.3 तीन अङ्कवाली संख्याएँ	244
		5.4.1.2 याजुष् ज्योतिष	245
		5.4.1.2.1 एक अङ्कवाली संख्याएँ	245
		5.4.1.2.2 दो अङ्कवाली संख्याएँ	247
		5.4.1.2.3 तीन अङ्कवाली संख्याएँ	250
		5.4.1.3 आथर्वण ज्योतिष	251
		5.4.1.3.1 एक अङ्कवाली संख्याएँ	252

5.4.1.3.2 दो अङ्कवाली संख्याएँ 254

5.4.1.3.3 तीन अङ्कवाली संख्याएँ 259

5.4.2 गणितीय संक्रियाएँ 260

5.4.2.1 योग 260

5.4.2.1.1 ऋक् ज्योतिष 261

5.4.2.1.2 याजुष् ज्योतिष 263

5.4.2.1.3 आथर्वण ज्योतिष 265

5.4.2.2 व्यकलन 265

5.4.2.2.1 ऋक् ज्योतिष 267

5.4.2.2.2 याजुष् ज्योतिष 269

5.4.2.2.3 आथर्वण ज्योतिष 270

5.4.2.3 गुणन 271

5.4.2.3.1 ऋक् ज्योतिष 273

5.4.2.3.2 याजुष् ज्योतिष 275

5.4.2.3.3 आथर्वण ज्योतिष 277

5.4.2.4 भाग 278

5.4.2.4.1 ऋक् ज्योतिष 279

5.4.2.4.2 याजुष् ज्योतिष 281

5.4.2.4.3 आथर्वण ज्योतिष 283

5.4.2.5 त्रैराशिक 283

5.4.2.5.1 ऋक् ज्योतिष 285

5.4.2.5.2 याजुष् ज्योतिष 285

5.4.2.5.3 आथर्वण ज्योतिष 286

उपसंहार **287–293**

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची **294–307**

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

ज्योतिष साहित्य परम्परा और वेदाङ्ग ज्योतिष

"ज्योतिः शास्त्रं समग्रं प्रथमपुरुषतः स्वर्णगर्भाद्विदित्वा।
पूर्वं ब्रह्मा ततोपर्यखिलमुनिगणप्रार्थनाद्यच्चकार॥
तच्चेदं सुप्रसन्नं मृदुपदनिकरैर्गुह्यमध्यात्मरूपं।
शश्वद्विश्वप्रकाशं ग्रहचरितविदां निर्मलं ज्ञानचक्षुः॥"[1]

ज्योतिषमान आकाशीय पिण्डों का अध्ययन ही ज्योतिषशास्त्र है।[2] अतः सृष्टि के आरम्भ में सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि के सृजन के साथ ही ज्योतिषशास्त्र के विवेच्य विषय अस्तित्व में आ गये। प्रारम्भ में यह शास्त्र वेदों के समान ही श्रुति परम्परा द्वारा संरक्षित रहा तथा कालान्तर में ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्धित स्वतंत्र साहित्य की भी रचना हुई। वैदिक संहिताओं में उपलब्ध ज्योतिष शास्त्रीय छिटपुट उल्लेखों से लेकर ज्योतिष शास्त्रीय स्वतंत्र साहित्यों के रचना क्रम के मध्य एक लम्बी कालावधि का अवकाश रहा है। स्पष्ट है कि ज्योतिष शास्त्र की इस समृद्ध परम्परा को निश्चित होने में एक लम्बा समय लगा है। अतः ज्योतिष साहित्य की परम्परा का अध्ययन करने के लिए संस्कृत साहित्य के विकास क्रम को ही आधार मानकर ज्योतिष साहित्य विषयक परम्परा को स्पष्ट किया जा सकता है।

सृष्टि के प्रारम्भ में जब पहली बार मनुष्य ने आकाश की ओर आँखे उठाई होगी तभी सूर्य, चन्द्र तथा तारागणों को देखकर अचम्भिक हुआ होगा और उसके मन में इन ज्योतिषमान पिण्डों के प्रति अवश्य ही जिज्ञासा उत्पन्न हुई होगी। इन

---

1 व०सं०; 1-2

2 शास्त्री, नेमिचन्द्र - भारतीय ज्योतिष ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2003, पृ० 17

ज्योतिषमान पिण्डों के संबंध में अध्ययन के साथ ही ज्योतिष शास्त्र की परम्परा का प्रारम्भ माना जा सकता है। ऋग्वेद का नासदीय सूक्त प्रारम्भिक मानव के इसी ऊहा-पोह की स्थिति को दर्शाता है जब मानव इन पिण्डों की उत्पत्ति, स्वरूप आदि को समझने के लिए प्रयासरत रहा होगा।[1] शनैः शनैः मानव की यह जिज्ञासा ज्ञान का स्वरूप ग्रहण करने लगा। भारतीय ज्योतिषशास्त्र की परम्परा इस शास्त्र के प्रवर्तक के रूप में 18 आचार्यों का नाम स्मरण करती है।[2]

जहाँ तक ज्योतिष शास्त्र से संबंधित साहित्य की परम्परा का प्रश्न है तो यह परम्परा तो मनुष्य के अस्तित्व में आने के साथ ही हो गई। हाँ यह अवश्य है कि उस समय यह शास्त्र न तो अत्यधिक विकसित ही था और न ही अपना लिखित स्वरूप ही प्राप्त कर सका था। परन्तु अपने नाम की परिभाषा के अनुसार "ज्योतिषमान पिण्डों के अध्ययन"[3] के रूप में अवश्य प्रारम्भ हो गया था। इस शास्त्र का विकास अत्यन्त ही अल्प गति से हुआ, परन्तु इस साहित्य के विकास से सम्बन्धित समस्त सोपानों का दिग्दर्शन उपलब्ध संस्कृत साहित्य के द्वारा अवश्य हो जाता है। अतः इस शास्त्र की परम्परा को विभिन्न साहित्यिक रचनाओं के आधार पर सहज ही स्पष्ट किया जा सकता है-

---

1 को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत अजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग् देवा अस्य विसर्जनेनाथ को वेद यत् आबभूव।।
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे त्योमन् सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद।।
- ऋ०; 10-129-(6-7)

2 ब्रह्माचार्यो वशिष्टोऽत्रिर्मनुः पौलस्त्यरोमशौ।
मरीचिरङ्गिरात्यासो नारदः शौनको भृगुः।।
च्यवनो यवनो गर्गः कश्यपश्च पराशरः।
अष्टादशैते गंभीरा ज्योतिः शास्त्र प्रवर्त्तकाः।।
- ना०सं०; 1 (2-3)

3 शर्मा, हरिदत्त - ज्योतिष विश्व कोश, सुबोध पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2000, पृ० 220

1. वैदिक साहित्य
2. स्मृति साहित्य
3. पुराण साहित्य
4. महाकाव्य
5. स्वतंत्र ज्योतिष शास्त्रीय ग्रन्थ

1.1 वैदिक साहित्य

वैदिक साहित्य को ज्योतिष शास्त्र की रचनाओं का आधार बनाने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि वैदिक साहित्य से पूर्व ज्योतिष शास्त्र का अस्तित्व था ही नहीं। ज्योतिष साहित्य की परम्परा के प्रथम सोपान के रूप में वैदिक साहित्य को प्रस्तुत करने का एकमात्र कारण यह है कि वैदिक साहित्य को समस्त विद्वानों ने विश्व की सर्वप्राचीन रचना के रूप में स्वीकार किया है। वैदिक साहित्य में ज्योतिष विषयक विभिन्न तथ्य प्राप्त होते हैं। सर्वप्रथम सूर्य को सात घोड़ों, रथ, तीन नाभियों से युक्त करते हुए इसे समस्त भुवन का आधार कहा गया है।[1]

वैदिक साहित्य में ग्रहों की कक्षा से सम्बन्धित तथ्यों की कमी पाई जाती है। इनसे सम्बन्धित सिद्धान्त अस्पष्ट हैं। परन्तु तैत्तिरीय संहिता के कुछ अंश ऐसे हैं जिनके द्वारा विभिन्न ज्योतिर्मान पिण्डों की अलग-अलग कक्षाओं का ज्ञान होता है। इस तथ्य से संबंधित मन्त्र में कहा गया है कि सूर्य आकाश की, चन्द्रमा नक्षत्र मण्डल की तथा वायु अन्तरिक्ष की परिक्रमा करते हैं और अग्निदेव पृथ्वी पर निवास

[1] सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनाम।
त्रिनाभिचक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनानि तस्थुः।।
- ऋ०; 1-164-2

करते हैं।[1] ऐतरेय ब्राह्मण के एक मन्त्र में पृथिवी के गोलत्व, निराधारत्व और दिन रात के कारण को स्पष्ट किया गया है।[2]

वैदिक साहित्य में नक्षत्र से सम्बन्धित उल्लेखों का बाहुल्य है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि विश्वदर्शी सूर्य के आते ही नक्षत्र और रात्रि चोर की तरह भाग जाते हैं।[3] तैत्तिरीय ब्राह्मण में नक्षत्रों की आकृति प्रजापति के रूप में मानी गई है। इस नक्षत्र रूपी प्रजापति का सिर चित्रा, हस्त हाथ, निष्टया (स्वाति) हृदय, विशाखा जंघा और अनुराधा पाद है।[4] तैत्तिरीय संहिता में ऋतुओं के नामकरण के अतिरिक्त उन मासों का भी उल्लेख किया गया है जो इन ऋतुओं में रहते हैं।[5] वाजसनेयी संहिता में पञ्च सम्वत्सर युग का प्रचलन प्राप्त होता है।[6] 'वर्ष' शब्द अपने मूलभूत रूप में

---

1 यथाग्निः पृथिव्या समनमदेवं मह्यं भद्रा, सन्नतयः सन्नमन्तु वायवे समनमदन्तरिक्षाय समनमद् यथा वायुरन्तरिक्षेण सूर्याय समनमद् दिवा समनमद् यथा सूर्यो दिवा चन्द्रमसे समनमन्नक्षेत्रमयः समनमद् यथा चन्द्रमा नक्षत्रैर्वरुणाय समनमत्।

– तै०सं०; 7-5-23

2 स वा एष न कदाचनास्तमेति नोदेति तं यदस्तमेतीति मन्यन्तह्न एव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यते रात्रिमेवावस्तात् कुरुतेहः परस्तादध यदेनं प्रातरूदेतीति मन्यन्ते रात्रे रेव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्य-स्यतेऽहरेवावस्तात् कुरूते रात्रीं परस्तात् स वा एष न कदाचन निम्नोचति।

– ऐ०ब्रा०; 14-6

3 अपे त्ये तावयो यथा नक्षत्रा यन्त्युक्तुभिः। सूराय विश्वचक्षसे।।

– ऋ०; 1-50-2

4 यो वै नक्षत्रियं प्रजापतिं वेद। उभयोरेनं लोकयोर्विदुः। हस्त एवास्य हस्तः। चित्रा शिरः। निष्ट्यां हृदयं। उरु विशाखे। प्रतिष्ठानुराधाः एष वै नक्षत्रियः प्रजापतिः।

– तै०ब्रा०; 1-5-2

5 मधुश्च माधवश्च, वासान्तकावृतू शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृत् नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृत् इषश्चोर्जश्च शारदावृतू सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू।

– तै०सं०; 4-4-11

6 संवत्सराय पर्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीभिद्वत्सरायातिष्यकद्दरीं वत्सराय विजर्जरा। छ्ं संवत्सराय पलिक्नीम्।।

– वा०सं०; 30-16

वैदिक साहित्य में कम ही बार प्रयुक्त हुआ है। शतपथ ब्राह्मण में पहली बार इस शब्द के समानार्थक शब्द 'सम्वत्सर' का प्रयोग आज के तात्कालिक अर्थ में अवश्य हुआ है।[1] वर्ष में बारह महीने होते हैं[2] और 360 दिन और 360 रात्रि अर्थात् कुल 360 अहोरात्र का भी वर्णन ऋग्वेद में प्राप्त होता है।[3] वैदिक साहित्य में अयन सम्बन्धी विषय के भी दिग्दर्शन प्राप्त होते हैं जहाँ काफी हद तक सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन को स्पष्ट कर दिया गया है।[4]

1.2 स्मृति तथा अन्य शास्त्रीय ग्रन्थ

स्मृति ग्रन्थों में सर्वप्रथम याज्ञवल्क्य स्मृति पर दृष्टिपात करने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि स्मृति ग्रन्थ में ज्योतिषशास्त्र विषयक सिद्धान्त प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। नव-ग्रहों का नाम इसी ग्रन्थ के आचाराध्याय में प्राप्त हो जाता है।[5] युग के सन्दर्भ में मनुप्रोक्त युगपद्धति के प्रचलन का भी पता चल जाता है।[6] इसी ग्रन्थ के

---

1 ता वै षड्दधात्। षड् वाऽऋतवथ्ठंसंत्वतसरस्य संवत्सरो यज्ञे थ्ठं प्रजापति थ्ठं स यावनेव यज्ञो यावत्यस्य मात्रा तावती मिर्द्दक्षयति।

- श०ब्रा०; 2-2-3

2 द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परिघामृतस्य। आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विशंतिश्च तस्थुः।।

- ऋ०; 1-164-11

3 द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानिक उ तच्चिकेत। तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिताः वष्टिर्न चलाचलासः।।

- वही; 1-164-48

4 तस्मादित्यः षण्मासो दक्षिणेनैति षडुत्तरेण।

- तै०सं०; 6-5-3

5 सूर्यः सोमो महीपुत्रः सोमपुत्रो बृहस्पतिः।
शुक्र शनैश्चरो राहुः केतुश्चैते ग्रहाः स्मृताः।।

- याज्ञ० स्मृ०; आचाराध्याय, 296

6 मन्वन्तरैर्युगप्रात्या।

- वही; व्यवहाराध्याय, विक्रीयासंप्रदानप्रकरण, 173

आचाराध्याय का एक ही श्लोक अमावस्या, अष्टमी तिथि, कृष्ण पक्ष, अयन, ग्रहण आदि समस्त विषयों का नामोल्लेख कर देता है।[1] फलित ज्योतिष के प्रचलन को समर्थन देने वाला श्लोक भी इसी ग्रंथ में उपलब्ध है।[2] इसके अलावा अशुभ फल उत्पन्न करने वाले दुष्ट ग्रहों की शान्ति का विधान भी किया गया है।[3] मनुस्मृति में कुछ विशेष रूप से ज्योतिष विषयक सामग्री का प्रस्तुतिकरण प्राप्त होता है। निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त्त तथा अहोरात्र के नामोल्लेख के साथ-साथ इनके प्रमाण का भी वर्णन मिल जाता है।[4] इसी ग्रन्थ में आगे कृष्ण पक्ष, शुक्ल पक्ष, दक्षिणायन, उत्तरायण, चतुर्युग आदि का विशेष उल्लेख किया गया है।[5] वात्स्यायन कृत 'कामसूत्र' में भी ज्योतिषशास्त्र संबंधी काफी चर्चा प्राप्त हो जाती है।[6]

1.3 पुराण

पुराण संस्कृत साहित्य तथा भारतीय संस्कृति के अमूल्य धरोहर है। भारतवर्ष के इतिहास के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व धार्मिक स्थिति

---

1 अमावस्याष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम्।
द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिर्विषुवत्सूर्यसंक्रमः।।
व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः।।
- याज्ञ० स्मृ०; आचाराध्याय, श्राद्धप्रकरणम्, 217

2 गृहसंयोगजैः फलः।
- वही; प्रायश्चिताध्याय, 171

3 यस्य यश्च ग्रहो दुष्टः स तं यत्नेन पूजयेत्।
- वही; आचाराध्याय, ग्रहशान्तिप्रकरण, 307

4 निमेषा दशचाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्रु ताः कलाः।
त्रिंशत् कला मुहूर्त्तः स्यात् अहोरात्रार्ध तु तावतः।।
- मनु०; 1-24

5 वही; 1-(65-73)

6 दैवचिन्तकरूपश्च शुक्रननिमित्तग्रहलग्नबललक्षणदर्शनेन नायकस्य भविष्यन्तमर्थयोगं कल्याणमनुवर्णयेत्।
- का०सू०; 3-1-6

को स्पष्ट करने के लिए पुराण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। ज्योतिष शास्त्र के सन्दर्भ में नारद महापुराण उल्लेखनीय है। इस पुराण के पूर्व भाग के द्वितीय पाद के पचासवें अध्याय से लेकर छापनवें अध्याय तक ज्योतिषशास्त्र विषय सिद्धान्त, संहिता तथा जातक शास्त्र का अलग-अलग विशद उल्लेख किया गया है।[1] वायु पुराण के पचासवें अध्याय से लेकर 53वें अध्याय पर्यन्त ग्रहों के परिमाण, उनके गमन के कारण स्थिति, ग्रहों के साथ-साथ नक्षत्रों की उत्पत्ति पर भी प्रकाश डाला गया है।[2] इसके अलावा सूर्य की विभिन्न राशियों तथा नक्षत्रों में गमन के अनुसार उत्तरायण तथा दक्षिणायन का वर्णन प्राप्त होता है। इसी प्रकार अश्विन्यादि 28 नक्षत्रों में श्राद्ध के कारण अलग-अलग फलोत्पत्ति को भी बताया गया है।[3] लिङ्गपुराण का भी 57 से 61वां अध्याय ज्योतिष विषयक चर्चा पर ही केन्द्रित है।[4] अग्निपुराण का 121वां अध्याय भी तिथि, नक्षत्र, वार, ग्रह, सूर्य, चन्द्र आदि विषयों पर ही केन्द्रित हैं।[5] ब्रह्मवैवर्त पुराण में श्रीकृष्ण के जन्मकालिक ग्रह की स्थिति का वर्णन भी इस पुराण में ज्योतिष शास्त्र से संबंधित तथ्यों की उपस्थिति को बल प्रदान करता है।[6] इसी ग्रन्थ के श्रीकृष्ण जन्मखण्ड के 82वें अध्याय में स्वप्न से संबंधित वर्णन उपलब्ध होता है।[7]

---

[1] ना०महा०; 1-2 (50-56)

[2] वा०पु०; 50-53 अध्याय पर्यन्त

[3] वही

[4] लि०पु०; 51-61 अध्याय पर्यन्त

[5] अ०पु०; 121 अध्याय

[6] वेदातिरिक्ते दुर्जेये सर्वोत्कृष्टे शुभेक्षणे।
शुभ ग्रहैदृष्टलग्नेऽप्यदृष्टे चाशुभग्रहै:।।
अर्धरात्रे समुत्पन्ने रोहिण्यामष्टमी तिथौ।
जयन्तियोगयुक्ते चाप्यर्धचन्द्रोदये मुने।।

- ब्रह्म०पु०; श्रीकृष्ण जन्मखण्ड, सप्तम अध्याय

[7] वही; 82वाँ अध्याय

मार्कण्डेय पुराण में विवाह से संबंधित चर्चा है[1] जबकि भविष्य पुराण में ग्रह नक्षत्रों के वर्णन के साथ-साथ वराहमिहिर का भी परिचय दिया गया है।[2]

स्पष्ट है कि पौराणिक ग्रन्थों में प्राप्त तथ्य इस दिशा की ओर इंगित करते हैं कि तत्कालीन समाज में ज्योतिष शास्त्र प्रचलित था और विकसित अवस्था को प्राप्त करने की ओर अग्रसर था। ग्रहों, नक्षत्रों, राशियों, वर्गों आदि के साथ-साथ इनके मानव शरीर पर पड़ने वाले प्रभावों का भी अध्ययन प्रारम्भ हो चुका था।

1.4 महाकाव्य (रामायण तथा महाभारत)

महाकाव्यों विशेषकर महाभारत तथा रामायण की संस्कृत साहित्य में विशेष प्रतिष्ठा है। महाभारत को तो भारतीय संस्कृति का विश्वकोश कहा जाता है। इस ग्रन्थ में अन्य विषयों के समान ही ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धी प्रभूत सामग्री उपलब्ध है। ज्योतिषशास्त्र से संबंधित तथ्य इतने अधिक प्रमाणिक, सूक्ष्म और विश्वसनीय हैं कि इन वर्णनों को आधार मानकर महाभारत, उसमें वर्णित कौरव पाण्डवों का युद्ध आदि विषयों का काल-निर्धारण तक कर दिया गया है।[3] महाभारत में वर्णित युग पद्धति वेदाङ्ग ज्योतिष के समान ही थी। इसका संकेत पाण्डवों के जन्म

---

[1] दैवत्यक्ष न वै भद्रे चन्द्रयोगे व्यवस्थितम्।
अन्यानि सन्ति ऋक्षाणि शुभ्र वैवाहिकानि ते।।
– मार्क०पु०; 75 अध्याय

[2] वराहमिहिराचार्यो ज्योतिः शास्त्रप्रवर्तकः।
लङ्कामगस्य तत्रैव ज्योतिः शास्त्रमधीतवान।।
जातकं फलितञ्चैव मूकप्रश्नं तथादितः।
पुनरुद्धारिते तेन त्रिधाभूतं सनातनम्।।
– भवि०पु०; 4-8

[3] Vedavyas, E. – ***Astronomical Dating of the Mahabharata War,*** Agam Kala Prakashan, Delhi, 1986

वर्णन[1] तथा इनके वनवास समाप्ति विषयक वर्णन[2] में मिल जाता है। काल की विभिन्न ईकाईयों यथा काष्ठा, कला, मुहूर्त्त, दिन-रात आदि संज्ञाओं पर भी यहाँ चर्चा की गई है।[3] अभिजित् नक्षत्र का भी वर्णन मुहूर्त्त विषयक ज्ञान की गम्भीरता को दर्शाने के लिए पर्याप्त है।[4] नक्षत्रों के नामोल्लेख के अतिरिक्त इनकी आकाशीय संरचना के बारे में भी वर्णन मिल जाता है।[5] सम्पूर्ण महाभारत में कई बार सूर्य ग्रहण तथा चन्द्र ग्रहण आदि का उल्लेख किया गया है। पाण्डवों के वनवास के समय तथा कौरव पाण्डवों के युद्ध के पूर्व भी महर्षि वेदव्यास द्वारा

---

1 अनुवत्सरं जाता अपि ते कुरूसत्तमाः।
पाण्डुपुत्रा व्यराजन्त पञ्चसंवत्सरा इव।।
- महा०; आदिपर्व, अध्याय 124-22

2 तेषां कालातिरेकेण ज्योतिपाञ्च व्यतिक्रमात्।
पञ्चमे पञ्चमे वर्षे द्वौ मासानुपजायत:।।
एषामभ्यधिका: मासा: पञ्च च द्वादशपक्षा:।
त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्तते मति:।।
- वही; विराटपर्व, 52-(3-4)

3 क) संवत्सरान् ऋतून मासान् पक्षानथ लवान् क्षणान्।
- वही; शान्तिपर्व, 16-14
ख) काष्ठा, कला मुहूर्त्ताश्च दिवा रात्रिस्तथा लवा:।।
- वही; 7-21

4 ऐन्द्रे चन्द्रसमायुक्ते मुहूर्त्तोभिजितेष्टमे।
दिवा मध्यगते सूर्ये तिथौ पूर्णेतिपूजिते।।
- वही; आदिपर्व, 123-6

5 क) तावुभौ धर्मराजस्य प्रवीरौ परिवारर्वत:।
रथाभ्यासे चकाशेते चन्द्रस्येव पुनर्वसु।।
- वही; कर्णपर्व, 49-28
ख) पञ्चभिर्भ्रातृभि: पार्थैद्रोण: परिवृत्तो बभौ।
पञ्चतारेण संयुक्त: सावित्रेणेव चन्द्रमा:।।
- वही; आदिपर्व, 135-30

ग्रहण संबंधी तथ्यों का उल्लेख मिल जाता है।[1] नवग्रहों में से मात्र- सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा शनि का ही नामोल्लेख किया गया है जबकि ग्रह रूप में राहु तथा केतु का नाम कहीं नहीं लिया गया है।[2]

इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में भी ज्योतिष शास्त्र से संबंधित अनेक उद्धरण प्राप्त हो जाते हैं। श्रीरामचन्द्र के जन्मकालीन आकाशीय स्थिति के वर्णन के समय मास, तिथि, नक्षत्र, ग्रह, गृहों की उच्चादि स्थितियाँ, लग्न आदि ज्योतिषीय तथ्यों का दिग्दर्शन प्राप्त होता है।[3] इसी प्रकार राम तथा दशरथ के मध्य संवाद में भी अशुभ स्वप्नादि का निरूपण प्राप्त होता है।[4] इन स्वप्नों के कारण उत्पन्न शुभाशुभ फलों की प्राप्ति का वर्णन तत्कालीन समाज में फलित ज्योतिषशास्त्र के प्रसार को भी दर्शाता है।

---

1 राहुग्रसदादित्यमपर्वणि विशांपते।
- महा०; सभापर्व, 79-19

2 सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोङ्गारक एव च।
इन्द्रो विवस्वान् दीप्तांशु शुचिः शौरिः शनैश्चरः।।
- वही; वनपर्व, 3-17

3 ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ।।
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्यताविन्दुना सह।।
प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम्।
कौशल्याजन्मद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्।।
- वा०रा०; बालकाण्ड, 18वाँ सर्ग, 7-10

4 अपि चाद्याशुभान् रामस्वप्ने पश्यामि दारुणाम्।
सा निर्धाता महोल्काश्च पतिता हि महाश्वनाः।।
अवष्टब्धं च मे राम नक्षत्रं दारुणैर्ग्रहैः।
आवेदयन्ति दैवज्ञाः सूर्याऽऽगारकराहुभिः।।
प्रायेण हि निमित्तानां ईदृशानां समुद्भवे।
राजाहि मृत्युमाप्नोति वाऽपदमृच्छति।।
- महा०; अयोध्याकाण्ड, 4वां सर्ग, 17-19

राज्याभिषेक के लिए पुष्य योग नामक मुहूर्त्त की प्रशंसा भी इस महाकाव्य के ज्योतिषीय महत्त्व का प्रतिपादन करता है।[1]

1.5 स्वतन्त्र ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थ

सृष्टि के प्रारम्भ के आकाशस्थ ज्योतिषमान पिण्डों के अवलोकन तथा निरीक्षण से प्रारंभ हुआ यह शास्त्र अत्यन्त मन्थर गति से विकास मार्ग पर चला। वैदिक साहित्य में जहाँ ज्योतिषशास्त्रीय सिद्धान्त अपने बीजरूप में प्राप्त होते हैं। वही सूत्र साहित्य, महाकाव्यों तथा पुराणों में ज्योतिष शास्त्र अपने विराट स्वरूप में दिखाई देता है। परन्तु काल के प्रवाह में अनेक ज्योतिष शास्त्रीय अमूल्य ग्रन्थों की रचना हुई जो आज भी प्रासङ्गिक है। इस विपुल स्वतन्त्र ज्योतिषशास्त्रीय साहित्य की परम्परा को स्पष्ट करने के लिए इसे सिद्धान्त, संहिता और होरा (जातक) इन तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। इन ग्रन्थों के प्रणयन का मूल कारण यह था कि समय के साथ-साथ यह शास्त्र जीवन के विशाल क्षेत्र को प्रभावित करने लगा था। जहाँ प्रारंभिक काल में इसका उद्देश्य मात्र यज्ञादि के लिए शुभाशुभ काल निर्धारण था वहीं कालान्तर में यह शास्त्र मनुष्यों से लेकर सम्पूर्ण राष्ट्र पर प्रभाव डालने वाला माने जाना लगा था इस क्रम में ज्योतिषशास्त्र के समस्त पाँचों स्कन्धों पर स्वतंत्र ग्रन्थ रचे गए। अतः अब क्रमवार रूप से इन स्कन्धों से सम्बन्धित साहित्य का प्रस्तुतिकरण किया जा रहा है-

सिद्धान्तकालीन ग्रन्थों के प्रणयन का काल शकपूर्व लगभग 500 से लेकर आज तक माना जा सकता है।[2] प्राचीन सिद्धान्त ग्रन्थों के ऐतिहासिक अध्ययन की

---

1 अद्य चन्द्रोऽभ्युपगतः पुष्यावपूर्वपुनर्वसु।
श्वः पुष्ययोगं नियतं वक्ष्यन्ते दैवचिन्ताकाः।।
- वा०रा०; अयोध्याकाण्ड, 4वां सर्ग, 21

2 दीक्षित, शंकरबालकृष्ण - भारतीय ज्योतिष, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1963, पृ० 209

दृष्टि से आचार्य वराहमिहिर प्रणीत 'पञ्चसिद्धान्तिका' अति महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ में उन्होंने पौलिश, रोमक, वसिष्ठ, सूर्य तथा पैतामह संज्ञक पाँच प्राचीन ग्रन्थों का उल्लेख किया है।[1] वराहमिहिर द्वारा रचित इस ग्रन्थ के समय पौलिश सिद्धान्त बहुत स्पष्ट था, जबकि रोमक सिद्धान्त में कुछ अशुद्धि आ गई थी। सूर्य सिद्धान्त इन दोनों ग्रन्थों से भी अधिक स्पष्ट था जबकि वासिष्ठ तथा पैतामह सिद्धान्तों में बहुत अधिक अशुद्धि आ गई थी।[2] तात्पर्य यह है कि इनके गणित द्वारा लाई गई स्थिति आकाश स्थिति से नहीं मिलती थी। पितामह सिद्धान्त का वेदाङ्ग ज्योतिष की पद्धति से अत्यधिक साम्य होने के कारण इस ग्रन्थ का निर्माण काल शकारम्भ से बहुत प्राचीन माना जाता है।[3] वासिष्ठ सिद्धान्त की रचना 421 शक् के बाद हुई।[4] मूल रोमक सिद्धान्त का रचना काल ईसा पूर्व 150 पश्चात् तथा टालमी के समय ईस्वी सन् 150 के पूर्व का है।[5] जबकि आधुनिक रोमक सिद्धान्त शक् 427 से अधिक प्राचीन का नहीं है।[6] वर्तमान सूर्य सिद्धान्त का काल लगभग 500 ई० है।[7] यद्यपि मूल ग्रन्थ में इसे सतयुग की रचना माना गया है।[8] इस सिद्धान्त ग्रन्थों के अतिरिक्त 'सोम सिद्धान्त'

---

[1] पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहास्तु पञ्चसिद्धान्ताः।
- पञ्च० सि०; 1-3

[2] पौलशति विस्फुटोऽसौ तस्यासन्नस्तु रोमकः प्रोक्तः।
स्पष्टतरः सावित्रः परिशेषौ दूरविभ्रष्टौ।।
- वही; 1-4

[3] दीक्षित, शंकरबालकृष्ण - भारतीय ज्योतिष, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1963, पृ० 212

[4] वही; पृ० 213

[5] वही; पृ० 221

[6] वही; पृ० 223

[7] गोरखप्रसाद - भारतीय ज्योतिष का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2004, पृ० 153

[8] अल्पावशिष्टे तु कृते मयानामा महासुरः।
रहस्यं परमं पुण्यं जिज्ञासुर्ज्ञानमुत्तमम्।।
- सू०सि०; मध्यमाधिकार, 1-2

नामक ग्रन्थ भी प्राप्त होता है जो चन्द्रमा द्वारा शौनक ऋषि को प्रदान किया गया है।[1] इस ग्रन्थ में 10 अध्याय और 335 अनुष्टुप श्लोक है।[2] इन प्राचीन ग्रन्थों के बाद आर्यभट्ट का नाम आता है। इनका जन्म शक् 398[3] में कुसुमपुर अर्थात् पटना में हुआ था।[4] इनकी रचना आर्यसिद्धान्त में दशगीतिक, गणित, कालक्रिया और गोल नामक चार पाद हैं। अन्य सिद्धान्त ग्रन्थों के रचनाकार के रूप में श्रीषेण और विष्णुचन्द्र प्रमुख हैं और इनका काल शक 427 और 550 के बीच का माना जाता है।[5] ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त तथा खण्डखाद्यकरण ग्रन्थों के कर्त्ता ब्रह्मगुप्त का काल शक 520 है।[6]

---

1 दीक्षित, शंकरबालकृष्ण – भारतीय ज्योतिष, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1963, पृ० 259

2 वही

3 षष्ट्यब्दानां पष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः।
त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मर्म जन्मनोऽतीताः।।
– आर्य; कालक्रियापाद, 10

4 आर्यभट्स्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम्।
– वही; गणितपाद–1

5 दीक्षित, शंकर बालकृष्ण – भारतीय ज्योतिष, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1963, पृ० 299

6 श्रीचापवंशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपाणाम्।
पञ्चाशत् संयुक्तैर्वर्षशतैः पञ्चभि 550 रतीतैः।।
ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तः सज्जनगणितज्ञगोलवित्प्रीत्यै।
त्रिशद्वर्षेण कृतो विष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन।।
– ब्र०सि०; संज्ञाध्याय, 7–8

इसी प्रकार लल्लकृत धीवृद्धिदतन्त्र (शक 560)[1], श्रीधर कृत त्रिशतिका (शक 775)[2], महावीर कृत सार संग्रह (शक 775)[3] मनकृत वृहन्मानसकरण (800 शक्)[4] मुंजाल कृत लघुमानस (शक 854)[5] आदि उल्लेखनीय है। शक् 875[6] के करीब के द्वितीय आर्यभट्ट सिद्धान्त स्कन्ध के प्रमुख रचनाकार हैं। इनके ग्रन्थ आर्य सिद्धान्त में 18 अध्याय और 625 आर्याएँ है। ग्रन्थकारों की रचनाओं पर टीका लिखने की बड़ी प्राचीन परम्परा रही है। ऐसे में भट्टोत्पल का नामोल्लेख आवश्यक हो जाता है। इन्होंने वराहमिहिर के कई ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखी हैं। भास्कराचार्य की रचना का उल्लेख किए बिना सिद्धान्त ज्योतिष के साहित्य का वर्णन अधूरा रह जाता है। भास्कराचार्य का जन्म शक् 1036 में हुआ था।[7] इनकी रचनाएँ सिद्धान्त शिरोमणि और करणकुतूहल अत्यन्त प्रसिद्ध है।[8] संहिता स्कन्ध के वर्णन क्रम में सर्वप्रथम 'नारदसंहिता' का नाम आता है। इसमें 55 अध्याय हैं। इसमें ग्रहचार आदि का वर्णन किया गया है। इसी ग्रन्थ में ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक 18 आचार्यों का उल्लेख

---

1 दीक्षित, शंकर बालकृष्ण - भारतीय ज्योतिष, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1963, पृ० 313

2 वही; पृ० 316

3 वही; पृ० 317

4 वही; पृ० 318

5 वही; पृ० 319

6 वही; पृ० 321

7 रसगुणपूर्णमही समशकनृपसमयेऽभवन्मयोत्पत्तिः।
रसगुणवर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणि रचिता।।
- सि०शि०; प्रश्नाध्याय, 58

8 दाहाल, लोकमणि - भारतीय ज्योतिशास्त्रस्येतिहासः, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2003, पृ० 99

सर्वप्रथम प्राप्त होता है।[1] महर्षि वशिष्ठकृत वशिष्ठ संहिता का भी अस्तित्व है। पौरुषेय ग्रन्थों में आचार्य वराहमिहिर कृत बृहत्संहिता की बड़ी प्रतिष्ठा है।[2] इनका जन्म ईस्वी सन् 505 में हुआ था।[3] आचार्य लल्लकृत 'रत्नकोश' नामक ग्रन्थ की रचना 560 शक् में हुई।[4] इसी प्रकार श्रीपतिकृत रत्नमाला (शक् 961)[5], राजमार्तण्ड (शक् 964)[6], लक्ष्मणसेन कृत अद्भुत सागर (1089 शक्)[7], पद्मनाथ मिश्रकृत व्यवहारप्रदीप (शक् 964)[8], कालिदास कृत 'ज्योतिर्विदाभरण' (शक् 1164)[9] आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त मुहूर्त्त ग्रन्थों में मुहूर्तमार्तण्ड (शक् 1493)[10] अनन्तदैवज्ञ कृत मुहूर्त्तचिन्तामणि (शक् 1522)[11], विट्ठलदीक्षित कृत मुहूर्त्तकल्पद्रुम (शक् 1545)[12],

---

[1] ब्रह्माऽऽचार्यो वसिष्ठोऽत्रिर्मनुः पौलस्त्यरोमशौ।
आचार्यः सूर्य इति परम्परा।
मरीचिरङ्गिरा व्यासो नारदः शौनको भृगुः।।
च्यवनो यवनो गर्गः कश्यपश्च पराशरः।
अष्टादशैते गम्भीरा ज्योतिः शास्त्र प्रवर्तकाः।।
– ना०सं०; 1-(2-3)

[2] गोरखप्रसाद – भारतीय ज्योतिष का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2004, पृ० 116

[3] शास्त्री, नेमिचन्द्र – भारतीय ज्योतिष, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2004, पृ० 98

[4] दाहाल, लोकमणि – भारतीय ज्योतिशास्त्रस्येतिहासः, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2003, पृ० 125

[5] वही; पृ० 126

[6] वही

[7] वही; पृ० 127

[8] वही; पृ० 129

[9] वही; पृ० 130

[10] वही; पृ० 132

[11] वही; पृ० 133

[12] वही; पृ० 134

रघुनाथ दैवज्ञ कृत मुहूर्तमाला (शक् 1582)[1], महादेव कृत मुहूर्त्तदीपक (शक् 1583)[2], गणपति दैवज्ञ कृत मुहूर्त्त गणपति (शक् 1607)[3] गंगाधर शास्त्री कृत मुहूर्तसिन्धु (शक् 1805)[4] नरपति कृत नरपतिजयचर्या स्वरोदय (शक् 1097)[5] प्रमुख है।

फलितस्कन्ध संबंधित ग्रन्थों में सर्वप्रथम 'बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्' ग्रन्थ का नाम लिया जाता है। इस ग्रन्थ के रचनाकार के रूप में महर्षि पराशर का नाम लिया जाता है।[6] यह ग्रन्थ शताध्यायी कहा गया है। इसमें फलित ज्योतिष से सम्बन्धित समस्त तथ्य यथा ग्रह, राशि, गृह मैत्री, ग्रह दृष्टि, ग्रहों के उच्च नीच, अष्टकवर्ग, दशा इत्यादि विषयों पर विस्तार से चर्चा की गई है। इस रचना का काल 7-8वीं सदी माना जाता है।[7] नारदकृत होराशास्त्र का उल्लेख उनकी नारद संहिता से प्राप्त होता है।[8] पौरुषेय ग्रन्थों में वराहमिहिर कृत 'बृहज्जातक' का नाम लिया जाता है। इन्होंने एक अन्य ग्रन्थ 'लघुजातकम्' का भी प्रणयन किया। इनका काल शक 427 माना जाता है।[9] शक् 500 में ग्रन्थकार आचार्य कल्याण वर्मा ने 'सारावली' की रचना की।[10] यह

---

1 दाहाल, लोकमणि - भारतीय ज्योतिशास्त्रस्येतिहासः, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2003, पृ० 134

2 वही

3 वही

4 वही

5 वही

6 शास्त्री, नेमिचन्द्र - भारतीय ज्योतिष, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2004, पृ० 81

7 वही

8 उक्त्वा स्कन्धद्वयं पूर्वं संहितास्कन्धमुत्तमम्।
- ना०सं०; 1-8

9 दाहाल, लोकमणि - भारतीय ज्योतिशास्त्रस्येतिहासः, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2003, पृ० 172

10 वही; पृ० 173

अत्यन्त ही विस्तृत ग्रन्थ है और यवन ज्योतिष का भी इस पर प्रभाव दिखता है केशवकृत (1456 ई०)[1] जातक पद्धति, ताजिक पद्धति, ढुंढिराज (1541)[2] कृत 'जातकाभरणम्', आचार्य नीलकण्ठ कृत (1556 ई०)[3] ताजिक नीलकण्ठी, आदि भारतीय फलित ज्योतिषशास्त्र की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। इन रचनाओं के अतिरिक्त वर्तमान आधुनिक काल के ज्योतिषियों में रंगनाथ, शंकरदैवज्ञ, शिवलाल पाठक, परमानंद पाठक, बबुआ ज्योतिषी, रामयत्न ओषा, मानसागर आदि महत्त्वपूर्ण हैं[4] तथा इनकी रचनाओं ने भारतीय ज्योतिषशास्त्र को एक नई दिशा प्रदान की है।

1.6 ज्योतिष शास्त्र की व्युत्पत्ति

ज्योतिष शब्द 'द्युत' धातु से 'इसिन्' प्रत्यय योग से निष्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ है- द्युतिमान, प्रकाशमान, चमकना, उजला होना आदि।[5] शब्दकल्पद्रुम के अनुसार ज्योतिष शब्द की व्युत्पत्ति 'ज्योतिषां सूर्यादि ग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्' से दी गई है अतः सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रहों का ज्ञान कराने वाला शास्त्र ही ज्योतिष शास्त्र है।[6] आचार्य नेमिचन्द्र शास्त्री अपनी पुस्तक 'भारतीय ज्योतिष' में लिखते हैं कि नभोमण्डल में स्थित ज्योति सम्बन्धी विविध विषय विद्या ज्योतिर्विद्या कहलाती हैं तथा जिस शास्त्र में इस विषय का साङ्गोपाङ्ग वर्णन रहता है वह ज्योतिषशास्त्र है।[7]

---

[1] शास्त्री, नेमिचन्द्र - भारतीय ज्योतिष, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2004, पृ० 109

[2] वही

[3] वही; पृ० 110

[4] वही; पृ० 116

[5] द्युतेरिसिन्नादश्चेच जः।
- म०सि०कौ०; कृदन्त प्रक्रिया, उणादि प्रकरण, वार्तिक, 45

[6] ज्योतिः सूर्य्यादीनां ग्रहाणां गत्यादिकं प्रतिपाद्यतया अस्त्यस्येति अच्। वेदाङ्ग शास्त्र विशेषः। शब्दकल्पद्रुमः, भाग-2, पृ० 550

[7] शास्त्री नेमिचन्द्र - भारतीय ज्योतिष, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2003, पृ० 17

Oxford English Dictionary के अनुसार Astrology का अर्थ है- वह विद्या जिसमें ताराग्रहों का मानवीय जीवन पर प्रभाव एवं अध्ययन किया जाता है[1] अत: कहा जा सकता है कि जिस शास्त्र में ग्रह, नक्षत्र आदि की गति, स्थिति, स्वरूप, सञ्चार, परिभ्रमणकाल, ग्रहण, राशि आदि के विचार के साथ-साथ इसका मनुष्य तथा सम्पूर्ण राष्ट्र पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता हो वह ज्योतिषशास्त्र है। आचार्य लगध ने भी कहा है कि वेदों में यज्ञों का विधान है और यज्ञों का प्रारंभ करने के लिए विशिष्ट काल का निर्धारण किया गया है। इस काल को भली-भांति बताने वाला काल विधान शास्त्र ही ज्योतिषशास्त्र है।[2] वेदों द्वारा बताए गए यज्ञों की सफलता के लिए अति आवश्यक है कि यज्ञ का प्रारंभ और समाप्ति अनुकूल समय पर हो क्योंकि वेदों में प्रत्येक यज्ञ के लिए विशिष्ट काल का निर्धारण किया गया है। कहा जा सकता है कि काल सम्बन्धी समस्त अवयवों के ज्ञान की प्राप्ति का एक मात्र साधन ज्योतिषशास्त्र ही है।[3]

1.7 ज्योतिष शास्त्र के स्कन्ध

ज्योतिष शास्त्र मुख्यत: त्रिस्कन्धात्मक माना गया है। इन त्रिस्कन्धों में सिद्धान्त, संहिता तथा होरा सम्मिलित है।[4] ज्योतिष शास्त्र का विषय विभाग अति विस्तृत है

---

1 Study of Supposed Planetary influence in human affairs.
– ***Oxford English Dictionary,*** p. 45

2 वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ता: कालानुपूर्व्या विहिताश्च यज्ञा:।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद सा वेद यज्ञान्।।
- वे०ज्यो०; 3

3 यज्ञाध्ययनं संक्रान्तिग्रहषोडशकमेणाम्।
प्रयोजनं च विज्ञेयं तत्तत्कालविनिर्णयात्।।
- ना०स०; 1-6

4 सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्मलं चक्षु: ज्योति: शास्त्रकल्मषम्।।
- वही; 1-4

अतः कालान्तर में यह पञ्चस्कन्धात्मक हो गया और उपरोक्त तीन स्कन्धों के अतिरिक्त इसमें प्रश्न और शकुन नामक दो स्कन्ध और शामिल हो गए।

1.7.1 सिद्धान्त

ज्योतिष शास्त्र का यह स्कन्ध गणित नाम से भी जाना जाता है। इसके अन्तर्गत त्रुटि से लेकर कल्पकाल तक की कालगणना, पर्व आनयन, अब्द विचार, ग्रहगतिनिरूपण, मास गणना, ग्रहों का उपयास्त, वक्रमार्ग, सूर्य व चन्द्रमा के ग्रहण प्रारम्भ एवं अस्त ग्रहण की दिशा, ग्रहयुति, ग्रहों की कक्षस्थिति, उसका परिमाण, देश, भेद, देशान्तर, पृथ्वी का भ्रमण, पृथ्वी की दैनिक गति, वार्षिक गति, ध्रुव प्रदेश आदि, अक्षांश, लम्बांश, गुरुत्वाकर्षण, नक्षत्र, संस्थान, अन्य ग्रहों की स्थिति, भगण, चरखण्ड, द्युज्या, चापांश, लग्न, पृथ्वी की छाया, पलभा, नाड़ी, आदि विषय तन्त्र (गणित) अथवा सिद्धान्त के हैं। आचार्य वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में गणितज्ञ तथा तन्त्रज्ञ का लक्षण बताया है।[1]

1.7.2 संहिता

ज्योतिष शास्त्र के दूसरे स्कन्ध संहिता का भी विशेष महत्त्व है। इन ग्रन्थों में मुख्यतः फलादेश सम्बन्धी विषयों का बाहुल्य होता है। इसी स्कन्ध को दैवज्ञों की योग्यता की कसौटी मानते हुए आचार्य वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में कहा है कि जो व्यक्ति संहिता के समस्त विषयों को जानता है। वही दैवज्ञ होता है।[2] संहिता ग्रन्थों में

---

1 नानाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्धिजनितवाक्सारो निकषसन्तापाभिनिवेशैः कनकस्येवाधिकतरममलीकृतय शास्त्रस्य वक्ता तन्त्रतो भवति।

– बृ०सं०; 2-12

2 संहितापारगश्च दैवचिन्तको भवति।

– वही; 2-20

भूशोधन, दिक् शोधन, शल्योद्धार, मेलापक, जलाशय निर्माण, मांगलिक कार्यों के मुहूर्त्त, वृक्षायुर्वेद, दर्कागल, सूर्यादि ग्रहों के संचार, ग्रहों के स्वभाव, विकार, प्रमाण, गृहों का नक्षत्रों की युति से फल, परिवेष, परिघ, वायु लक्षण, भूकम्प, उल्कापात, वृष्टि वर्षण, अंगविद्या, पशु-पक्षियों तथा मनुष्यों के लक्षण पर विचार, रत्न परीक्षा[1], दीप लक्षण नक्षत्राचार, ग्रहों का देश एवं प्राणियों पर आधिपत्य, दन्तकाष्ठ के द्वारा शुभ अशुभ फल का कथन आदि विषय वर्णित किए जाते हैं। संहिता ग्रन्थों में उपरोक्त विषयों के अतिरिक्त एक अन्य विशेषता होती है कि इन ग्रन्थों में व्यक्ति विषयक फलादेश के स्थान पर राष्ट्र विषयक फलादेश किया जाता है।[2]

1.7.3 होरा

यह ज्योतिषशास्त्र का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्कन्ध है। व्यवहार की दृष्टि से यह जनसामान्य में सर्वाधिक लोकप्रिय है। इसे जातक शास्त्र भी कहते हैं। होरा शब्द की उत्पत्ति अहोरात्र शब्द से हुई है। 'अहोरात्र' शब्द के प्रथम तथा अंतिम शब्द का लोप होने से होरा शब्द की उत्पत्ति हुई है।[3] इस शास्त्र के अन्तर्गत मनुष्य की जन्मकालीन गृहस्थिति या तिथि नक्षत्रादि के द्वारा उसके जीवन के सुख-दुख आदि का निर्णय किया जाता है। आचार्य वराहमिहिर के अनुसार होरा शास्त्र में राशि, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश, त्रिशांश, ग्रहों का बलाबल, ग्रहों की दिक्काल, चेष्टादि अनेक प्रकार का बल, ग्रहों की प्रकृति, धातु, द्रव्य, जाति चेष्टा, अरिष्ट, आयुर्दाय, दशान्तर्दशा, अष्टकवर्ग, राजयोग, चान्द्रयोग, नाभसयोग, आश्रय

---

1 जनपुष्टिक्षयवृष्टिद्विरतुरङ्गादिसकलवस्तूनाम्।
केतुल्कादीनां वा लक्षणमुदितं हि संहितास्कन्धे।।
- प्र०मा०; 1-8

2 दीक्षित, शंकर बालकृष्ण - भारतीय ज्योतिष, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1963, पृ० 611

3 जातकमिति प्रसिद्धं यल्लोके तदिह कीर्त्यते होरा।
- सारा०; 2-4, भाग-1

योग, तात्कालिक प्रश्न, शुभाशुभ निमित्त व चेष्टाएं, विवाह आदि विषयों का उल्लेख एवं इनका साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया जाता है।[1]

उपरोक्त वर्णित त्रिस्कन्धों को ही ज्योतिषशास्त्र का मुख्य अङ्ग माना जाता है परन्तु इनके अतिरिक्त प्रश्न तथा शकुन का भी अलग महत्त्व है।

1.7.4 प्रश्न

'प्रश्न' शब्द का सामान्य अर्थ है पूछताछ, अनुसंधान आदि। यह वस्तुतः प्रारम्भ में फलित ज्योतिष का ही अंग था परन्तु कालान्तर में प्रश्नशास्त्र एक स्वतंत्र ज्योतिषशास्त्रीय विद्या के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। यह शास्त्र तत्काल फल बताने वाले विद्या के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रश्न का फल बताने के लिए विशेष रूप में प्रश्नाक्षर सिद्धान्त, प्रश्न लग्न सिद्धान्त तथा स्वर विज्ञान सिद्धान्तों का आश्रय लिया गया है। इन समस्त सिद्धान्तों में प्रश्न लग्न सिद्धान्त सर्वाधिक प्रयोग में लाया जाता है। अतः प्रश्नकालिक लग्न पर फलादेश के आश्रित होने के कारण इसे होरा शास्त्र का अङ्ग भी माना जाता है।[2] प्रश्नमार्ग नामक ग्रन्थ में इस शास्त्र का उद्देश्य बताते हुए कहा गया कि पूर्वजन्म और इस जन्म के किए गए कर्मों के विभाग का ज्ञान कराने के लिए प्रश्नशास्त्र प्रवृत्त हुआ है।[3] प्रश्न विद्या को तीन भागों में बांटा जा सकता है- वाचिक प्रश्न, मूक प्रश्न, तथा मुष्टि प्रश्न।

---

[1] होराशास्त्रेऽपि च राशिहोराद्रेष्काणनवांशकद्वादशभागत्रिंशदभागबलाबलपरिग्रहो ग्रहाणां दिक्स्थान-कालचेष्टाभिरनेकप्रकारबलनिर्धारणं प्रकृतिधातुद्रत्यजातिचेष्टादिपरिगृहो निषेकजन्मकालविस्मापनप्रत्यया-देशसघोमरण आयुर्दायदशान्तर्दशाष्टकवर्गराजयोगचन्द्रयोगद्विग्रहादियोगाना नाभसादीनां च योगानां।
- बृ०सं०; 2-17

[2] दीक्षित, शंकर बालकृष्ण - भारतीय ज्योतिष, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1963, पृ० 640

[3] प्राग्जन्मनि कृतानां च कृतानां चेह कर्मणाम्।
विभागोऽपि कथं ज्ञेय इति चेत्सोऽपि कथ्यते।।
- प्र०मा०; 1-42

1.7.5 शकुन

शकुनशास्त्र को निमित्त शास्त्र भी जाना जाता है। किसी भी कार्य से सम्बन्धित दिखाई देने वाले लक्षण जो शुभ या अशुभ की सूचना देते हैं, शकुन कहलाते हैं। प्रारंभ में शकुन की गणना संहिता शास्त्र के अन्तर्गत ही होती थी। परन्तु ईस्वी सन् की दसवी, ग्यारहवीं और बारहवीं सदी में इस विषय पर स्वतंत्र रूप से विचार होने लगा था जिससे इस विद्या ने अपना अलग शास्त्र के रूप में स्थान प्राप्त कर लिया था।[1] वराहमिहिराचार्य ने भी बृहत्संहिता में कहा है कि मनुष्यों के पूर्व जन्मार्जित जो शुभाशुभ कर्म है उन कमों के शुभाशुभ फल को गमनकालिक शकुन प्रकाशित करते हैं।[2] यद्यपि शकुनों का वर्णन रामायण, महाभारत काल से प्राप्त होता है परन्तु वराहमिहिराचार्य प्रणीत बृहत्संहिता में इनका विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। इसके अन्तर्गत शकुनों के क्षणदीप्त, तिथिदीप्त, नक्षत्रदीप्त, वायुदीप्त, सूर्यदीप्त, गतिदीप्त, स्थानदीप्त, ध्वनिदीप्त आदि प्रकार कहे गए हैं। इस ग्रंथ में पशु–पक्षी यथा अश्व, गज, उल्लूक, कुक्कुट, सर्प तथा श्वान आदि के लक्षण एवं चेष्टाओं के आधार पर भी फलों का कथन किया गया है। यात्रा का विषय विभाग करने के बाद इसके अन्तर्गत तिथि, दिन, करण, नक्षत्र, मुहूर्त्त, लग्न, योग, अंगस्फुरण, स्वप्न, विजयदायक, स्नानविधान, गृहयज्ञ, गणयाग, हवन की अग्नि से निर्मित परीक्षा, हाथी घोड़ों की चेष्टाओं से भविष्य विचार, सैनिकों की परस्पर वार्त्ता से शकुन, सैन्य चेष्टा आदि विषयों का भी समावेश किया गया है।[3]

---

1 शास्त्री, नेमिचन्द्र – भारतीय ज्योतिष, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2004, पृ० 21

2 अन्यजन्मातरकृत कर्म पुंसां शुभाशुभम्।
यत्तस्य शकुनः पाकं निवेदयति गच्छताम्।।
– बृ०सं०; 86–5

3 यात्रायां तु तिथिदिवसकरणनक्षत्रमुहूर्त्तविलग्नयोगदेहस्वप्नविजयस्नानग्रहयज्ञगण यागाग्निलिङ्गहस्तस्य श्वेङ्गित सेनाप्रवादचेष्टादिग्रहषाड्गुण्यो।
– वही; 2–18

1.8 ज्योतिष साहित्य की परम्परा में वेदाङ्ग ज्योतिष का स्थान

मानव सभ्यता के आरम्भ से लेकर आज तक के इस कालक्रम में ज्योतिष शास्त्र ने विकास की जिस अवस्था को प्राप्त किया है उसमें अनेक ऐसे निर्णायक तथा महत्वपूर्ण बिन्दु हैं, जिन्होंने इस शास्त्र की दिशा और दशा दोनों के ही विकास में विशेष भूमिका का निवर्हण किया। वेदाङ्ग ज्योतिष विषयक ग्रन्थ ऐसे ही महत्व के हैं, जिन्होंने वैदिक संहिताओं में उपलब्ध ज्योतिषशास्त्र के स्वरूप को पूर्णता की ओर अग्रसर करने में सहयोग किया है। ज्योतिषशास्त्र के विकास क्रम में वेदाङ्ग ज्योतिष की महत्ता को सिद्ध करने के लिए इस विषय पर गहन विमर्श अनिवार्य है।

1.8.1 वेदाङ्ग का अर्थ तथा महत्व

विश्व की प्राचीनतम रचना के रूप में वेदों को ही स्वीकार किया जाता है।[1] विषयवस्तु के अत्यन्त दुरूह होने के कारण परवर्ती काल में वेदों के पठन-पाठन में कठिनाईयाँ उत्पन्न होने लगी। इन समस्याओं के निराकरण हेतु परवर्ती काल में अनेक ऋषियों के द्वारा वेदाङ्गों की रचना की गई।[2]

'वेदाङ्ग' शब्द की व्युत्पत्ति 'वेद' तथा 'अङ्ग' इन दो शब्दों के मिलने से हुई है। 'अङ्ग' शब्द का अर्थ है "जिनके द्वारा किसी वस्तु के स्वरूप को जानने में सहायता प्राप्त होती हो, उन्हें अङ्ग कहते हैं"[3] स्पष्ट है कि वेद के स्वरूप को

---

[1] "आर्य जाति का सर्वस्व होते हुए भी वेद सम्पूर्ण मानव जाति के आदि ग्रन्थ हैं। इस धरती पर मनुष्य की ज्ञानोदभाविनी दिव्य मेधा के वेदों के जितना पुरातन दूसरे ग्रन्थ आज तक उपलब्ध नहीं हो सके हैं.....।"

– गौरला वाचस्पति – संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2003, पृ० 81

[2] उपाध्याय, बलदेव – वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, 2006, पृ० 285

[3] अंग्यन्ते ज्ञायन्ते एभिरिति अङ्गानि।

– शब्दकल्पद्रुम; भाग-I, पृ० 14

समझाने में सहायक ग्रन्थ वेदाङ्ग कहे गए। इन वेदाङ्गों की संख्या छः कही गई है[1] – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष।[2] सर्वप्रथम मुण्डकोपनिषद् में इन छः वेदाङ्गों के नाम का उल्लेख मिलता है।[3] यद्यपि गोपथ ब्राह्मण में भी इसका संकेत प्राप्त होता है[4] इन वेदाङ्गों का मूल उद्देश्य वेदों के सही अर्थबोध, उचित उच्चारण तथा वेदों के याज्ञिक प्रयोग हैं। अर्थबोध के लिए व्याकरण तथा निरुक्त वेदाङ्ग अस्तित्व में आए। जबकि सही उच्चारण के लिए शिक्षा तथा छन्द वेदाङ्गों की रचना हुई। जबकि वेदों के याज्ञिक प्रयोग की शुद्धि को सुनिश्चित करने के लिए कल्प तथा ज्योतिष वेदाङ्ग का आविर्भाव हुआ। वेदाङ्गों के उद्देश्य का निर्धारण करने के क्रम में आचार्य बलदेव उपाध्याय का विचार अत्यन्त सारगर्भित है। इनके अनुसार– "मन्त्रों के उचित उच्चारण के लिए शिक्षा का, कर्मकाण्ड और यज्ञीय अनुष्ठान के लिए कल्प का, शब्दों के रूप ज्ञान के लिए व्याकरण का, अर्थज्ञान तथा शब्दों के निर्वचन के निमित्त निरुक्त का, वैदिक छन्दों की जानकारी के लिए छन्द का तथा अनुष्ठानों के उचित काल निर्णय के लिए ज्योतिष का उपयोग है और इनकी उपयोगिता के कारण ये छः वेदाङ्ग माने जाते हैं।"[5] इन वेदाङ्गों को वेद पुरुष के विभिन्न अवयवों के रूप में स्वीकृत्ति प्रदान की गई इसी सन्दर्भ में पाणिनीय शिक्षा वेद पुरुष के पैर के रूप में छन्द, हाथ के रूप में कल्प, तथा कान के रूप में निरुक्त वेदाङ्ग की कल्पना की

---

1 वेदात्षंडगान्युदधृत्य।

– महा०; 12–284–92

2 तन्नापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद: सामवेदोऽथर्ववेद: शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।

– मुण्डको०; 1–5–5

3 वही

4 षडङ्गविदस्तत् तथा धीमहे।

– गो०ब्रा०; 1–27

5 उपाध्याय बलदेव – वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, 2006, पृ० 283

गई है। जबकि ज्योतिष, शिक्षा तथा व्याकरण वेदाङ्ग को क्रमशः नेत्र, नाक तथा मुख के रूप में स्वीकार किया गया है।[1] वेदाङ्गों की विषय वस्तु का सामान्य परिचय प्रस्तुत है।

1.8.1.1 शिक्षा

वेदाङ्गों के गणना क्रम में शिक्षा वेदाङ्ग सर्वप्रथम गिना जाता है। शिक्षा 'शिक्ष्' धातु में भावार्थक 'अ' + स्त्री आ प्रत्ययों[2] के योग से निष्पन्न हुआ है। अतः इस शब्द का अर्थ 'उपदेश' या मार्ग-निर्देश है। वेद अध्ययन की परम्परा रही है कि शिष्य गुरुमुख से वेदमन्त्रों का श्रवण कर उसे कण्ठस्थ करता था। यही कारण है कि वेदों की एक संज्ञा श्रुति भी है। जो शास्त्र स्वर-वर्ण आदि के उच्चारण से संबंधित उपदेश दे वह 'शिक्षा' है।[3] इस वेदाङ्ग से सम्बन्धित कुल छः विषयों वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम तथा सन्तान का उल्लेख तैत्तिरोपनिषद की शिक्षावल्ली में किया गया है।[4] वेद-मन्त्रों के उच्चारण में स्वरों की प्रधानता होती है। मन्त्रों में स्वर-भेद के अर्थ-भेद का हो जाना स्वाभाविक ही है। इसी स्वर-भेदजन्य अनर्थ की उत्पत्ति से सम्बन्धित

---

1 छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।
- पा०शि०; 41-42

2 तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दज्योतिषामिति! अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।
- मुण्डको०; 1-1-5

3 स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा।
- सा०ऋ०भा०भू०; पृ० 49

4 वर्णः स्वरः मात्रा बलं साम सन्तानः इत्युक्तः शिक्षाध्यायः।
- तै०उप०; 1-2

एक आख्यायिका प्रचलित है। जिसमें कहा गया है कि 'इन्दशत्रु' शब्द में ऋत्विकों के उच्चारण में आए स्वरभेद के कारण अनर्थ की प्राप्ति हुई। पाणिनीय शिक्षा में इसी आख्यायिका को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। और कहा गया है कि जो मन्त्र स्वर से या वर्ण से हीन होता है वह मिथ्या प्रयुक्त होने के कारण अभीष्ट अर्थ का प्रतिपादन नहीं करता, अपितु वह वाग्वज्र बनकर यजमान का ही नाश कर देता है, जिस प्रकार स्वर के अपराध से 'इन्द्रशत्रु' शब्द यजमान का ही विनाशक बन गया।[1] इन्हीं त्रुटियों को दूर करने के लिए तथा स्वर वर्णादि के उच्चारण को निर्दोष बनाने के लिए ही शिक्षा ग्रन्थों की रचना की गई। इन शिक्षा ग्रन्थों में पाठकों के गुण तथा अवगुणों का भी निर्देश किया गया है। पाणिनीय शिक्षा में माधुर्य, अक्षर-व्यक्ति, पदच्छेद, सुस्वर, धैय तथा लय समर्थ इन्हें पाठकों का गुण बताया गया है।[2] जबकि गीति, शीघ्री, शिर:कम्पी, लिखितपाठक, अनर्थज्ञ तथा अल्पकण्ठ पाठकों को अधम पाठक की श्रेणी में रखा गया है।[3] शिक्षा ग्रन्थों से निर्मित शिक्षा-शास्त्र का क्षेत्र प्रतिशाख्यों तक विस्तृत हो गया। यहाँ तक कि प्रतिशाख्यों की गणना भी 'शिक्षा' के अन्तर्गत होने लगी तथा शिक्षा तथा प्रतिशाख्यों में अन्तर करना कठिन हो गया। ऋक् प्रतिशाख्य ने स्वयं का वर्ण शिक्षा नाम दिया है।[4] सम्प्रति 65 शिक्षा ग्रन्थ अस्तित्व में

---

1 मन्त्रो हीन: स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रु: स्वरतोपराधात।।
- पा०शि०; 52

2 माधुर्यमक्षरव्यक्ति: पदच्छेदस्तु सुस्वर:।
धैर्य्यं लयसमर्थश्च षडेते पाठका गुणा:।।
- वही; 33

3 गीति शीघ्री शिर: कम्पी तथा लिखित पाठक:।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमा:।।
- वही; 32

4 ऋक् प्रातिशाख्य, पृ० 13 (14, 68)

हैं।[1] प्रतिशाख्य शब्द की व्युत्पत्ति **'प्रतिशाखं भवं प्रतिशाख्यम्'** से की जाती है।[2] इससे यह प्रतीत होता है कि वेदों की प्रत्येक शाखा के लिए पृथक्-पृथक प्रतिशाख्य अस्तित्व में थे।[3] इन प्रतिशाख्यों को अति प्राचीन माना जाता है। मैक्समूलर ने इन रचनाओं को पाणिनि (विक्रम पूर्व आठवीं शती) से प्राचीन कहा है।[4] जबकि कीथ तैत्तिरीय प्रतिशाख्य को यास्क से भी प्राचीन मानते हैं।[5] स्पष्ट है कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारतीय मनीषियों ने ध्वनिशास्त्र के क्षेत्र में अपनी पैनी दृष्टि और ज्ञान की प्रौढ़ता को स्थापित कर दिया था।

1.8.1.2 कल्प

जिस प्रकार शिक्षा तथा निरुक्त की रचना वेदों की भाषा शुद्धि और उच्चारण विधि को सुरक्षित रखने के लिए की गई थी ठीक उसी तरह कल्पसूत्रों की रचना का भी मूल उद्देश्य वेद-ब्राह्मणों में विहित यज्ञों की विधियों को संक्षिप्त और व्यवस्थित करना था। ब्राह्मण काल तक आते-आते वेदों के प्राणस्वरूप यज्ञ अत्यन्त विस्तृत हो चुके थे। इन यज्ञों को व्यवस्थित करने तथा संक्षिप्त करने के लिए ही सूत्र शैली में कल्प साहित्य की रचना हुई। वेद में विहित कर्मों को

---

1 शर्मा, कुन्दनलाल - वेदाङ्ग: वैदिक वाङ्मय का बृहद् इतिहास, विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान, होश्यारपुर (पञ्जाब), 1985, पृ० 5

2 सिद्धान्तकौमुदी; पा०, 4-3-59

3 द्वित्रिशाखाविषयेत्वेऽपि तदसाधारणतया उपपत्तेः तथा बह्वृचानां।
शाकलबाष्कलकात्मकशाखाद्वयविषयं प्रतिशाख्यं प्रसिद्धम्।।
- तै०प्रा० (वैदिकाभरणभाष्य); 4-11

4 उपाध्याय, बलदेव - संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1994, पृ० 427

5 कीथ, ए०बी० - संस्कृत साहित्य का इतिहास, अनु० शास्त्री मंगल देव, मोतीलाल बनारसीदास, 1986, प्राक्कथन, पृ० 28

क्रमपूर्वक व्यवस्थित कल्पना करने वाला शास्त्र की 'कल्प' है।[1] कल्पसूत्र मुख्य रूप से चार प्रकार के होते हैं-

1. **श्रौतसूत्र** - इन रचनाओं में ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित और अग्नि में सम्पाद्यमान यज्ञयागादि अनुष्ठानों का वर्णन होता है।

2. **गृह्यसूत्र** - ये रचनाएँ गृह्याग्नि में होने वाले यागों का तथा उपनयन, विवाह, श्राद्ध आदि संस्कारों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करती है।

3. **धर्मसूत्र** - चतुर्वर्ण तथा चारों आश्रमों के कर्त्तव्यों, विशेषतः राजा के कर्त्तव्यों का विशिष्ट प्रतिपादन ही इन कल्पसूत्रों का विषय होता है।

4. **शुल्वसूत्र** - इन रचनाओं में यज्ञ वेदि के निर्माण की रीति का विशिष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया है। ये ग्रन्थ प्राचीन भारतीय गणित की प्रौढ़ता के सूचक हैं। ज्यामिति सम्बन्धी कल्पनाओं तथा गणनाओं से सम्बन्धित विषयों की प्रमुखता के कारण ये सूत्र ग्रन्थ वैज्ञानिक महत्त्व के सिद्ध होते हैं। भारतवर्ष में रेखागणित के प्राचीन इतिहास की जानकारी के लिए शुल्वसूत्रों का अध्ययन नितान्त आवश्यक है।[2] सम्प्रति शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध कात्यायन शुल्वसूत्र तथा कृष्णयजुर्वेद के छः शुल्वसूत्र मिलते हैं। जिनके नाम हैं - बौधायन, आपस्तम्ब, मानव, मैत्रायणीय, वाराह तथा वाधूल।[3]

---

[1] कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्वेण कल्पना शास्त्रम्।
- ऋ०प्रा०; वर्गद्वयवृत्ति, पृ० 24

[2] उपाध्याय, बलदेव - वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, 2006, पृ० 341

[3] ऋषि, उमाशङ्कर शर्मा - संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा भारतीय अकादमी, वाराणसी, 1999, पृ० 92

1.8.1.3 व्याकरण

वेद पुरुष के अङ्गों में इसे मुख कहा गया है।[1] महाभाष्य इसे षड् वेदाङ्गों में प्रधान वेदाङ्ग मानता है।[2] भाषा में प्रयुक्त पदों की मीमांसा करने वाला शास्त्र ही व्याकरण नाम से जाना जाता है। **'व्याक्रियन्ते अनेनेति व्याकरणम्'** इस व्युत्पत्ति से भी व्याकरण का अर्थ पदों का विश्लेषण ही सिद्ध होता है। प्रारंभ में वाणी अव्याकृत थी, देवताओं के अनुरोध पर इन्द्र ने इसे व्याकृत किया तथा भाषा को पद, प्रकृति, प्रत्यय आदि में विश्लिष्ट किया।[3] जहाँ तक व्याकरण वेदाङ्ग की उत्पत्ति का प्रश्न है सर्वप्रथम व्याकरण का उपदेश ब्रह्मा ने बृहस्पति को दिया। तब बृहस्पति ने इन्द्र को उससे अवगत कराया। इन्द्र ने भरद्वाज को, भरद्वाज ने ऋषियों को और ऋषियों ने ब्राह्मणों को दिया।[4] व्याकरण वेदाङ्ग के पाँच प्रमुख उद्देश्य कहे गए हैं- वेदों की रक्षा (वेदों के मूल पदों को समझना), ऊह (यज्ञ में आवश्यकतानुसार प्रकृति रूप में पठित पदों का विकृति पाठ करना), आगम (प्राचीन उद्धरणों से व्याकरण का महत्त्व समझना), लघु (भाषा-शिक्षा के लिए लघुतम साधन होना) तथा असन्देह (किसी स्थल-विशेष में भाषागत सन्देह का निराकरण)।[5] व्याकरण के सर्वप्रथम पूर्ण ग्रन्थ

---

1 शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
- पा०शि०; 42

2 प्रधानं च षट्स्वंगेषु व्याकरणम्।
- महा०भा०; प्रथम आह्निक

3 ते देवा इन्द्रमब्रुवन्, इमां नो वाचं व्याकुर्विति। ताम् इन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत।
- तै०सं०; 6-4-7-3

4 ब्रह्मा वृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्राय, इन्द्रो भरद्वाजाय, भरद्वाज ऋषिभ्यः, ऋषयो ब्राह्मणेभ्यः।
- ऋक०; 1-4

5 रक्षोहागमलध्वसन्देहाः प्रयोजनम्।
- महा०भा०; प्रथम आह्निक

के रूप में पाणिनि कृत अष्टाध्यायी ही स्वीकृत है।[1] पाणिनि ने अपनी रचना में मुख्यत: दस आचार्यों का नामोल्लेख किया है।[2] स्पष्ट है कि वेदाङ्ग विद्या के रूप में व्याकरण का महत्त्व ऐतिहासिक है और संस्कृत भाषा के निर्माण में इसका योगदान सर्वकालिक महत्त्व का है।

1.8.1.4 निरुक्त

वेदों की रक्षा में तत्पर 'निरुक्त' वेदाङ्ग वेद पुरुष का कर्ण कहा गया है- **'निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते'।**[3] इस वेदाङ्ग का मूल उद्देश्य वैदिक शब्दों का निर्वचन अर्थात् अर्थ का निर्णय करना था।[4] सम्प्रति यास्क रचित 'निरुक्त' ही इस वेदाङ्ग का प्रतिनिधि ग्रन्थ है जो वैदिक शब्दों के संग्रह 'निघण्टु' की एक व्याख्या है। 'निघण्टु' की रचना प्रजापति कश्यप ने की थी।[5] यद्यपि यास्काचार्य निरुक्तकारों में प्रमुख माने जाते हैं परन्तु कुल 14 निरुक्तों के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है।[6] निरुक्त की रचना

---

1 ऋषि, उमाशङ्कर शर्मा - संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, 1999, पृ० 93

2 शर्मा, कुन्दनलाल - वेदाङ्ग: वैदिक वाङ्मय का वृहद इतिहास, विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान, होश्यारपुर (पंजाब), 1985, पृ० 269

3 शिक्षा घ्राणं क्षोत्रमुक्तं निरुक्तं वेदस्याङ्गान्याहुरेतानि षट् च।
- व०स०; 1-5

4 वाच्यनिरुक्तं क्रियते।
- शत०ब्रा०; 1-4-4-2

5 वृषो हि भगवान धर्म: ख्यातो लोकेषु भारत।
निघण्टुकपदाख्याने विद्धि मां वृषमुत्तमम्।।
कपिवर्राह: श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते।
तस्माद् वृषाकपिं प्राह कश्यपो मां प्रजापति:।।
- महा०; मोक्षधर्म पर्व, 342 (86-87)

6 निरुक्तं चतुर्दशप्रमोदम्।
- निरु०; 1-13 दुर्गवृत्ति

का मुख्य उद्देश्य वेदमन्त्रों की निर्वचन परक व्याख्या करना और देवताओं के स्वरूप को स्पष्ट करना था।[1] निरुक्ति शब्द का अर्थ ही है- 'व्यत्पुत्ति'। निरुक्तकार यास्काचार्य के अनुसार समस्त शब्दों की उत्पत्ति किसी न किसी धातु से होती है, अत: निरुक्त में प्रधान रूप से धातु के साथ कुछ प्रत्ययों का निर्देश करते हुए शब्दों की व्युत्पत्ति दिखाई गई है। आचार्य यास्क ने स्वयं निरुक्त के प्रतिपाद्य के रूप में पाँच विषयों- वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकार, वर्णनाश तथा धात्वर्थ सम्बन्ध का निर्देश किया है।[2] यास्ककृत निरुक्त वेदाङ्ग में अनेक पूर्ववर्त्ती निरुक्तकारों का वर्णन किया गया है। परन्तु अपनी उपलब्धता तथा विषय वैशिष्टय के कारण इस वेदाङ्ग का प्रतिनिधि ग्रन्थ यास्काचार्य कृत 'निरुक्त' में कुल चौदह अध्याय उपलब्ध होते हैं। इस वेदाङ्ग का मूल उद्देश्य वेद में प्राप्त शब्दों के सही अर्थ का बोध करना ही है। आचार्य यास्क ने 'निरुक्त' में 'शाकपूणि' नामक परवर्ती निरुक्तकार के मत का प्रबल समर्थन किया है। जबकि आचार्य 'कौत्स' के मत का अत्यन्त तीखे शब्दों में खण्डन किया गया है। 'कौत्स' का मत था कि वेद अर्थरहित हैं। इस पर यास्काचार्य ने 'निरुक्त' में कहा है कि अन्धे को यदि खंभा नहीं दीखता, तो इसमें खंभे का अपराध नहीं है। यह तो उस नेत्रहीन पुरुष का ही अपराध है।[3] कौत्सवाद की निंदा कर यास्काचार्य ने 'निरुक्त' के द्वारा वैदिक शब्दों की अर्थज्ञान की आवश्यकता को बल

---

1 क) अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थप्रत्ययो न विद्यते।
- निरु०; 1-15
ख) अथापि यज्ञे दैवतेन बहव: प्रदेशा: भवन्ति तदेतेनोपेक्षितत्यम्।।
- वही; 1-17

2 वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्।।
- वही; 7-2 दुर्गवृत्ति

3 नैष स्थाणोरपराध: यदेनमन्धो न पश्यति। पुरुषापराध: स भवति।
- वही; 1-16

प्रदान किया। यास्काचार्य ने 'निरुक्त' के शब्द निर्वचन से सम्बन्धित प्रकरण में छः सौ के करीब वेद मन्त्रों का अर्थ बताया है। अतः स्पष्ट है कि आचार्य यास्क निरुक्तकार के साथ-साथ वेदों के व्याख्याकार के रूप में भी अविस्मरणीय है। कहा जा सकता है कि व्युत्पत्तिशास्त्र और अर्थविज्ञान की दृष्टि से आचार्य यास्ककृत 'निरुक्त' एक अनुपम ग्रन्थ है।

1.8.1.5 छन्द

वेदाङ्गों में 'छन्द' को वेद पुरुष का पैर कहा गया है।[1] वेदमन्त्रों के शुद्ध उच्चारण और उनके लयबद्ध ज्ञान के लिए छन्दशास्त्र की आवश्यकता अपरिहार्य है। वैदिक संहिताओं के अधिकांश भाग छन्दोमय है और संस्कृत साहित्य की परम्परा के अनुसार छन्द के बिना तो वाणी ही उच्चरित नहीं होती।[2] महर्षि यास्क ने कहा है कि छद् (ढक देना) धातु से छन्दः शब्द की व्युत्पत्ति हुई है अर्थात् 'छन्द' वेदों को ढकने वाला साधन है, वेदों का आवरण है।[3] प्रधान वैदिक छन्द सात हैं- गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती, जगती, पंक्ति तथा त्रिष्टुप। शेष वैदिक छन्दों को इन्हीं सात प्रमुख छन्दों के अवान्तर भेदों के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस वेदाङ्ग के प्रतिनिधि ग्रन्थ के रूप में आचार्य पिङ्गलकृत छन्दः सूत्र को स्वीकृति प्राप्त है।[4] यह ग्रन्थ आठ अध्यायों में विभक्त है। इस ग्रन्थ के पूर्व भाग में वैदिक छन्दों से सम्बन्धित सामग्री का समावेश है जबकि ग्रन्थ का उत्तर भाग लौकिक छन्दों का

---

[1] छन्दः पादौ तु वेदस्य।
- पा०शि०; 41

[2] नाच्छन्दसि वागुच्चरति। छन्दहीनो न शब्दोऽस्ति, न छन्दः शब्दवर्जितम्।
- ना०शा०; भरतकृत, 14-45

[3] छादनात् छन्दोभवति। छन्दांसि छादनात्।
- निरु०; 7-3-12

[4] उपाध्याय, बलदेव - वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, 2006, पृ० 365

विश्लेषण करता है। आचार्य पिङ्गलकृत छन्दः सूत्र में कई आचार्यों यथा तण्डी[1], क्रोष्टुकि[2], यास्क[3], सैतव[4], शाक्ल्य[5], काश्यप[6], रात[7], माण्डत्य[8] आदि आचार्यों का उल्लेख करता है। पिङ्गल आचार्य कृत इस वेदाङ्ग शास्त्र में इन पूर्वाचार्यों का उल्लेख छन्द शास्त्र की समृद्ध परम्परा की ओर संकेत करता है। सामान्य वेदाङ्गों के समान ही छन्द के ज्ञान की भी अतीव महत्त्वपूर्ण माना गया है और कहा गया है कि जो व्यक्ति इस वेदाङ्ग के ज्ञान से रहित ब्राह्मण से यज्ञ कराता है या अध्यापन कराता है, वह घोर पाप का भागी होता है।[9] स्पष्ट है कि अन्य वेदाङ्गों के समान ही छन्द वेदाङ्ग भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

---

[1] सतोबृहती ताण्डिनः।

- छ०सू०; 3, 36

[2] स्कन्धोग्रीवी कौष्टुकेः।

- वही; 3, 29

[3] उरोबृहती यास्कस्य।

- वही; 3, 30

[4] उद्धर्षिणी सैतवस्य।

- वही; 7, 10

[5] मधुमाधवी शाकल्यस्य।

- वही; 7, 11

[6] सिहोन्नता काश्यपस्य।

- वही; 7, 9

[7] अन्यत्र रातमाण्डत्याभ्याम्।

- वही; 7, 36

[8] वही

[9] यो हवा अविदितार्षेयच्छन्दो दैवतब्राह्मणेन याजयति वा अध्यापयति वा स्थाणुं वर्द्धति गर्ते वा पतति प्र वा भीयते पापीयान् भवति।

- दुर्गाचार्यकृत निरुक्त भाष्य, उपोदघात।

1.8.1.6 ज्योतिष

ज्योतिष शास्त्र की गणना वेदाङ्गों में की जाती है। वेद अनन्त ज्ञान राशि है। धर्म का भी मूल वेद ही है।[1] प्रत्यक्ष तथा अनुमान आदि प्रमाणों के द्वारा भी जिस ज्ञान की प्राप्ति न हो सके उस ज्ञान की प्राप्ति में वेद ही सहायक सिद्ध होते हैं।[2] इन वेदों के अर्थ गाम्भीर्य तथा दुरूहता के कारण कालान्तर में वेदाङ्गों की रचना हुई।[3] वेदाङ्गों को कालपुरुष के विभिन्न अंगों के रूप में स्वीकार किया गया है। इन षड् वेदाङ्गों मे ज्योतिष शास्त्र नेत्र स्थानीय माना गया है।[4] इस की महत्ता स्थापित करते हुए सिद्धान्त शिरोमणिकार कहते हैं कि कर्ण नासिका आदि से युक्त होकर भी यदि मनुष्य नेत्रहीन हो तो कुछ भी करने में अक्षम होता है इसीलिए ज्योतिष शास्त्र रूपी वेदाङ्ग का अध्ययन भी अति महत्त्वपूर्ण है।[5] ज्योतिष वेदाङ्ग के तीन संस्करण उपलब्ध

---

1 वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।
- मनु०; 2-6

2 प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एवं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता।।
- ऋ०; 10-71-4

3 शिक्षा व्याकरणं कल्पो निरुक्तं ज्योतिषं तथा।
छंद: षडगानीमानि वेदानां कीर्तिततानि हि।।
- शुक्र०; 4-3-28

4 छन्द: पादौ शब्दशास्त्रं च वक्त्रं
कल्प: पाणी ज्योतिषं चक्षुषी च।
शिक्षा घ्राणं श्रोत्रमुच्यं निरुक्तं
वेदस्याङ्गान्येवमाहुर्मनीन्द्रा।।
- प्र०मा०; 1-11

5 वेद चक्षु: किलेदं स्मृतं ज्योतिषं मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तनोच्यते।
संयुतोऽपीतरै: कर्णनासादिभि: चक्षुषाहङ्गेन हीनो न किञ्चित्कर:।।
- सि०शि०; मध्यमाधिकार-40

होते हैं - ऋक् ज्योतिष, याजुष ज्योतिष तथा आथर्वण ज्योतिष। अब क्रमशः इन संस्करणों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

1.8.1.6.1 वेदाङ्ग ज्योतिष के विभिन्न संस्करण

वेदाङ्ग ज्योतिष के रचनाकार के रूप में आचार्य लगध का नाम स्मरण किया जाता है।[1] सामवेद के अतिरिक्त शेष अन्य तीनों वेदों के वेदाङ्ग ज्योतिष प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद का 'ऋक्' या 'आर्च' ज्योतिष, यजुर्वेद का 'याजुष् ज्योतिष' तथा अथर्ववेद का 'आथर्वण ज्योतिष' ग्रन्थ वेदाङ्ग के रूप में प्रतिष्ठित है। सामवेद में चूंकि सामों का सङ्कलन है तथा वैदिक कर्मकाण्ड से सम्बन्धित तथ्यों का अभाव है, अतः सामवेद का वेदाङ्ग ज्योतिष ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता है।

1.8.1.6.1.1 ऋक् या आर्च ज्योतिष

ऋग्वेद संहिता से सम्बन्ध रखने वाला वेदाङ्ग ज्योतिष का यह प्रतिनिधि ग्रन्थ 36 मन्त्रों से युक्त है। इन मन्त्रों में प्राचीन ज्योतिष शास्त्रीय सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। ये सिद्धान्त अत्यन्त विस्तृत तथा गूढ़ थे। वेदाङ्गों की रचना सूत्र शैली में हुई है और ज्योतिष वेदाङ्ग भी इससे अलग नहीं है। विस्तृत विषयों तथा सिद्धान्तों को संक्षेप में प्रस्तुत करना ही इस शैली की विशेषता रही है। तत्कालीन विद्वानों की यही विशेषता आज के विद्वत् समाज के लिए समस्या उत्पन्न करने वाली हो गई है। आचार्य बलदेव उपाध्याय भी इस तथ्य का समर्थन करते हैं और कहते हैं कि- "उस युग की बातें इतनी अज्ञात है कि वेदाङ्ग ज्योतिष के श्लोकों का रहस्य बतलाना आज भी विद्वानों के लिए एक विषम समस्या है।"[2]

---

1 प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः।।
- ऋक् ज्यो०; 2

2 उपाध्याय, बलदेव - वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, 2006, पृ० 375

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में प्रजापति का स्मरण किया गया है और युग का मान बताते हुए इसे पाँच संवत्सर वाला कहा गया है।[1] अगले ही मन्त्र में ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के स्मरण के बाद आचार्य लगध को काल ज्ञानरूपी ज्योतिष वेदाङ्ग के रचनाकार के रूप में प्रस्तुत किया गया है।[2]

ज्योतिष वेदाङ्ग का उद्देश्य[3] युग संबंधी अवधारणा[4] पर्व[5], अयन विचार[6], नक्षत्रों के नाम तथा उनके देवता[7], दिनमान[8], तिथि व नक्षत्र आदि का आनयन[9], दिनरात्रिमान[10] युग में ऋतु[11], ऋतुमान[12], त्रैराशिक नियम[13] नाक्षत्र दिन युग तथा ऋतु में संशोधन व उससे संबंधित गणना[14] काल के विभिन्न अवयव[15] आदि विषय का समावेश इस ग्रन्थ में प्राप्त

---

1 पञ्चसंवत्सरमय युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शचि:।।
– ऋक् ज्यो०; 1

2 प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मन:।।
– वही; 2

3 वही; 3

4 वही; 5

5 वही; 4

6 वही; 6

7 वही; 14, 25–28

8 वही; 22

9 वही; 20

10 वही; 7

11 वही; 23

12 वही; 9

13 वही; 24

14 वही; 13

15 वही; 16–18

होता है। इस ग्रन्थ में सूर्य के उत्तरायण व दक्षिणायन के साथ-साथ इन अयनों में दिन तथा रात्रि के घटने तथा बढ़ने का भी वर्णन किया गया है।[1] एक ऋतु साढ़े चार नक्षत्रों की होती है ऐसा ऋषि का कथन है।[2] इस ग्रन्थ में सत्ताईस नक्षत्रों का नामोल्लेख संक्षेप में किया गया है। समस्त नक्षत्रों अर्थात् अश्विनी, आर्द्रा, पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, आश्लेषा, चित्रा, मूल, शतभिषक्, भरणी, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, अनुराधा, श्रवण, रेवती, मृगशिरा, मघा, स्वाती, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, कृतिका, पुष्य, हस्त, ज्येष्ठा तथा धनिष्ठा इस क्रम में प्रस्तुत किए गए हैं।[3] समय की विभिन्न सूक्ष्म ईकाइयों के रूप में कला, नाडिका, मुहूर्त्त तथा भूदिन का निर्देश प्राप्त होता है।[4] इसी तरह आढक, कुम्भिका, द्रोण तथा कुडव संज्ञक काल की ईकाईयों का भी यहाँ उल्लेख किया गया है।[5] ग्रन्थ में आगे नक्षत्र देवताओं का उल्लेख किया गया है इनका क्रम अग्नि देवता से प्रारम्भ है।[6] नक्षत्र देवताओं के नामोल्लेख के बाद इन देवताओं के प्रयोजन को भी स्पष्ट किया गया है।[7] ग्रन्थान्त में एक बार पुनः लगध को ही इस ग्रन्थ के वक्ता तथा इस ग्रन्थ के अध्ययन के महात्म्य को भी स्पष्ट किया गया है कि इस ग्रन्थ के अध्ययन के कारण व्यक्ति इस लोक में पुत्र-पौत्रादिक को तथा मरणोपरान्त चन्द्र सूर्य तथा नक्षत्र लोक को प्राप्त करता है।

---

1 ऋक् ज्यो०; 7

2 वही; 9

3 वही; 14

4 कला दश च विंशा स्याद् द्वे मुहूर्त्तस्य नाडिके।
तत्रिंशद् द्यु कलानां तु षट्शती त्र्याधिका भवेत्।।
– वही; 16

5 वही; 17

6 वही; 25-27

7 वही; 28

1.8.1.6.1.2 याजुष् ज्योतिष

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि यह यजुर्वेद से संबंधित वेदाङ्ग है। डॉ० गोरख प्रसाद का मत है कि ऋक् तथा याजुष् ज्योतिष दोनों ही किसी अन्य वृहद् ज्योतिषीय ग्रन्थ से सङ्कलित है।[1] आर्च ज्योतिष के समान ही इस ग्रन्थ में भी काल के निर्धारण हेतु विभिन्न नियमों का प्रस्तुतीकरण ही प्रमुख है। वेदाङ्ग ज्योतिष के इस संस्करण के प्रारम्भ के चार श्लोक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रथम श्लोक में युगाध्यक्ष प्रजापति की वन्दना की गई है।[2] इस प्रजापति के अङ्गों के रूप में दिन, ऋतु, अयन तथा मास की कल्पना की गई है।[3] आगे ज्योतिष वेदाङ्ग का मूल उद्देश्य तथा इसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है।[4] श्रेष्ठता प्रतिपादन क्रम में इसकी तुलना मयूरों की शिखा और नागों की मणि[5] से की गई है। ज्योतिष विषयक विभिन्न सिद्धान्तों में काल की विभिन्न ईकाईयाँ यथा युग, सम्वत्सर, काष्ठा, आढक, पल आदि का वर्णन[6], नक्षत्रों के नाम तथा उनके देवताओं का कथन[7], दिनमान[8], तिथि[9] व नक्षत्रादि

---

1 गोरखप्रसाद – भारतीय ज्योतिष का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2004, पृ० 37

2 पंचसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्वयनमासांगं प्रणम्य शिरसा शुचिः।
– याजुष् ज्यो०; 1

3 वही

4 वही; 3

5 वही; 4

6 वही; 6, 1, 39, 24

7 वही; 18, 32-35

8 वही; 8

9 वही; 22

का आनयन[1], युगारम्भ[2], अयन का स्वरूप तथा प्रारंभ[3], विषुव[4], ॠतुओं का वर्णन[5], पर्व की समाप्ति का निर्णय[6], नक्षत्रानयन[7], चन्द्र नक्षत्र की कलायें[8] किसी समय विशेष में सूर्य का नक्षत्र[9] दिन में सूर्य की स्थिति[10], ॠतु के संशोधन व उससे संबन्धित गणनायें[11], नक्षत्र दिन तथा युग का संशोधन[12] आदि प्रमुख हैं। इस ग्रन्थ में गणित से सम्बन्धित त्रैराशिक विधि का भी वर्णन किया गया है जिससे वेध में बड़ी सहायता मिलती है।[13] इस सिद्धान्त के अनुसार यदि तीन राशियाँ ज्ञान हो तो चौथी अज्ञात राशि का मान निकाला जा सकता है। ग्रन्थ में स्पष्ट किया गया है कि अयन का प्रारम्भ कब होता है? ॠषि कहते हैं कि सूर्य और चन्द्रमा जब धनिष्ठा नक्षत्र के प्रथमांश में होते हैं तब उत्तरायण होता है तथा श्लेषा के मध्य में दक्षिणायन होता है।[1] इस अयन

---

[1] याजुष् ज्यो०; 10

[2] वही; 6

[3] वही; 10

[4] वही; 23

[5] वही; 11

[6] वही; 12

[7] वही; 17, 18

[8] वही; 20

[9] वही; 25, 26

[10] वही; 22

[11] वही; 27

[12] वही

[13] इत्युपायसमुद्देशो भूयोऽप्येवं प्रकल्पयेत्।
ज्ञेयराशिं गताभ्यस्तं विभजेज्ज्ञानराशिना।।
– वही; 42

[1] वही; 7

का सम्बन्ध ऋतुओं के साथ स्थापित करते हुए ग्रन्थ में कहा गया है कि उत्तरायण सर्वदा माघ मास में तथा दक्षिणायन श्रावण मास में होता है।[1] ऋषि की सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति यहां दृष्टिगत होती है। उत्तरायण तथा दक्षिणायन होने पर दिन तथा रात्रि के मान में होने वाले अंतर अर्थात् वृद्धि तथा ह्रास पर भी ऋषि ने विचार किया है और कहा है कि उत्तरायण में दिन बड़ा और रात्रि छोटी होती है जबकि दक्षिणायन में दिन छोटा और रातें बड़ी होती है।[2] इस ग्रन्थ में भी कहा गया है कि एक ऋतु में साढ़े चार नक्षत्र होते हैं।[3] ऋतु के विषय में ठीक यही विचार ऋक् ज्योतिष में भी प्राप्त होते हैं।[4] नक्षत्रों का नामोल्लेख करने के क्रम में ऋषि ने वैज्ञानिक सूझ–बूझ का परिचय दिया है और संकेत मात्रा का प्रयोग कर सत्ताईस नक्षत्रों का नामोल्लेख कर दिया है।[5] नक्षत्र का प्रारम्भ अश्विनी से हुआ है तथा पुनः आर्द्रा पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, आश्लेषा, चित्रा, मूल, शतभिषक, भरणी, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, अनुराधा, श्रवण, रेवती, मृगशिरा, मघा, स्वाती, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, कृत्तिका, पुष्प, हस्त, ज्येष्ठा तथा धनिष्ठा नक्षत्रों का स्मरण किया गया है।[6] 'विषुवत' का उल्लेख इस ग्रन्थ को ऋक् ज्योतिष की अपेक्षा विशेष महत्त्व का

---

1 याजुष् ज्यो०; 7

2 धर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ।
दक्षिणेतौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्ययनेन तु।।
– वही; 8

3 वसुस्त्वष्टा भवोऽजश्च मित्रः सर्पोऽश्विनौ जलम्।
धाता कश्चायनाद्याः स्युरर्धपञ्चमभस्त्वृतुः।।
– वही; 10

4 ऋक् ज्यो०; 9

5 याजुष् ज्यो०; 18

6 वही

सिद्ध करता है।[1] काल की गणना में प्रयुक्त संज्ञाओं में पल, आढक, द्रोण, कुडव, नाडिका आदि को प्रस्तुत किया गया है।[2] पञ्चसम्वत्सरात्मक युगमान का बड़ा ही सुन्दर प्रस्तुतीकरण ऋषि ने किया है, उन्होंने एक ही श्लोक द्वारा बता दिया है कि एक पञ्चसम्वत्सरात्मक युग के वर्षमान में 366 सूर्य सावन दिन, छः ऋतुएँ, दो अयन (उत्तरायण तथा दक्षिणायन) तथा बारह सौर मास होते हैं।[3]

नक्षत्र देवताओं के नामोल्लेख तथा उसके प्रयोजन विषयक विचारों में ऋक् ज्योतिष से इस ग्रन्थ में पर्याप्त साम्य है।[4] याजुष् ज्योतिष के रचना काल में नक्षत्र-विद्या के क्षेत्र में हुए विकास का सूचक एक प्रसङ्ग भी इसमें प्राप्त होता है जिसमें कुछ नक्षत्रों को क्रूर तथा कुछ को उग्र कहा गया है।[5] उग्र नक्षत्रों में आर्द्रा, चित्रा, विशाखा, श्रवण तथा अश्विनी जबकि क्रूर नक्षत्रों में मघा, स्वामी, ज्येष्ठा, मूल तथा भरणी का नामोल्लेख किया गया है।[6] इस श्लोक को फलित ज्योषि का मूल समझा जा सकता है। ग्रन्थ के अन्त में महर्षि लगध को ही मास, वर्ष, मुहूर्त्त, चन्द्रादिका उदय, सावन दिन पर्व, दिन ऋतु तथा मास आदि विषयों को प्रस्तुत करने

---

1 विषुवन्तं द्विरभ्यस्तं रूपोनं षड्गुणीकृतम्।
पक्षा यदर्धं पक्षाणां तिथिः स विषुवान स्मृतः।।
- याजुष् ज्यो०; 23

2 पलानि पञ्चाशदपां धृतानि तदाढकं द्रोणमतः प्रमेयम्।
त्रिभिर्विहीनं कुडवैस्तु कार्यं तन्नाडिकायास्तु भवेत् प्रमाणम्।।
- वही; 24

3 वही; 28

4 वही; 32-35

5 उग्राण्यार्द्रा च चित्रा च विशाखा च श्रवणोऽश्वयुक।
क्रूराणि तु मघा स्वाती ज्येष्ठा मूलं यमस्य यत्।।
- वही; 36

6 वही

वाले इस ग्रन्थ के वक्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है।[1] साथ ही साथ चन्द्र-सूर्य तथा नक्षत्र के चरित्र अर्थात् नक्षत्र विद्या की महत्ता को स्थापित करते हुए कहा गया है कि इस विद्या का अध्येता इस लोक में पुत्र-पौत्रादिकों की प्राप्ति करता है तथा मरणोपरान्त ऋषि-मुनियों द्वारा इच्छित चन्द्र लोक-सूर्य लोक तथा नक्षत्र लोक को प्राप्त करता है।[2]

1.8.1.6.1.3 आथर्वण ज्योतिष

ऋक् ज्योतिष तथा याजुष् ज्योतिष के अतिरिक्त आथर्वण ज्योतिष नामक ग्रंथ भी वेदाङ्ग ज्योतिष के अन्तर्गत परिगणित किया जाने लगा है। इस ग्रन्थ में कुल 168 श्लोक प्राप्त होते हैं। आथर्वण ज्योतिष ग्रन्थ में ऋक् ज्योतिष तथा याजुष ज्योतिष में वर्णित विषयों की अपेक्षा अधिक विषयों का समावेश किया गया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ ब्रह्मा तथा काश्यप के मध्य संवाद रूप में प्रस्तुत है।[3] काश्यप ऋषि के चन्द्र तथा सूर्य से सम्बन्धित रात्रि तथा दिन में प्रवर्त्तित होने वाले मुहूर्त्तों के प्रमाण तथा क्रम की जिज्ञासा के साथ ग्रन्थ का प्रारम्भ होता है।[4] यह रचना इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है कि इसमें पहली बार परिमाणों का प्रस्तुतिकरण विशद रूप में किया गया है। मुहूर्तों

---

1 इत्येतन्मासवर्षाणां मुहूर्त्तोदयपर्वणाम्।
दिनर्त्त्वयनमासानां व्याख्यानं लगधोऽब्रवीत्।।
– याजुष् ज्यो०; 43

2 वही; 44

3 अथ ब्राह्माणं स्वयम्भुवं गुरुं लोकपितामहम्।
ब्रह्मलोके सुखासीनं काश्यप: परिपृच्छति:।।
– आथर्वण ज्यो०; 1

4 किम्प्रमाणम्मुहूर्त्तानां रात्रौ वा यदि वा दिवा।
चन्द्रादित्यगतं सर्वे तन्मे प्रब्रूहि पृच्छत:।।
– वही; 2

का नामकरण क्रमशः रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट (चार्वट), सावित्र, वैराज, विश्वासु, अभिजित्, रोहण, बल, विजय, निऋत, वारूण, सौम्य तथा भग इस प्रकार किया गया है।[1] सूर्योदय से सूर्यास्त तक तथा पुनः सूर्यास्त से अगले सूर्योदय तक इसी प्रकार मुहूर्त्तों का क्रम चलता है। मुहूर्त्तों का प्रमाण जानने के लिए बारह अंगुल के शङ्कु की सहायता का निर्देश किया गया है।[2] मुहूर्त्तों के नामकरण के अतिरिक्त इन मुहूर्त्तों के अन्तर्गत क्रियमाण कर्मों का भी वर्णन किया गया है।[3] यथा 'रौद्र' मुहूर्त्त में मारण आदि रौद्र कर्म या भयङ्कर कर्म करना शुभ माना गया है।[4] इसी तरह विवाह, उपनयन आदि देवकार्यों के लिए सावित्र मुहूर्त्त श्रेष्ठ कहा गया है।[5] इन मुहूर्त्तों में 'अभिजित्' मुहूर्त्त को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अर्थात् चतुर्वर्णों के नित्योपगी व्यवहार, मित्रता आदि समस्त कार्यों के लिए प्रशस्त माना गया है।[6] कार्य सिद्धि, समस्त मनोकामनाओं, अर्थोपार्जन, धन-संग्रह तथा यात्रा हेतु भी अभिजित् को अत्यन्त शुभ मुहूर्त्त माना गया

---

[1] आथर्वण ज्यो०; 6-11

[2] त्रुटीनान्तु भवेत् त्रिंशन्मुहूर्त्तस्य प्रयोजनम्।
द्वादशाङ्गुलमुच्छेषं तस्य छाया प्रमाणतः।।
- वही; 5

[3] वही; 12

[4] रौद्रे रौद्राणि कुर्वीत रूद्रकार्याणि नित्यशः।
यच्च रौद्रं भवेत्किञ्चित् सर्वमेतेन कारयेत्।।
- वही; 13

[5] सावित्रेण मुहूर्तेन देव कार्याणि कारयेत्।
यज्ञान्विवाहानु द्वाहांश्चूडोपनयनानि च।।
- वही; 17

[6] ब्रह्मक्षत्रियवैश्यानां शूद्राणाञ्चापि नित्यशः।
सर्वेषामेव वर्णानां योगो मध्यन्दिनेऽभिजित्।।
- वही; 20

है।[1] मुहूर्त्त विषयक विवेचन के बाद 'करण' पर चर्चा की गई है। इस ग्रन्थ के अनुसार एक चान्द्र मास में कुल ग्यारह करण होते हैं, जिसमें से चार ध्रुव अर्थात् स्थित तथा सात करण चर होते हैं।[2] बव, बालव, कौलव, तैतिल, गराजिन, वणिज तथा विष्टि चर करण[3] तथा शकुनि, चतुष्पाद, नाग तथा कौस्तुभ स्थिर करण है।[4] करणों के नामकरण के बाद इन करणों में क्रियमाण शुभाशुभ कर्मों का भी निर्धारण किया गया है।[5] करणों के अधिष्ठाता देवताओं का वर्णन भी इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है[6] करण के विस्तृत वर्णन के बाद 'तिथि' संबंधित तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक तिथि में यात्रा से होने वाले शुभाशुभ फलों का भी वर्णन यहां प्राप्त होता है।[7] तिथियों के शुभाशुभत्व[8] पर चर्चा के बाद इन तिथियों की विशेष संज्ञाओं को भी प्रस्तुत किया गया है तथा इन्हें नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता तथा पूर्णा ये नाम दिए गए हैं।[9] ग्रंथ में इसके बाद इन तिथियों में किए जाने वाले कार्यों का निर्देश प्राप्त होता

---

1 अभिजित्सर्वकामाय सर्वकामार्थसाधकः।
अर्थसञ्चयमानामब्राध्वानं गन्तुमिच्छताम्।।
- आथर्वण ज्यो०; 21

2 एकादशभिः करणैः मासि सम्प्रतिपद्यते।
ध्रुवाणि तत्र चत्वारि चराण्यन्यानि सप्रच।।
- वही; 33

3 वही; 34

4 वही; 35

5 वही; 36-57

6 वही; 55-57

7 वही; 62-67

8 वही; 70, 81

9 नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा पक्षस्तु पञ्चमी।
तिथयः पञ्च विज्ञेया पक्षयोरूभयोरपि।।
- वही; 69

है। सूर्य के अति सान्निध्य में आकर अस्त हुए विभिन्न ग्रहों तथा सूर्य की राहु अथवा केतु से पीड़ित होने पर उत्पन्न अशुभ फलों का भी विधान किया गया है।[1] ग्रहों से सम्बन्धित फलादेश की यह प्रवृत्ति वेदाङ्ग ज्योतिष में फलित ज्योतिष के अस्तित्व को भी प्रमाणित करता है। आथर्वण ज्योतिष में सात दिन वाले सप्ताह का भी वर्णन है और इनके अधिपतियों का उल्लेख[2] इस मत की पुष्टि करता है कि वार व्यवस्था भारतीय मनीषियों की देन है। नक्षत्र संबंधी विभिन्न सिद्धान्तों यथा नक्षत्रों के विभाग[3], जन्मतारा, कर्मनक्षत्र, आधान नक्षत्र[4], नक्षत्रों का शुभाशुभत्व[5], विभिन्न नक्षत्रों में विहित तथा वर्जित कर्म[6], नक्षत्रों के उल्का, ग्रह, अशनि, निर्घात कम्प आदि से पीड़ित होने पर उत्पन्न फल[7] आदि का वर्णन भी इस ग्रन्थ में है। 'गर्भाधान' विषयक वर्णन इस ग्रन्थ की अगली विशेषता है। स्त्रियों के मासिक धर्म के बाद उनके शुद्ध होने के समय का स्त्री के वर्ण के आधार पर निर्धारण किया गया है।[8] ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्व

---

1 आथर्वण ज्यो०; 81

2 आदित्यः सोमो भौमश्च तथा बुध बृहस्पतिः।
भार्गवो शनैश्चरश्चैव एते सप्त दिनाधिपाः।।
- वही; 93

3 वही; 103-104

4 वही; 105

5 वही; 110

6 वही; 111-122

7 वही; 123

8 ब्राह्मणी त्रयोदशाहं स्नाता पुष्पमधारयत्।
क्षत्रिणी द्वादशाहन्तु वैश्येत्येकादशस्तथा।।
शूद्रीणामपि सर्वासां दशरात्रौ विधीयते।
वर्णक्रमेश नारीणामेष पुष्पविधिः स्मृतः।।
- वही; 135-136

तथा शूद्र स्त्रियों में यह अवधि क्रमशः 13, 12, 11 तथा 10 दिन बताई गई है।[1] रजस्वला स्त्रियों के कृत्याकृत्य कर्मो का भी निर्देश यहाँ प्राप्त होता है।[2] रजस्वला स्त्री के सेवन तथा त्याग के कारण उत्पन्न शुभाशुभ फल का भी वर्णन किया गया है।[3] गर्भाधान के लिए प्रशस्त रात्रि का कथन[4] पुत्र अथवा पुत्री की प्राप्ति हेतु उचित रात्रि[5], भ्रूण के पुरुष या कन्या के रूप में बदलने के कारणों[6] का उल्लेख भी यहाँ प्राप्त होता है। रजस्वला होने की चतुर्थ रात्रि से लेकर सोलहवीं रात्रि तक होने वाली गर्भ स्थिति के लिए पृथक्-पृथक् शुभाशुभ फलों का निर्देश भी इस ग्रंथ में उपलब्ध है।[7] ब्रह्मा-कश्यप संवाद स्वरूप इस ग्रंथ में मुहूर्त्त की श्रेष्ठता[8], कर्मयोग की महत्ता[9] तथा नक्षत्र करण, मुहूर्त्त तथा वारादि की महत्ता[10] को स्थापित किया गया है। यद्यपि

---

1 आथर्वण ज्यो०; 135-136

2 वही; 132-136

3 वही; 137-138

4 वही; 142

5 वही; 143

6 पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियः।
समेपुमान् पुंस्त्रियोवा क्षीणे चाल्पे विपर्ययः।।
- वही; 144

7 वही; 150-156

8 करणेन मुहूर्त्तेन त्वरमाणस्तु बुद्धिमान।
करणस्यादिदूरत्वान्मुहूर्त्तेनैव कारयेत्।।
- वही; 88

9 धर्मार्थकामयुक्तानि क्रूराणि हि मृदूनि च।
सिद्धयर्थं योनियोगेषु कुर्यात्कर्माणि नित्यशः।।
- वही; 157

10 एवं नक्षत्रेयोगेषु त्रिषु कर्म समारभेत्।
धर्मार्थकर्मणामर्थे स्वकर्मफलमश्नुते।।
- वही; 158

यह रचना ऋक् ज्योतिष तथा याजुष् ज्योतिष के तुलना में अर्वाचीन है फिर भी शंकर बालकृष्ण दीक्षित प्रभृत विद्वान इसे पर्याप्त प्राचीन मानते हैं। इसके तथ्य समर्थन में वे आथर्वण ज्योतिष ग्रन्थ में मेष आदि द्वादश राशियों के नामों की अनुपस्थिति को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करते हैं।[1] आथर्वण ज्योतिष के फलित संबंधी समस्त सिद्धान्त को इसके रचनाकार द्वारा महर्षि भृगु के मतानुसार कहा गया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ के ज्योतिष शास्त्र के जातक-शाखा से सम्बद्ध होने के कारण महत्त्वपूर्ण माना गया है।

1.8.1.6.2 वेदाङ्ग ज्योतिष का काल निर्धारण

वेदाङ्ग होने के कारण निश्चित रूप से वेदाङ्ग ज्योतिष के ग्रन्थ काफी प्राचीन प्रतीत होते हैं। इस दिशा में अनेक प्रमाण इनसे सम्बन्धित ग्रन्थों यथा ऋक् ज्योतिष, याजुष् ज्योतिष तथा आथर्वण ज्योतिष में प्राप्त होते हैं। ऋक् ज्योतिष में एक स्थान पर कहा गया है कि "युगारम्भ के बाद जब सूर्य व चन्द्रमा एक साथ पुनः श्रविष्ठा अर्थात् धनिष्ठा नक्षत्र के प्रारम्भ में आते हैं उसी क्षण अगले-अगले वर्षों में उत्तरायण होता है जबकि दक्षिणायन का आरम्भ भी इसी तरह श्लेषा के आधे पर आने के समय होता है, जहाँ तक सूर्य के अयनों का सम्बन्ध है, वह सदा माघ व श्रावण मास में ही होता है।[2] स्पष्ट है कि यहाँ ऋषि का तात्पर्य यह है कि धनिष्ठा से उत्तरायणारम्भ कहकर वेदाङ्ग ज्योतिष धनिष्ठा योगतारा (Alpha Delhini) की बात ही करता है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो जब इस तारे का सायन भोग 9.0°.0' था तब उक्त युगारम्भ हुआ था।[3] यदि अयन गति को वास्तविक तत्कालीन अयन गति

---

[1] दीक्षित, शंकर बालकृष्ण - भारतीय ज्योतिष, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, पृ० 142

[2] प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्धे दक्षिणाऽर्कस्तु माघश्रावणयोः सदा।।
- ऋक् ज्यो०; 6

[3] वेदाङ्ग ज्योतिष - व्या० मिश्र, सुरेशचन्द्र कृत टीका, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2005, पृ० 66

(48″) से कुछ अधिक 50″ विकला प्रतिवर्ष भी मान लिया जाए तो यह स्थिति कम से कम 1411 ई०पू० तक आता है।[1] यदि वास्तविक तत्कालीन अयन गति 48″ को मानें तो यह समय 1553 ई०पू० आता है।[2] इसी अयन-चलन को आधार मानकर डॉ० गोरखप्रसाद वेदाङ्ग ज्योतिष का काल लगभग 1200 ई०पू० सिद्ध करते हैं।[3] इस सन्दर्भ में उन्होंने कई पाश्चात्य विद्वानों के भी मतों का उल्लेख किया है और कहा है कि जोन्स और प्रैट ने इसका काल 1181 ई०पू०, डेविस और कोलब्रुक ने 1391 ई०पू० जबकि छोटे लाल बार्हस्पत्य ने इसे 1098 ई०पू० का सिद्ध किया है।[4] यही कारण है कि विद्वान इस वेदाङ्ग ज्योतिष को भारतीय ज्योतिषशास्त्र का सबसे आदिम तथा प्राचीनतम स्वतन्त्र लक्षण ग्रन्थ मानते हैं।[5] उपरोक्त मत के समर्थक आचार्य बलदेव उपाध्याय ने भी इसका रचनाकाल 1200 ई०पू० ही माना है। शंकर बालकृष्ण दीक्षित महोदय ने भी वेदाङ्ग ज्योतिष के काल निर्धारण की दिशा में स्तुत्य प्रयास किया है। उन्होंने पाश्चात्य विद्वान कोलब्रूक महोदय के सिद्धान्तों की आलोचना की है[6] और इसमें कुछ संशोधन भी प्रस्तुत किए हैं। इनका मत है कि विभागात्मक धनिष्ठा के आरम्भ स्थान से धनिष्ठा की योगतारा 4 अंश 11 कला आगे है और इस मान के सम्पात गति होने में 300 वर्ष लग जाते हैं।[7] इन्होंने प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले धनिष्ठा के चार या पाँच तारों के पास चन्द्र और सूर्य के आने पर ही उत्तरायणारम्भ

---

1 वेदाङ्ग ज्योतिष - व्या० मिश्र, सुरेशचन्द्र कृत टीका, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2005, पृ० 66

2 वही; पृ० 67

3 गोरख प्रसाद - भारतीय ज्योतिष का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2004, पृ० 45

4 वही; पृ० 69

5 उपाध्याय बलदेव - संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1994, पृ० 63

6 दीक्षित, शंकरबालकृष्ण - भारतीय ज्योतिष, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2002, पृ० 123

7 वही

को स्वीकार किया है।[1] दीक्षित महोदय ने ईस्वी सन् 1887 में धनिष्ठा के योग तारा एल्फा डेलफिनी का सूक्ष्म भोग निकाला था जो 10 राशि 15 अंश 48 कला और 29 विकला आया था और 50 विकला की वार्षिक सम्पात गति मानने पर यह वृद्धि कुल 3297 वर्ष में ही संभव होती है। इस तरह उन्होंने ऋक् ज्योतिष का रचनाकाल 3297−1887 = 1410 ई०पू० सिद्ध किया है।[2] प्रो० ह्विटनी धनिष्ठा के तारों में बीटा डेल्फिनी को योगतारा मानते हैं और उनकी गणना वेदाङ्ग ज्योतिष को 72 वर्ष नवीन अर्थात् ई०पू० 1338 की रचना सिद्ध करती है।[3]

कुप्ना शास्त्री महोदय[4] भी याजुष् ज्योतिष के श्लोकों के आधार पर श्रविष्ठा के आरम्भ में दक्षिणायन तथा आश्लेषा के अर्ध या मध्य बिन्दु से उत्तरायण स्वीकार करते हैं। ठीक इसी प्रकार का उल्लेख वराहमिहिर की बृहत्संहिता में भी मिलता है। आचार्य वराह ने अपने समय में उत्तरायण पुनर्वसु के 3/4 तथा दक्षिणायन 1/4 में माना है। इस तरह अयन चलन की सम्पातिक गति 1¾ या 23°−20′ होती है। आचार्य लगध का समय $72x23^1/_3$ = 1680 वर्ष अर्थात् वराहमिहिर के समय 350 ई० के 1680 वर्ष पूर्व माना जाना चाहिए। इस तरह यह समय 1150 ई०पू० आता है जबकि खण्ड की अपेक्षा तारों का समूह लेने पर यह 3° के भीतर होने के कारण यह समय 1370 ई०पू० हो जाता है। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक महोदय वेदाङ्ग

---

1 दीक्षित, शंकरबालकृष्ण − भारतीय ज्योतिष, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2002, पृ० 123

2 वही; पृ० 124

3 वही

4 "Verses 6, 7 and 8 of the yajus-vedanga Jyotisa (Y-VJ) show that at the time of Legadh the winter solstice was at the... from this we can compute that Lagadha's time was $72x23^1/_3$ = 1680 years earlier than VM's time (AD. 530) i.e. 1150 B.C. It instead of the segment the group itself is meant, which is about 3° within it. Lagadha's time would be 1370 B.C."

– Sastry, T.S. Kuppanna – ***Vedanga Jyotisa of Lagadh,*** Indian National Science Academy, New Delhi, 1984, p. 13.

ज्योतिष को वैदिक कैलेण्डर पद्धति का सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ मानते हैं।[1] इन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि ऋग्वेद में अनेक ऐसे प्रसङ्ग आए हैं जहाँ यज्ञों तथा सम्बन्धित काल विशेष का वर्णन मिलता है और बिना एक मास, पक्ष, ऋतु, वर्ष आदि के ज्ञान के बिना यज्ञ विधि की सम्पूर्णता संभव नहीं है।[2] इन्होंने वेदाङ्ग ज्योतिष का काल 1100 से 1400 ई०पू० स्वीकार किया है।[3]

ऋक् ज्योतिष के श्लोक संख्या 6 के अनुसार माघ मास का प्रारंभ तब होता है जब सूर्य मध्य आश्लेषा में होता है और यह स्थिति वसन्त सम्पात बिन्दु मघा से 1°13' आगे होने पर ही संभव है। 1987 ई० में तत्कालीन वसन्त सम्पात बिन्दु और मघा नक्षत्र के मध्य कोणीय दूरी 60°56' थी और इसमें वेदाङ्ग कालीन स्थिति को जोड़ने पर कुल दूरी 60°56'+8°=68°56' होती है। इस तरह वेदाङ्ग ज्योतिष का काल 68°56'x72 = 4963.2 – 1987 = 2976 ई०पू० सिद्ध होता है।[4] जहाँ तक अन्य शास्त्रकारों द्वारा तुलनात्मक अध्ययन द्वारा इन रचनाओं के काल निर्धारण का प्रश्न है

---

1 The Vedanga Jyotisha is the oldest tract on Hindu Astronomy, and its importance, from a historical point of view.

– Tilak, B.G. – ***Vedic Chronology and Vedanga Jyotisha,*** Messrs Tilak Bros, Poona City, 1925, p. 45

2 "There are several sacrificial hymns in the Rigveda, which show that the sacrifical ceremonies must then have been considerably developed, and as no sacrificial system could be developed without the knowledge of month, seasons and the year."

– Tilak, B.G. – ***The Onion, On The Antiquities of The Vedas,*** Radhabhai Atmaram Sagoon Bookseller and Publishers, Bombay, 1893, p. 11.

3 "Even the Vedanga Jyotisha, that small tract on Astronomy appended to the Vedas... yet it was clearly seen that the position of solstices mentioned therein carried us back, roughly speaking to about 1100 or 1400 B.C.

– Tilak, B.G. – ***Vedic Chronology and Vedanga Jyotisha,*** Messrs Tilak Bros, Poona City, 1925, p. 3 (Introduction).

4 "...The Antiquity of Vedanga is there for (4963.2–1987) years B.C. = 2976 B.C."

– Holay, Prabhakakar Vyankatesh – ***Vedanga Jyotisha,*** Shri Babasaheb Apte Smarak Samitee, Nagpur, 1989, p. 81.

तो आचार्य वराहमिहिर द्वारा अपनी रचना में वेदाङ्ग ज्योतिष की अयन सम्बन्धी विचारधारा को प्राचीन शास्त्रों द्वारा उक्त माना है[1], यह स्थिति वेदाङ्ग ज्योतिष को आचार्य वराहमिहिर के काल[2] अर्थात् शक 427 के पूर्व का सिद्ध करती है। बृहत्संहिता के यशस्वी टीकाकार भट्टोत्पल ने अपनी टीका में 'पराशर' के मत का उल्लेख किया है जिसमें वेदाङ्ग ज्यातिष प्रोक्त अयन प्रवृत्ति का वर्णन है।[3] पराशर द्वारा वेदाङ्ग ज्योतिष में वर्णित अयन प्रवृत्ति का उल्लेख इस ग्रन्थ को पराशर से पूर्ववर्त्ती सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। पाणिनि ने अपनी रचना में पराशर का नाम लिया है[4] और वेदाङ्ग ज्योतिष पराशर से पूर्ववर्ती सिद्ध किया जा चुका है अतः ये ग्रन्थ पाणिनि से प्राचीनतर सिद्ध होते हैं। ऋक् ज्योतिष तथा याजुष् ज्योतिष में नक्षत्रों के प्राचीन नामों का ही उल्लेख हुआ है यथा धनिष्ठा के लिए 'श्रविष्ठा'[5], अश्विनी के लिए 'अश्वयुक्त'[6] तथा शतभिषा के लिए 'शतभिषक्'[7]। नक्षत्रों के लिए प्रयुक्त ये संज्ञाएँ भी इन वेदाङ्ग ज्योतिष-विषयक ग्रन्थों की प्राचीनता को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। अपने वर्ण्य-विषय तथा शैली के कारण 'आथर्वण ज्योतिष' को 'ऋक् ज्योतिष'

---

1 आश्लेषार्धादासीद्यदा निवृत्तिः किलोष्णकिरणस्य।
युक्तमयनं तदाऽऽसीत् साम्प्रतमयनं पुनर्वसुतः।।
- पञ्च०सि०; 3-21

2 गोरखप्रसाद - भारतीय ज्योतिष का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2004, पृ० 106

3 आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं धनिष्ठाद्यम्।
नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु।।
- बृ०सं०; 3-1

4 पाराशर्य-शिलालिभ्यां मिक्षुनटसूत्रयोः।
- अष्टा०; 4-3-10

5 ऋक् ज्यो०; 6, 19

6 याजुष् ज्यो०; 18

7 वही

तथा 'याजुष्-ज्योतिष' वेदाङ्गों से अर्वाचीन माना जाता है।[1] यह अवश्य है कि 'आथर्वण ज्योतिष' अन्य वेदाङ्ग ज्योतिष ग्रन्थों से नवीन है फिर भी यह पर्याप्त प्राचीन सिद्ध होती है। इसका कारण यह है कि इस ग्रन्थ में मेषादि द्वादश राशियों के नाम उपलब्ध नहीं होते तथा ग्रन्थ का एक श्लोक इसके फलितांश को भृगु के मत से प्रभावित कहता है।[2] उपरोक्त मतों के आलोक में यह कहा जा सकता है वैज्ञानिक सिद्धान्त अयन-चलन को आधार मानकर सिद्ध किया गया समय ई०पू० 1200 से पूर्व ही वेदाङ्ग ज्योतिष विषयक ग्रन्थों का प्रणयन काल मानना उचित होगा।

1.8.1.6.3 वेदाङ्ग ज्योतिष पर किए गए कार्य

वेदाङ्ग ज्योतिष के याजुष् संस्करण पर सबसे पहले सोमाकर ने टीका लिखी थी। इसके बाद सर विलियम जोन्स तथा कोलब्रूक ने इसके दो पद्यों के आधार पर दक्षिणायन की चर्चा की और इसी आधार पर वेदों के काल निर्धारण का भी प्रयास किया। सन् 1834 ई० में कैप्टन जर्विस ने अपनी पुस्तक 'Indian Meterology' में ऋक् ज्योतिष के मूल को 'लगध ज्योतिष' शीर्षक से प्रकाशित कराया। वेदाङ्ग ज्योतिष का सर्वप्रथम परिपूर्ण संस्करण प्रो० वेबर ने प्रस्तुत किया परन्तु इन्होंने इस ग्रन्थ के कुछ ही श्लोकों की व्याख्या की। एशियाटिक सोसायटी बंगाल के जर्नल में जी. थीबो महोदय ने अपना लेख 'Contribution to the Explantion of the Jyotish Vedanga' सन् 1877 ई० में प्रकाशित कराया। सन् 1884 ई० में एच.के. गोडबोले महोदय ने धार्मिक क्रियाओं के लिए बनाए गए कैलेण्डर के लिए वेदाङ्ग ज्योतिष को आधार माना। जनार्दन बाला जी मोदक और श्री हरिकृष्ण गोडबोले महोदय ने याजुष्

---

[1] शर्मा, के०एल० - वेदाङ्ग, विश्वेश्वरानदं वैदिक शोध संस्थान, पंजाब, 1983, पृ० 148

[2] आत्म कर्म गुणं श्रेष्ठं पुरुषं पुरुषं प्रति।
अल्पग्रन्थं महार्थं च प्रवक्ष्यामि भृगोर्मतम्।।
- आथर्वण ज्यो०; 101

ज्योतिष का प्रकाशन 1885 ई० में मराठी अनुवाद के साथ अपनी पुस्तक 'Six Vedangas' में प्रस्तुत किया था। 1886 ई० में बर्जेस ने 'On the origin of the Lunar division of the Zodiac, represents by the Nakshatra System of the Hindus' शीर्षक का लेख वेदाङ्ग ज्योतिष को आधार मानकर लिखा।

वेदाङ्ग ज्योतिष के ऋक् तथा याजुष् संस्करणों पर प्रामाणिक कार्य श्री शंकरबालकृष्ण दीक्षित महोदय ने 1896 ई० में किया। इन्होंने अपनी पुस्तक 'भारतीय ज्योतिष' में इस कार्य को प्रकाशित कराया और यह पुस्तक मराठी भाषा में थी। पेशे से इंजीनियर लाला छोटेलाल महोदय ने सन् 1907 ई० में इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली 'Hindustan Review' नामक मासिक पत्रिका के नौ अङ्कों में वेदाङ्ग ज्योतिष के श्लोकों का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया। उनका यह कार्य 1907 ई० में एक पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित हुआ। 1908 ई० में याजुष् ज्योतिष तथा आर्च ज्योतिष के श्लोक सोमाकर तथा सुधाकर द्विवेदी कृत भाष्य के साथ बनारस से प्रकाशित हुआ।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक महोदय 1914 ई० में जब माण्डले जेल में थे तब उन्होंने याजुष् ज्योतिष के श्लोक संख्या 12, 14, 15, 19, 20, 21, 25, 26 तथा 27 जबकि ऋक् ज्योतिष के श्लोक 19 की इन्होंने व्याख्या की और उनका यह कार्य 1925 ई० में पूना से 'Vedic Chronology and Vedanga Jyotish' नामक ग्रन्थ में प्रकाशित हुआ।

1916 ई० में श्री स्वामी कुन्नुपिल्लई ने वेदाङ्ग ज्योतिष को Indian Ephemeries Vol. I के अंत में 'The Vedanga Jyotish Calander' नाम से संयुक्त किया।

आर. शामशास्त्री ने याजुष् ज्योतिष पर संस्कृत टीका तथा अंग्रेजी अनुवाद 1936 ई० में प्रकाशित कराया था। इस ग्रंथ में यत्र-तत्र जैन ग्रन्थों के भी उद्धरण दिए गए हैं। 1946-47 में डा० गोरख प्रसाद ने भी 'The Astronomy of the VJ' शीर्षक से एक लेख लिखा था। 1974 ई० में श्री क्षितीशचन्द्र भट्टाचार्य ने बांग्लाअनुवाद व टिप्पणियों सहित वेदाङ्ग ज्योतिष का प्रकाशन कराया था। 'Founders of Science in Ancient India' नामक पुस्तक में डॉ० सत्यप्रकाश ने Lagadha: The First to Rationalize Astronomy नामक अध्याय में वेदाङ्ग ज्योतिष के सिद्धान्तों पर चर्चा की है। Indian National Science Academy से K.V. Sarma द्वारा 'Vedanga Jyotisha of Lagadh' नाम से ऋक् व याजुष् ज्योतिष का एक आलोचनात्मक संस्करण 1985 ई० में प्रकाशित किया गया। इस पर टी.एस. कुपन्ना शास्त्री कृत अंग्रेजी भाषा का अनुवाद तथा टिप्पणी भी उपलब्ध होती है।

1988 ई० में नागपुर से प्रभाकर व्यंकटेश होले ने 'Vedic Astronomy' पुस्तक में ऋक् तथा याजुष् ज्योतिष के श्लोकों की व्याख्या के साथ-साथ प्राचीन खगोलशास्त्र के इतिहास, वैदिक कैलेण्डर आदि विषयों पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। 2007 ई० में ओरिएन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट्, मैसूर से कन्नडानुवाद के साथ वेदाङ्ग ज्योतिष का प्रकाशन 'ज्योतिरसूत्राणि' शीर्षक से किया गया। ऋक् ज्योतिष तथा याजुष् ज्योतिष के श्लोकों पर विस्तृत सुयशा टीका तथा सोमाकर व सुधाकर भाष्य के साथ 'लगध ज्योतिष' शीर्षक से 2008 ई० में डा० पुनीता शर्मा द्वारा एक ग्रन्थ प्रकाशित किया गया। अपनी विस्तृत भूमिका तथा श्लोकों की आलोचनात्मक व्याख्या के कारण यह ग्रन्थ विशेष रूप से द्रष्टव्य है। 2008 ई० में ही 'वैदिक-ज्योतिष' शीर्षक से वेदाङ्ग ज्योतिष के तीनों ही संस्करणों अर्थात् ऋक्, याजुष्, आथर्वण का प्रकाशन डा० गिरिजाशङ्कर शास्त्री ने वाराणसी से किया है। आथर्वण ज्योतिष का प्रकाशन सर्वप्रथम 1924 ई० में पंजाब संस्कृत सीरीज के अंतर्गत लाहौर से हुआ। लेखक भगवत दत

द्वारा इस वेदाङ्ग का केवल मूल पाठ ही इस ग्रन्थ में कराया गया है। 2003 ई० में डॉ० प्रयाग नारायण मिश्र द्वारा वाराणसी से 'आथर्वण ज्योतिषम्' शीर्षक से इस वेदाङ्ग का प्रकाशन हुआ। महर्षि अभय कात्यायन द्वारा "अथर्ववेदीय ज्यौतिष" ग्रन्थ का प्रकाशन सन् 2004 में हुआ।

शोधकर्त्री ने शोधकार्य में ऋक् ज्योतिष तथा याजुष् ज्योतिष के सन्दर्भ आदि के लिए डा० पुनीता शर्मा कृत 'लगध ज्योतिष' ग्रन्थ का आश्रय लिया है। जबकि आथर्वण ज्योतिष के लिए पंडित भगवद दत्त कृत आथर्वण ज्योतिषम् ग्रन्थ को आधार माना गया है। वेदाङ्ग ज्योतिष से संबंधित विषय वस्तु के विस्तृत अध्ययन के लिए अन्य उपलब्ध संस्करणों को भी अध्ययन शोधकर्त्री द्वारा किया गया है।

इस प्रकार ज्योतिष साहित्य परम्परा पर दृष्टिपात करने से यह सिद्ध होता है कि मानव सभ्यता के आरम्भ से ही यह शास्त्र अस्तित्व में आया। जहाँ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद में ज्योतिष शास्त्र विषय सिद्धान्त पर्याप्त स्फुट नहीं थे। वही वेदाङ्ग ज्योतिष के विभिन्न संस्करणों के बाद की रचनाओं में इस शास्त्र का अत्यधिक विकास हुआ है। ज्योतिष शास्त्र के विकास का यह क्रम सिद्ध करता है कि वेदों में वर्णित कालज्ञान तथा परवर्ती ज्योतिष साहित्य के विकसित सिद्धान्तों के मध्य वेदाङ्ग ज्योतिष के ऋक्, याजुष् तथा आथर्वण संस्करण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कडियाँ है।

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

काल–स्वरूप और वेदा वेदाङ्ग ज्योतिष

"विभूतिं प्रसवं त्वन्ये मन्यन्ते सृष्टिचिन्तकाः।

स्वप्नमायारूपमेति सृष्टिरन्यैर्विकल्पिता॥

इच्छामात्रं प्रभो सृष्टिरिति स्रष्टौ विनिश्चिताः।

कालात्प्रसूतिं, भूतानां मन्यन्ते कालचिंतकाः॥"[1]

काल शब्द ऋग्वेद के समान ही अत्यन्त प्राचीन है, इस सर्वाधिक प्राचीन संहिता में इस शब्द का प्रयोग[2] इसकी प्राचीनता को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। इस शब्द का पूरे ऋग्वेद में मात्र एक बार प्रयोग होना स्वतः ही आश्चर्य उत्पन्न करता है, परन्तु परवर्ती साहित्य में इस शब्द पर पर्याप्त चर्चा की गई है। 'काल' के स्वरूप को हृदयंगम करने का प्रयास करने से पूर्व आवश्यक है कि इस शब्द के अर्थ तथा इसकी परिभाषा को प्रस्तुत किया जाय।

2.1 काल शब्द का एक सामान्य परिचय

'काल' शब्द कल–गतौ संख्यायने 'च' धातु से घञ् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है।[3] सामान्यतया काल शब्द समय अथवा उचित समय के अर्थ में प्रयुक्त होता है।[4] अमरकोश ने काल शब्द का प्रयोग भूतसंहारक हेतु किया है।[5] काल के लिए

---

[1] माण्डू०उप०; 1–6–(7–8)

[2] उत प्रहामतिदीत्या जयाति कृतं यच्छ्वघ्नी विचिनोति काले।

— ऋ०; 10–42–9

[3] वृषादीनां च।

— अष्टा०; 6–1–203

[4] कलयति कालयति वा सर्वं कालः।

— अमरकोश०; 1– व्योमदिग्वर्ग (1), पृ. 20

[5] अनेहा कालः क्षयत्रुट्यादिः कलयति भूतानि कलयत्याभुर्वाकालः।
महाकाले मृत्यौ कृष्णवर्गे च (कालः) ॥

— वही; 3–195, पृ. 216

अनेक शब्द प्रयुक्त होते है जैसे- अनुवेलम्, अनेहा, अपब्दुः अवसरः, आमतिः कर्माहः, कालः, क्षण, जहः, तिथिः दिष्टः, पीथः, पीयुः, मः, मतिः, वारः, वेला, समयः सर्वमूषकः आदि।[1] काल का शब्द अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि यह काल यम अर्थात् मृत्यु के देवता के लिए प्रयुक्त हुआ है, विष्णु पुराण, भागवत पुराण तथा पद्म पुराण में कहा गया है कि ब्रह्मा ही काल के रूप में प्रतिष्ठित है।[2] 'काल' शब्द वरूण कालनियन्ता देव, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के लिए भी प्रयुक्त हुआ है।[3] यह 'काल' शब्द संस्कृत साहित्य में मूलतः उचित समय के लिए प्रयुक्त होता रहा है।[4] काल की एक अन्य परिभाषा इस प्रकार है- काल वह सामान्य माध्यम है जिसमें प्रत्येक घटना घटती है। एक बृहत् काल के अङ्गों के रूप में ही हम भूतकाल, वर्त्तमान काल तथा भविष्यकाल को स्वीकार कर सकते है।[5] अंग्रेजी भाषा में काल के लिए Time शब्द प्रयुक्त होता है।[6] इस शब्द का अर्थ बताते हुए कहा गया है भूत

---

1 दैवज्ञ, मुकुन्द- ज्योतिष शब्द कोषः, भुवनेश्वरी प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम, वि०सं०- 2024, पृ. 11

2 Kāla – 'Time' A name of yama, the judge of the dead. In the Atharva-veda Time is addressed of the source and ruler of all thing. It is he who drew forth the words and encompossed them. Being their father, he became their son. There is no other Power superior to him. The Vishnu, Bhāgavata, and Padama Puranās state that Brahmā existed in the form of time, but the Puranās do not generally recognise Time as an element of the first cause :

- Dowson, John – ***A classical Dictionary of hindu mythology and religion,*** Geography, history and Literature, Trubner and Co., London, 1879, P. 140

3 Kala – **i)** Indian varuna **ii)** A monster, This being took the from of a head with protruding eyes and large fangs but no Lower law **iii)** A god, the personification of time, A name for brahma or vishnu, A name for shiva as death, A name for yama as time.

- Coleman, J.A.- ***The dictionary of Mythology,*** Ana-Z of themes, Legends and heroes, Arcturus Publishing Limited, London, 2007, P. 555

4 काल- Due season, appointed or night time

– Macdonell, Arthur, A – ***A Sanskrit english Dictionary,*** Longmans Greenand Co., London, 1893, P. 67

5 "The general medium in which all events take place is succession or appear to take place is succession. All specific and finite periots of time, whether post, present or future, constitute merely parts of the entire and sing he Time."

– Runes, Dagobert D.– ***The Dictionary of Philosophy,*** Philosophical Library, New york, P. 318

6 काल- Time,

– Apte, Vaman Shivram – ***The Practical Sanskrit English Dictionary,*** Motilal Banarsidass, Delhi, 1985, P. 353

वर्त्तमान तथा भविष्य के सम्मिलित स्वरूप को ही काल या Time कहते है।[1] वामन शिवराम आप्टे महोदय ने भी इस शब्द का अर्थ काल, समय या वेला ही किया है।[2] यह काल दो रूपों वाला माना गया है- "ब्रह्म के दो ही रूप है- काल और अकाल।" जो आदित्य या सूर्य के पहले है वह अकाल या अकल है तथा जो आदित्य के बाद है वह काल है अर्थात् सकल है और यही कलनात्मक है।[3] वर्त्तमान वैज्ञानिक विवेचन में 'काल' शब्द का चार भिन्न अर्थों में प्रयोग होता है[4]-

i) संकल्पनात्मक काल (Conceptual time)

ii) प्रत्यक्षात्मक काल (Perceptual time)

iii) भौतिक काल (Physical time)

iv) पूर्ण काल (Absolute time)

काल का अर्थ स्पष्ट करते हुए भर्तृहरि ने कहा है- काल ही उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के प्रति कारण है, वह स्वयं अविभक्त होते हुए भी भूत, वर्त्तमान और भविष्यत् रूप में त्रिधा विभक्त है।[5] सूर्य सिद्धान्त इस काल को दो रूप में स्वीकार करता है- i) लोकों को समेटने वाला और ii) कलनात्मक काल। यह कलनात्मक

---

1 'The indefinite continued progress of existence events etc, in post, present and future regarded as a whole.'

– Webster, Thomas – ***Illustrated Oxford Dictionary,*** Oxford University Press, New york, 2003, P. 869

2 Time– काल, समय, वेला

– APTE, Vaman Shivram – ***The students English-Sanskrit Dictionary,*** Mrs. Radhabai Atmaram Sagoon bookseller and publishers, Bombay, 1893, P. 433

3 द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे कालश्चाकालश्च।

– मैत्रा०उप०; 6-14-15

4 Jeans, James – Physics and philosophy, Cambridge University Press, 1943, P. 56-58.

5 उत्पत्तौ च स्थितौ चापि विनाशे चापि तद्वताम्।
निमित्तं कालमेवाहुर्विभक्तेनात्मास्थितम्।।

– वा०पदी०; 3-9-13-(4)

काल भी सूक्ष्म और स्थूल दो भेदों वाला कहा गया है।[1] यास्काचार्य ने 'निरुक्त' में 'काल' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि "काल वह शक्ति है जो सबको गति देती है।"[2] यही काल समस्त चराचर जगत को गति देता है और शनैः शनैः क्षय की ओर प्रेरित करता है।[3] भगवान कृष्ण ने स्वयं को 'काल' ही कहा है।[4]

'काल' की परिभाषा महाभारत में भी उपलब्ध होती है और यहाँ काल शब्द के अर्थ के रूप में अग्नि, प्रजापति, परब्रह्म, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, क्षण, पूर्वाह्न, अपराह्न, मध्याह्न व मुहूर्त्त आदि का उल्लेख किया है।[5] इस काल की सृष्टि परमेष्ठी ने की थी।[6] महर्षि कणाद ने काल की परिभाषा इस प्रकार दी है- "नित्यों में न होने तथा अनित्यों में होने से स्पष्ट है कि जन्य कार्यों का कारण ही काल है।"[7] 'काल'

---

1 लोकानामन्तकृत्कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः।
सद्विधा स्थूलसूक्ष्मत्वात मूर्तश्चामूर्तसंज्ञकः।।
प्राणादि कथितोऽमूर्तः त्रुट्याधोमूर्त्तसंज्ञकः।
— सू॰सि॰; 1-(10-12)

2 कालः कलयते गतिकर्मणः।
— निरु॰; 2-25

3 स हि कालः सर्वाण्येव भूतानि कालयाति क्षयं नयतीत्यर्थः।
— वही; 2-25 दुर्गवृत्ति

4 कालः कलयतामहम्।
— श्री॰भग॰गी॰; 10-30

5 आहुश्चैनं केचिदग्निं केचिदाहुः प्रजापतिम्।
ऋतून् मासार्धमासांश्च दिवसांश्च क्षणांस्तथा।।
पूर्वाह्नमपराह्नञ्च मध्याह्नमपि चापरे।
मुहूर्त्तमपि चैवाहुरेकं संतमनेकधा।।
तं कालमिति जानीहि यस्य सर्वमिदं वशे।
— महा॰; शान्तिपर्व, 224-(52-54)

6 कालं कालविभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा।
सरितः सागराञ्छैलान्समानि विषमाणि च।।
— मनु॰; 1-24

7 नित्येष्वभावादनित्येषु भावात्कारणे कालाख्येति।
— वैशे॰सू॰; 2-2-9

का यह बृहत् स्वरूप स्वयं के महत्व को स्पष्ट करता है और यही कारण है कि वैदिक ऋषियों से लेकर अर्वाचीन विचारकों ने काल-विमर्श पर अत्यन्त गहन चिन्तन किया है। अत: आवश्यक है कि 'काल' शब्द से संबंधित चिंतन तथा विकास की परम्परा पर दृष्टिपात अवश्य किया जाय।

2.2 संस्कृत साहित्य में काल के विकास की परम्परा

जहाँ तक वैदिक वाङ्मय का प्रश्न है, इसके अन्तर्गत संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् की गणना होती है।[1] ज्ञान-विज्ञान की प्रत्येक शाखा तथा उसके महत्वपूर्ण अवयवों की तरह 'काल' विषयक चिन्तन से संबंधित सामग्री भी वैदिक वाङ्मय में प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त लौकिक साहित्य के अन्तर्गत महाभारत तथा रामायण सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना के रूप में परिगणित है अत: आवश्यक है कि संस्कृत साहित्य की दोनों ही धाराओं अर्थात् वैदिक तथा लौकिक साहित्य में काल से सम्बन्धित चिन्तन शैली व दृष्टिकोण पर विशेष रूप से विचार किया जाए।

2.2.1 ऋग्वेद संहिता

चारों संहिताओं अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद में ऋग्वेद को सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है।[2] इस संहिता में भी काल विषयक चिन्तन उपलब्ध होता है। जब हम ऋग्वेद में 'काल' शब्द के प्रयोग पर विचार करते है तो पाते है कि इस संहिता में यह शब्द केवल एक बार प्रयुक्त हुआ है और वह भी दशम मण्डल में।[3] इस मण्डल के बयालीसवें सूक्त के नवम मन्त्र में इन्द्र की स्तुति करने के क्रम में यह

---

1 उपाध्याय, बलदेव- वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, 2006, पृ. 105

2 वही, पृ. 107

3 उत प्रहामतिदीव्या जयाति कृतं यच्छ्‌वघ्नी विचिनोति काले।
यो देवकामो न धना रूणाद्धि समित् तं राया सृजति स्वधावान।।
— ऋ०; 10-42-9

शब्द प्रयुक्त है और वह भी 'समय' के अर्थ में। मन्त्र में युद्धकाल और द्यूतकाल की तुलना की गई है और इन दोनों में साम्य स्थापित करते हुए कहा गया है कि यह इन्द्र युद्धकाल में प्रहन्ता पर उसी प्रकार विजय प्राप्त करता है, जैसे श्वघ्नी अर्थात् कितव द्यूतकाल में प्रतिकितव को जीतता है, जो मनुष्य देवों के लिए यजन करने का इच्छुक है उसके लिए इन्द्र धनों को नही रोकता है, वह स्वधावान इन्द्र तो ऐसे यजमान के लिए धन का सृजन करता है।[1] स्पष्ट है कि यहाँ 'काल' शब्द समयवाचक ही है। ऋग्वेद संहिता में 'काल' शब्द का केवल एक बार किया गया प्रयोग यह कदापि नहीं सिद्ध करता है कि यह संहिता 'काल-चिन्तन' की दृष्टि से कम महत्व का है। काल के गणनात्मक तथा सूर्याधारित अनेक कालावयव इस वैदिक संहिता में अनेक बार प्रयुक्त हुए है। ऋक् सर्वानुक्रमणी के अनुसार प्रथम मण्डल के 164 वें सूक्त के 48वें मन्त्र का देवता 'संवत्सरात्मा काल' है, परन्तु इतना अवश्य है कि इस मन्त्र में 'काल' शब्द अनुप्रयुक्त ही है।[2] निम्नलिखित प्रसङ्ग ऋग्वेद से ही उद्धृत है और काल से संबंधित विभिन्न अवयवों के प्रयोग को सिद्ध करने वाले हैं-

(i) भूत, भविष्य व वर्त्तमान

ऋग्वेद के दशम मण्डल[3] तथा प्रथम मण्डल[4] में ऐसे मन्त्र है, जो काल की इन तीन अवस्थाओं भूतकाल, वर्त्तमान काल तथा भविष्यत्काल को सूचित करते है।

---

[1] उत प्रहामतिदीव्या जयाति कृतं यच्छ्वघ्नी विचिनोति काले।
यो देवकामो न धना रूणाद्धि समित् तं राया सृजति स्वधावान।।
— ऋ०; 10-42-9

[2] द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तस्मिन्त्साकं त्रिशंता न शंकवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः।
— वही; 1-164-48

[3] पुरुष एव इदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्।
— वही; 10-90-2

[4] i) अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत्।
— वही; 1-1-2

ii) न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यते।
— वही; 1-81-5

(ii) संवत्सर

भारतीय ज्योतिष परम्परा में संवत्सर के मुख्यतः दो रूप माने गये है- चान्द्र वर्ष तथा सौर वर्ष। 'वर्ष' के लिए 'संवत्सर' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर हुआ है।[1] 'संवत्सर' शब्द के अतिरिक्त 'समा' शब्द भी वर्ष के लिए प्रयोग में आया है।[2]

(iii) ऋतु

इस ग्रन्थ में काल के एक अन्य अवयव ऋतु पर भी पर्याप्त विचार किया गया है। इस संहिता के अनुसार सर्वप्रेरक सविता देवता ही ऋतुओं के नियामक माने गए है।[3] ये ऋतुएँ संख्या में तीन कही गई है[4] और इन्हें वसन्त, ग्रीष्म और शरद् संज्ञा

---

1 i) सुषुप्वांसऋभवस्तदपृच्छताऽगोह्यकइदंनोअबूबुधत्।
पूवानं बर्स्तोबोधयितारमब्रवीत् संवत्सरइदमद्यात्यख्यत्।।

— ऋ०; 1-161-13

ii) विष्ट्वीरामीतरणित्वेनवाघतो मर्तास सन्तोअमृतत्वमानशुः।
सांधन्वनाऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरेसमपृच्यन्तधीतिभिः।।

— वही; 1-110-4

iii) अभिद्विजन्मात्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरेवावृर्धजग्धमीषुनः।
अन्यस्यासाजिह्वयाजेन्योवृषा न्यश्न्येनवनिनोमृष्टवारणः।।

— वही; 1-140-2

iv) संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः।।

— वही; 7-103-1

2 समानां मास आकृतिः।

— वही; 10-85-5

3 व्यृतूँरदर्धररमतिः सविता देव आगात्।

— वही; 2-38-4

4 i) त्रिनाभिः।

— वही; 1-164-2

ii) त्रीणि नभ्यानि।

— वही; 1-164-49

से सूचित किया गया है।[1]

(iv) मास

ऋग्वेद संहिता एक वर्ष में बारह महीनों के अस्तित्व को स्वीकार करती है।[2] प्रथम मण्डल के ही एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि एक चक्र को द्वादश घेरे रहते है और यह प्रसङ्ग भी बारह महीनों का सूचक माना गया है।[3] महीने में तीस दिन माने गए है[4] और चान्द्र मास की विभिन्न तिथियों के लिए अनेक संज्ञाएँ यथा सिनीवाली[5], गुङ्गू[6], राका[7] आदि भी उपलब्ध है।

(v) अहोरात्र (अहन्-रात्रि)

मास के बाद काल की छोटी इकाई 'अहोरात्र' अर्थात् दिन तथा रात्रि मानी गई है तथा यह शब्द ठीक इसी तरह संहिता के दशम मण्डल में प्रयुक्त किया गया है।[8]

---

1 वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्म शरद्धविः।
— ऋ०; 10-90-6

2 द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वर्ति चक्रम।
— वही; 1-164-11

3 द्वादश प्रधयश्चक्रमेकम्।
— वही; 1-164-48

4 त्रिंशद् धाम वस्तोः द्युभिः विराजति।
— वही, 10-184-3

5 सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा।
— वही; 2-32-6

6 या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती।
— वही; 2-32-8

7 राकामहं सुहवाम्।
— वही; 2-32-4

8 समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विद्धदिवश्वस्य मिषतो वशी।।
— वही; 10-190-2

दिन तथा रात्रि के कारण रूप में सूर्य का स्तवन अनेक स्थानों पर हुआ है तथा कहा गया है कि वे दिनों के साथ रात्रियों को उत्पन्न करते हुए आकाश से जाते है।[1] रात तथा दिन दो बहनों के रूप में कल्पित है[2] तथा रात्रि की स्तुति देवी के रूप में की गई है।[3]

स्पष्ट है कि ऋग्वेद संहिता में उपलब्ध काल का स्वरूप मुख्य रूप से कलनात्मक ही है, हाँ इतना अवश्य है कि दशम मण्डल के बयालीसवें सूक्त के नवें मन्त्र में प्रयुक्त काल शब्द कलनात्मक न होकर भूत-भविष्य और वर्त्तमान में सम्बन्ध स्थापित करने वाला ही है।

---

1 विद्यामेषिरजस्पृथ्व हामिमानो ऋतुभिः।
पश्यञ्जन्मानिसूर्य्य।

— ऋ०; 1-50-7

2 नाना, चक्राते यम्या३ वपूंषि तयोर अन्यद् रोचते कृष्णम् अन्यत्।
श्यावी च यद् अरूषी च स्वसारौ महद् देवानाम् असुरत्वम् एकम्।।

— वही; 3-55-11

3 ॐ रात्री व्यरव्यदायति पुरूत्रा देत्यक्षभिः।
विश्वा अधि श्रियोऽधित।।
ओर्बप्रा अमर्त्या निवतो देत्यद्वतः।
ज्योतिषा बाधते तमः।।
निरू स्वसारम्स्कृतोषसं देत्यायती।
अपेदुहासते तमः।।
सा नो अद्य यस्या वयं नितेयाम न्यविक्ष्महि।
वृर्क्षण् वसति वयः।।
नि ग्रामासो अविक्षत निपद्वन्तो निपक्षिणः।
नि श्येनासश्चिदर्थिनः।।
यावता वृक्यं वृकं यवयस्तेनमूर्म्ये
अथा मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित।
उष ऋणेव यातय।।
उत ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्द्दिवः।
रात्रि स्तोमं न जिग्युषे।

— वही; 10-27-(1-8)

2.2.2 यजुर्वेद संहिता

यजुर्वेद में भी कई ऐसे प्रसङ्ग प्राप्त होते है, जिनमें काल विषय विचारधारा के दर्शन होते है। इस संहिता में प्रयुक्त 'काल' शब्द समय का ही वाचक है। इस दृष्टिकोण से तैत्तिरीय संहिता का दूसरा काण्ड विशेष रूप से विचारणीय है जहाँ अनेक प्रकार की कामेष्टियों का वर्णन है और एक स्थान पर कहा गया है कि गौ के लिए हवि देने के समय मित्र और वरूण के लिए एक कपाल में हवि देनी चाहिए।[1] 'काल' शब्द का एक दर्शनीय प्रयोग अग्न्याधान के प्रसङ्ग में भी उपलब्ध होता है।[2] यहाँ कहा गया है कि 'अग्नि' वैश्वानर ही संवत्सर है क्योंकि जिस प्रकार संसार में एक संवत्सर में पूर्ण गर्भ उचित काल आने पर सुख से उत्पन्न होता है उसी प्रकार उचित काल आने पर इस इष्टि से जो अग्नि स्थापित करता है वह मरता नहीं है।[3] मैत्रायणी संहिता में भी दो बार काल शब्द प्रयुक्त हुआ है एक तो वाजपेय याग[4] के प्रसङ्ग में और दूसरा अध्वरों की विधि[5] के सन्दर्भ में। काठक संहिता में भी 'काल'

---

1 प्रतिचरति यज्ञेन यज्ञं वाचा वाचं ब्रह्मणा ब्रह्म कपालैरेव छन्दास्याप्नोति पुरोडाशैः सवनानि मैत्रावरूणमेककपालं निर्वपेद्वशायै काले यैवासौ भातृत्यस्य वशाऽनूबन्ध्या सो एवैषैतस्यैककपालो भवति न हि कपालैः पशुमर्हत्याप्तुम्।।

— तै०सं०; 2-2-9-7

2 काल आगते विजायत एवमेव संवत्सरमाप्त्वा काल आगतेऽग्निं चिनुते नाऽऽर्तिमार्च्छत्ये पा वा अग्नेः प्रिया तनूर्यद्वै श्वानरः प्रियामेवास्य तनुवमव रून्धे त्रीण्येतानि हवींषि भवन्ति त्रय इमे लोका एषां लोकाना रोहाय।।

— वही; 5-5-1-7

3 वही

4 आगते काले सोमैरूत्क्रामन्ति प्रत्यञ्चः सुरोपयामैः पाप्मनैवैवं विपुनान्त तस्मादाहुर्वाजपेययाञ्ज्येव पूत इति।

— मैत्रा०सं०; 1-11-6

5 तं वा एतदागते काले सर्वं संस्फीतं यज्ञ देवताभ्यो दुहेत्।

— वही; 3-6-7

शब्द समय के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।[1] कपिष्ठल संहिता में भी 'काल' शब्द एक बार प्रयुक्त हुआ है और वह भी समय के ही अर्थ में।[2]

2.2.3 अथर्ववेद संहिता

काल तत्त्व चिंतन के दृष्टिकोण से अथर्ववेद अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस संहिता के उन्नीसवें काण्ड के दो सम्पूर्ण सूक्त काल के स्वरूप को स्पष्ट करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण माने गये है।[3] अथर्ववेद के इन सूक्तों में काल को सभी का नियन्ता, स्वामी तथा ईश्वर कहा गया है।[4] इस सूक्त के अतिरिक्त अन्य सूक्तों में भी कालतत्व चिंतन उपलब्ध होता है और उनमें रोहित देव अथवा सूर्य को काल के रूप में अथवा समय के नियामक के रूप में चित्रित किया गया है।[5] इन सूक्तों में ऋषि ने काल के अखण्ड स्वरूप के साथ-साथ उनके गणनात्मक स्वरूप को भी प्रस्तुत किया है।

---

1 i) कालोऽतिपद्येत दोषा वस्तोस्स्वाहेति जुहुयात् सैव तत्राहुतिस्तेनास्य तदनतिपत्रं भवति यदि प्रातरग्निहोत्रस्य कालोऽतिपद्येत दिना वस्तोस्स्वाहेति जुहुयान् सैव तत्राहुतिस्तेनास्य तदनतिपन्नं भवति।

— काठ०सं०; 6-8

ii) सप्तदशैते द्वया ग्रहाः प्राजापत्यास्सप्तदशो वै पुरुषः प्राजापत्य श्चत्वार्यङ्गानि शिरोग्रीवमात्मा वाक् सप्तथी दशा प्राणा अङ्गेऽङ्गे वै पुरूषस्य पाम्पोपश्लिष्टो यत्यतिषङ्गं ग्रहान् ग्रहात्यङ्गादङ्गादेवैनं पाप्मनो मुञ्चति श्रीर्वै सोमः पाप्मा सुरोपयामा यदागते काले पाञ्चस्सोमैरूदद्रवन्ति प्रत्यञ्चस्सुरोपयामैः पाप्मनैवैनं विपुनाति तस्मादाहुर्वाजपेययाजी त्वै पूत इति पाप्मना ह्येनं विपुनाति पञ्चैते ग्रहा ग्रह्यन्ते पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवावरून्द्धं ऐन्द्रास्सर्वे भवन्त्येकधैवास्मिन्निन्द्रियं दधाति।।

— वही; 14-6

2 यदि सायमग्निहोत्रस्य कालोऽतिफलेत, दोषावस्तोः स्वाहेति जुहुयात। सैव तत्राहुतिः। तेनास्य तदनतिपन्तं भवति।

— कपि०सं०; 4-7

3 अथर्व०; 19-53, 19-54

4 काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम्।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासोत् प्रजापतेः।।

— वही; 19-53-8

5 रोहितः कालो अभवद् रोहितोऽग्रे प्रजापतिः।
रोहितो यज्ञानां मुख रोहितः स्वश्राभरत।।

— वही; 13-2-39

(i) काल का गणनात्मक स्वरूप

इन सूक्तों में काल के गणनात्मक अर्थात् दिन[1], वर्ष[2] आदि का वर्णन मिलता है। दिन के प्रसङ्ग में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि दिन की उत्पत्ति काल से ही हुई है।[3] जबकि संवत्सर का वर्णन एक चक्र के रूप में प्रतीकात्मकता का आश्रय लेकर किया गया है।[4] अथर्ववेद में उपलब्ध ये दोनों सूक्त काल के गणनात्मक स्वरूप से अधिक इसके अखण्ड स्वरूप को प्रकट करने वाले है।

(ii) काल का अखण्ड, अविभक्त तथा अविच्छिन्न स्वरूप

वैदिक साहित्य में केवल अथर्ववेद संहिता ही एकमात्र ऐसा वैदिक ग्रन्थ है जिसमें काल के अखण्ड, अविभक्त तथा अविच्छिन्न स्वरूप का दिग्दर्शन सर्वप्रथम प्राप्त होता है। इसमें काल के स्वरूप पर विशेष रूप से दृष्टिपात किया गया है और इसका सम्बन्ध सूर्य से स्थापित किया गया है। इस काल को सात अश्वों वाले रथ पर आरूढ़ होने वाला और हजारों रश्मियों से युक्त कहा गया है।[5] स्पष्ट है कि ये सात अश्व सूर्यकिरण में स्थित सात किरणों की तरफ इंगित करते है। इस काल को सम्पूर्ण जगत का स्रष्टा भी माना गया है और कहा गया है कि काल से प्रजापति की उत्पत्ति

---

1 कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमा पृथिवीरूत।
काले ह भूतं भत्य चेषितं ह वि तिष्ठते।।
— अथर्व॰; 19-53-5

2 सुप्त चक्रान वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः।
सइमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयतो प्रथमो नु देवः।।
— वही; 19-53-2

3 वही; 19-53-5

4 वही; 19-53-2

5 कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा।।
— वही; 19-53-1

हुई जिससे प्रजा की संरचना हुई।[1] इस काल को सम्पूर्ण विश्व का पिता और ईश्वर भी कहा गया है।[2] इस काल को पृथिवी[3], समस्त जगत[4], प्रजापति[5], स्वयम्भू कश्यप[6], जल[7], ऋग्वेद[8], यजुर्वेद[9], गन्धर्व, [10] अप्सरा[11] आदि का स्रष्टा सिद्ध किया गया है। यह संहिता काल की तीन स्थितियों भूतकाल, वर्त्तमान काल तथा भविष्यत काल का भी आश्रय इसे ही मानता है।[12] यह काल की सृष्टि का सृजन करने वाला और संहार

---

1 कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम्।
स्वयंभूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत्।।
— अथर्व०; 19-53-10

2 काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम्।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासोत् प्रजापते।।
— वही; 19-53-8

3 कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत।
काले ह भूतं भव्य चेषितं ह वि तिष्ठते।।
— वही; 19-53-5

4 तेनिषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम्।
कालो ह ब्रह्म भूत्वा विभार्ति परमेष्ठिनम्।।
— वही; 19-53-9

5 वही; 19-53-8

6 वही; 19-53-10

7 कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः।
कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः।।
— वही; 19-54-1

8 कालो ह भूतं भत्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा।
कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत्।।
— वही; 19-54-3

9 वही

10 कालो यज्ञं समैरयद्देवेभ्यो भागमक्षितम्।
काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः।।
— वही; 19-54-4

11 वही

12 वही; 19-53-5

करने वाला भी कहा गया है।[1] अथर्ववेद के इस सूक्त में मन्त्रद्रष्टा ऋषि का कथन है कि काल की प्रेरणा से ही सूर्य चमकता है[2], यही हवा को बहने की प्रेरणा देता है।[3] और इसी के कारण नेत्रों में देखने की शक्ति है।[4] काल के इस विशद् वर्णन के बाद अंत में इसे सर्वेश्वर[5] तथा ब्रह्म[6] कहकर इसकी महत्ता को सिद्ध किया गया है। अथर्ववेद का उपरोक्त काल सूक्त भारतीय चिंतन परम्परा में काल को नया आयाम देने वाला कहा जा सकता है। काल को सर्वप्रथम यही संहारक, स्रष्टा, सर्वव्यापी, अनन्त आदि स्वरूप वाला माना गया है।

2.2.4 ब्राह्मण ग्रन्थ

ब्राह्मण ग्रन्थों में शतपथ ब्राह्मण सर्वाधिक प्रमुख माना गया है। इस ब्राह्मण में 'काल' शब्द का प्रयोग हुआ है।[7] यहाँ काल शब्द गणनात्मक स्वरूप वाला है। मुहूर्त्त,

---

[1] तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम्।
कालो ह ब्रह्म भूत्वा विभर्ति परमेष्ठिनम्।।
— अथर्व॰; 19-53-9

[2] i) कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः।
काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति।।
— वही; 19-53-6

ii) कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः।
कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः।।
— वही; 19-54-1

[3] कालेन वातः पवंते कालेन पृथिवी मही।
द्यौर्मही काल आहिता।।
— वही; 19-54-2

[4] वही; 19-53-6

[5] वही; 19-53-9

[6] काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम्।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासोत् प्रजापतेः।।
— वही; 19-53-8

[7] स एष स्विष्टकृतः कालः।
— शत॰ब्रा॰; 1-7-3-(2-3)

दिन–रात, शुक्ल पक्ष–कृष्ण पक्ष, पूर्णिमा, अमावस्या, विभिन्न ऋतु आदि का प्रयोग मिलता है।[1] इन शब्दों पर अत्यन्त गम्भीरता से विचार करने की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है।[2] जैसे कि मुहूर्त्त शब्द का निर्वचन भी इस ब्राह्मण में उपलब्ध होता है। काल की अत्यन्त सूक्ष्म इकाईयों तथा मुहूर्त्त, क्षिप्र, एतर्हि, इद, प्राण, अन, निमेष, लोमगर्त, स्वेदायन, स्तोक, आदि का वर्णन[3] इस ग्रन्थ की विशिष्टता है। इन कालावयवों को बड़े ही स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है।[4] यथा–

एक वर्ष	=	10800 मुहूर्त्त
1 मुहूर्त्त	=	15 क्षिप्र
1 क्षिप्र	=	15 एतर्हि
1 एतर्हि	=	15 इद
1 इद	=	15 प्राण
1 प्राण	=	10 अन

---

1 वसन्तो गीष्मो वर्षाः। ते देवा ऋतवः शरद्वेमन्तः शिशिरस्ते पितरो य एवापूर्यतेऽर्ध मासः स देवा योऽपक्षीयते स पितरोऽहरेव देवा रात्रिः पितरः पुनरह्न पूर्वाह्नो देवा अपराहः पितरः।

— शत०ब्रा०; 2–1–3–1

2 तद् यन्मुहुः त्रायन्ते–तस्मान्मुहूर्ताः।

— वही; 10–4–2–8

3 सप्त च वै शतानि विंश्ठशतिश्च। संवत्सरस्याहोरात्राणि सप्त च शतानि विंश्ठशतिश्च पुरूषस्यास्थीनि च मज्जानश्चात्र तत्समम्। दश च वै सहस्राण्यष्ट्रो च शतानि। संवत्सरस्य मुहूर्ता यावन्तो मुहूर्तास्तावन्ति पञ्चदश कृत्वः क्षिप्राणि यावन्ति क्षिप्राणि तावन्ति पञ्चदश कृत्व एतर्हीणि यावन्त्येतर्हीणि तावन्ति पञ्चदश कृत्व इदानीति यावन्तीदानीनि तावन्तः पञ्चदश कृत्वः प्राणा यावन्तः प्राणास्तावन्तोऽना यावन्तोऽनास्तावन्तो निमेषा यावन्तो निमेषास्तावन्तो लोमगर्ता यावन्तो लोमगर्तास्तावन्ति स्वेदायनानि यावन्ति स्वेदायनानि तावन्त एते स्तोका वर्षन्ति।

— वही; 12–3–3– (4–5)

4 वही

1 अन	=	10 निमेष
1 निमेष	=	10 लोमगर्त
1 लोमगर्त	=	1 स्वेदायन
1 स्वेदायन	=	1 स्तोक

इन सूक्ष्ममानों के अतिरिक्त कृष्ण व शुक्ल पक्ष[1], अहोरात्र[2] अमावस्या[3], संवत्सर[4] आदि कालावयवों का भी निर्वचन प्रस्तुत किया गया है। चन्द्रमा से सम्बन्धित विभिन्न रात्रियों के लिए भी इन ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक शब्द प्रयुक्त हुए है। ऐतरेय ब्राह्मण में ऐसी रात्रि के लिये अनुमति शब्द प्रयुक्त हुआ है।[5] यही शब्द गोपथ ब्राह्मण[6]

---

1 पूर्वपक्षा वै यवाऽअपरपक्षाऽ अयवास्ते हीदं सर्वं युवते चायुवते च।

— श॰ब्रा॰; 8-4-2-11

2 स यदस्मै देवान्त्सृजजानाय। दिवेवास तदहरकुरूताथ
यदस्माऽअसुरान्त्ससृजानाय तम-इवास ता ꣳ रात्रिमकुरूत तेऽअहोरात्रे।

— वही; 1-6-11

3 ते देवा अब्रुवन् अमा वै नोऽद्य वसुर्वसति।

— वही; 1-6-4-3

4 यदा वाऽएताऽउभौ परिप्लवेतेऽअथ मासो भवति मासश: संवत्सर: सर्व वै संवत्सर: सर्वमेव तद्देवा असुराणा ꣳ समवञ्जत सर्वस्मात्सपतन्ानसुरान्निरभजन्त्सर्वभ्वेवैष एतत्सपतन्ाना ꣳ संवङ्क्ते सर्वस्मात्सपतन्ान्निर्भजति य एवमेतद्वेद।

— वही; 7-2-24

5 निशाकरे कलाहीने सा अनुमति:।

— ऐ॰ब्रा॰; 7-2

6 या पूर्वा पौर्णमासी सानुमतिर्योत्तरा सा राका या पूर्वा अमावस्या सा सिनीवाली योत्तरा सा कुहूश्चन्द्रमा एव धाता च विधाता च यत् पूर्णोऽन्यां वसत् पूर्णोऽन्यान्तत् मिथुनं यत् पश्यत्यन्यात्रान्यातनन्मिथुनं यदमावास्यायाश्चन्द्रमा अधिप्रजायते तन्मिथुनन्तस्मादेवास्मै मिथुनात् पशून प्रजनयते।।

— गो॰ब्रा॰; 2-1-10

और षड्विश ब्राह्मण[1] में भी प्रयुक्त हुआ है। स्पष्ट है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में काल के गणनात्मक स्वरूप का विशेष रूप से वर्णन किया गया है।

2.2.5 उपनिषद् साहित्य

उपनिषद् साहित्य अपने दार्शनिक चिन्तन की गम्भीरता के कारण विद्वत् समाज में प्रतिष्ठित रहा है। इन ग्रन्थों में काल-विषयक गम्भीर चर्चा प्राप्त होती है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में ब्रह्म विषयक मीमांसा[2] के क्रम में भी काल को अत्यधिक महत्वपूर्ण कहा गया है।[3] माण्डूक्योपनिषद् में काल को अक्षर तत्त्व की क्षर क्रिया कहा गया है और इसे समस्त भूत, भवत् और भविष्यत् के रूप में उपस्थित ओंकार स्वरूप अक्षर तत्त्व का उपव्याख्यान माना है।[4] उपनिषद् साहित्य में कहा गया है समस्त भूत इस काल में ही लीन हो जाते है अतः इस काल को जानना अनिवार्य है।[5] इस काल की उपासना आदित्य स्वरूप में करनी चाहिए।[6] संवत्सर को काल का स्वरूप मानते

---

1 चन्द्रमा वै धाता! या पूर्वा पौर्णमासी सानुमतिः।
पुष्ये चानुमतिर्ज्ञेया सिनीवाली तु द्वापरे!....
न्यूने चानुमतिं विद्यात्।....
— षड्०ब्रा०; 5-6- (4-6)

2 कि कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता।
— श्वेता०; 1-1

3 कालः स्वभावो नियतिर्यइच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्तया।
— वही; 1-2

4 ओमित्येकाक्षरमिदं सर्वं तस्थोपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव।
— माण्डू०उप०; 1-1

5 कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव महात्मनि।
यस्मिंस्तु पच्यते कालो यस्तं वेद स वेदवित्।।
— वही; 6-15

6 अथान्यत्राप्युक्तं स्तनयत्येषास्य तनूर्यां ओमिति स्त्रीपुंनपुंसकमिति लिंगवत्येषाथाग्निर्वायुरादित्य इति भास्वत्येषाथ रूद्रो विष्णुरित्यधिपतिरित्येषाथ गार्हपत्यो दक्षणाग्निराहवनीय इति मुखवत्येषाथ ऋग्यजुः सामेति विजानात्येषाथ भूर्भुवः स्वरिति लोकवत्येषाथ भूतं भत्यं भविष्यादिति कालवत्येषाथ प्राणोऽग्निसूर्य इति प्रतापवत्येषाथान्नमापश्चन्द्रमा इत्याप्यायनवत्येषाथ बुद्धिर्मनोऽहंकार इति चेतनवत्येषाथ प्राणोऽपानो व्यान इति प्राणवत्येके व्यजामीव्युक्तंताह प्रस्तोतार्पिता। भवतीत्येवं ह्याहैतद्वै सत्यकाम परं चापरं च यदोमित्येतदक्षरमिति।
— वही; 5-5

हुए इसे अपने अवयवों यथा मास, दिन, अहोरात्रादि के द्वारा अक्षर ब्रह्म के नीचे चक्कर लगाने वाला कहा गया है।[1] संवत्सर रूप काल को ही प्रश्नोपनिषद् प्रजापति मानता है।[2] इन उपनिषदों में काल के अखण्ड स्वरूप के साथ-साथ इनके गणनात्मक स्वरूप अर्थात् मास[3], कृष्णपक्ष[4], शुक्लपक्ष[5], संवत्सर[6], ऋतु[7], निमेष[8], मुहूर्त[9], अहोरात्र[10] आदि का भी उल्लेख उपलब्ध होता है।

---

1 यस्मादर्वाक्संवत्सरोऽहोभिः परिवर्त्तते।
तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम्।।

— बृहद०उप०; 4-4-16

2 संवत्सरो वै प्रजापतिः।

— प्र०उप०; 1-9

3 सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणो व्यात्तमग्निर्वैश्वानरः संवत्सरआत्माश्वस्य मेध्यस्य।

— बृहद०उप०; 1-1

4 मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः शुक्लः प्राणस्तस्मादेत ऋषयः शुक्ल इष्टं कुर्वन्तीतर इतरस्मिन्।।

— प्र०उप०; 1-12

5 वही

6 बृहद०उप०; 1-1

7 प्रश्नो०; 1-1 शांकरभाष्य

8 एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथित्यौ विधृते तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा मुहूर्त्ता अहोरात्राण्यर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरा इति विधृतास्तिष्ठन्त्येतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्या नद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्या यां यां च दिशमन्वे तस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ददतो मनुष्याः प्रशथ्ठंसन्ति यजमानं देवा दर्वी पितरोऽन्वायत्ताः।

— बृहद०उप०; 3-8-9

9 वही

10 वही

2.2.6 वाल्मीकि रामायण

वाल्मीकि रामायण में काल शब्द का प्रयोग दो अर्थों में हुआ है- i) काल अर्थात् मृत्यु, नियति[1] या यम तथा ii) समय[2] के रूप में। रामायण के कुछ प्रसङ्गों में यमराज को ही काल कहा गया है।[3] जबकि कुछ प्रसङ्गों में मृत्यु और काल को यमराज का सहायक कहा गया है।[4] इस काल की न तो किसी से मित्रता होती है और न जाति का सम्बन्ध, इसका न कोई हेतु और न कोई कारण, इसको वश में करने का कोई उपाय नहीं होता और न ही इसके ऊपर पराक्रम ही चल सकता है।[5] इस ग्रन्थ में काल के पुरुष रूप का चित्रण हुआ है इसके व्यवहार अस्त्र[6], शारीरिक

---

1 नियतिः कारणम् लोके नियतिः कर्मसाधनम्।
नियतिः सर्वभूतानां नियोगेष्विह कारणम्।।
— वा०रा०; किष्किन्धाकाण्ड, 25-4

2 तवाहं पूर्वके भावे पुत्रः पुरंजय।
मायासम्भावितो वीर कालः सर्वसमाहरः।।
— वही; उत्तरकाण्ड, 104-2

3 कालदण्डस्तु पार्श्वस्थो मूर्तिमानस्य चाभवत्।
यमप्रहरणं दिव्यं तेजसा ज्वलदग्रिमत्।।
ततो लोकत्रयं क्षुब्धमकम्पन्त दिवौकसः।
काल दष्ट्रा तथा कुद्धं सर्वलोकभयावहम्।।
— वही; 22- (5-6)

4 पाशमुद्गरहस्तश्च मृत्युस्तस्याग्रतः स्थितः।
येन संक्षिप्यते सर्वं त्रैलोक्यमिदमव्ययम्।।
— वही; 22-4, 23-22

5 न कालस्यास्ति बन्धुत्वं न हेतुर्न पराक्रमः।
न मित्रज्ञाति सम्बन्धः कारणं नात्मनो वशः।।
— वही; किष्किन्धाकाण्ड, 25-7

6 i) वैवस्वत महाबालो न खल्वमितवक्रिम्
न हन्तत्यस्त्वयैतेन दण्डेनैष निशाचरः।।
— वा०रा०; उत्तरकाण्ड, 22-39

ii) पश्यामीह हि कण्ठे त्वां कालपाशावपाशितम्।
यथा चास्मिन् भयस्थाने न विभेषि निशाचर।।
— वही; अरण्यकाण्ड, 53-18

संरचना[1] आदि का भी विशद वर्णन मिलता है। इस काल की सत्ता को अनिवार्य कहा गया है।[2] इस काल की व्यवस्था का कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता स्वयं काल भी नहीं।[3] काल शब्द का प्रयोग समय के अर्थ में भी हुआ है। भगवान श्रीराम के जन्म प्रसङ्ग में ही काल के विभिन्न अवयवों यथा ऋतु, मास, नक्षत्र, योग आदि शब्दों का उल्लेख किया गया है।[4] स्पष्ट है कि रामायण में काल के गणनात्मक स्वरूप के अतिरिक्त इसके पुरुष स्वरूप में विकास की प्रक्रिया भी उपलब्ध होती है।

2.2.7 महाभारत

इस ग्रन्थ में काल शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से समय के रूप में जबकि विशेष रूप से परमतत्त्व के समकक्ष, सृष्टि के मूल तत्त्व के रूप में भी किया गया है। शान्तिपर्व में इस काल को अग्नि, प्रजापति व परब्रह्म के अतिरिक्त ऋतु, मास,

---

1 येन लोकास्त्रयः सेन्द्रा क्लिश्यन्ते चिन्त्यताम्।
क्षीणे चायुषि धर्मेण स कालो जेष्यते कथम्।।
— वा॰रा॰; उत्तरकाण्ड, 20-28

2 कालो भूतानां प्रभवो हययम्
— वही; युद्धकाण्ड, 32-13

3 न कालः कालमत्येति न कालः परिहीयते।
स्वभावं च समासाद्य न कश्चिदतिवर्तते।।
— वही; किष्किन्धाकाण्ड, 25-6

4 ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ।।
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताबिन्दुना सह।।
प्रोधमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम्।
कौसल्याऽजनयद्रामं दित्यलक्षणसंयुतम्।।
— वही; बालकाण्ड, 18-(8-10)

पक्ष, दिन, क्षण, पूर्वाह्न, अपराह्न, मध्याह्न व मुहूर्त संज्ञा वाला माना है।[1] काल के उपरोक्त अवयवों के अतिरिक्त महायुग के सम्बन्ध में भी इस ग्रन्थ में वर्णन उपलब्ध है और इस सन्दर्भ में राजा तथा काल के मध्य सम्बन्ध स्थापित किया गया है।[2] काल शब्द का प्रयोग मृत्यु के अर्थ में हुआ है।[3] इसके अतिरिक्त भगवान विष्णु व शिव के लिये भी काल शब्द प्रयुक्त हुए है।[4] महाभारत में मौसल पर्व में काल का मानवीकरण भी किया गया है, यहाँ कहा गया है कि इसका स्वरूप विकराल तथा वेष भयंकर, शरीर का रंग पीलापन लिये हुए काला तथा मुंडित शिरवाला है।[5] शान्तिपर्व में सूर्य

---

1 आहुश्चैनं केचिदग्निं केचिदाहुः प्रजापतिम्।
ऋतून् मासार्धमासांश्च दिवसांश्च क्षणास्तथा।
पूर्वाह्नमपराह्नच मध्याह्नमपि चापरे।
मुहूर्तमपि चैवाहुरेकं संतमनेकधा।।
तंकालमिति जानीहि यस्य सर्वमिदं वशे।
— महा०; शान्तिपर्व, 224-(52-54)

2 वही; 69-(70-96)

3 अयुध्यमानश्च म्रियते, युध्मनाश्च जीवति।
कालं प्राप्य महाराज। न कश्चिदतिवर्तते।।
— वही; स्त्रीपर्व, 2-5

4 गजहा दैत्यहा कालो लोकधाता गुणाकरः
सिंहशार्दलरूपश्च आर्द्रचर्मीबरावृतः।।
कालायोगी महानादः सर्वकाममश्चतुष्पथः।
निशाचरः प्रेतचारी भूतचारी महेश्वरः।।
— वही; अनुशासन पर्व, 17-(47-48)

5 कालो ग्रहाणि सर्वेषां परिचक्राम नित्यशः।
करालो विकटो सर्वेषां परिचक्राम नित्यशः।
ग्रहाण्यावेक्ष्य कृष्णीनां नादृश्यन्त क्वचित् क्वचित्।
— वही; मौसलपर्व, 2-(1-2)

की गति पर आधारित काल के सन्दर्भ में विस्तृत वर्णन किया गया है।[1] इन कालमानों में वर्ष, मास, दिन, निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त्त आदि का नामोल्लेख है जबकि बड़े कालमानों में संवत्सर, सत्युग, त्रेता, द्वापर, कलियुग संज्ञक चतुर्युग, ब्रह्मा का दिन व रात्रि का भी विशेष वर्णन उपलब्ध है।[2] काल को जब सृष्टि के मूल तत्त्व के रूप में प्रस्तुत किया गया है तब इसे अद्‌भुत स्वरूप वाला माना गया है। इस सन्दर्भ में कहा गया है कि काल से पीड़ित हुए मनुष्य को न विद्या, न तप, न दान, न मित्र और न

---

1 अनाद्यन्तमजं दित्यमजरं ध्रुवमत्ययम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे संप्रवर्तते।।
काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव
त्रिंशत्तु काष्ठा गणयेत्कलां ताम्।
त्रिंशत्कलश्चापि भवेन्मुहूर्तो
भागः कलाया दशमश्च यः स्यात्।।
त्रिंशन्मुहूर्ते तु भवेदहश्च
रात्रिश्च संख्या मुनिभिः प्रणीता।
मासः स्मृतो रात्र्यहनी च त्रिंशत्संवत्सरो द्वादशमास उक्तः।।
संवत्सरं दे त्वयने वदन्ति
संख्याविदो दक्षिणमुत्तरं च।।
अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषलौकिके।
रात्रिः स्वप्राय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः।
पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयो पुनः
शुक्लोऽहः कर्म चेष्टायां कृष्णः स्वप्राय शर्बरी
दैवे रात्र्यहनी वर्षे प्रविभागस्तयोः पुनः।
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम्
ये ते रात्र्यहनी पूर्वे कीर्तिते जीवलौकिके।
तयो संख्याय वर्षाग्रं ब्राह्मे वक्ष्याम्यह क्षपे
पृथक संवत्सराग्राणि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः।
कृते त्रेतायुगे चैव द्वापरे च कलौ तथा
चत्वायाहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः।।
— महा॰; शान्तिपर्व, 231-(11-20)

2 वही

बन्धु-बान्धव ही बचा सकते है।[1] यह काल ही प्रजाओं की सृष्टि करता है और अन्त में वही सबको अपना ग्रास बना लेता है, यह काल नामक तत्त्व प्राणियों की उत्पत्ति, पालन, संहार व नियन्त्रण करने वाला है।[2] इसी ग्रन्थ में एक स्थान पर महर्षि व्यास, शुक्रदेव को उपदेश देते हुए कहते है कि बुद्धिमान और धीर पुरुष बुद्धिरूपी नौका द्वारा काल रूपी नदी को पार कर लेते है।[3] यह आख्यान स्पष्ट करता है कि काल को नियन्त्रित किया जा सकता है। इस काल को निराकार माना गया है और कहा गया है कि यह इन्द्रियों द्वारा भी अनुभव में नहीं लाया जा सकता।[4] शक्ति के माध्यम से सृष्टि प्रारूपण, प्रकलन और विलयन रूप निरन्तर प्रवर्त्तमान चक्र के प्रवर्तयिता के रूप में परम तत्त्व अथवा ईश्वर को भी काल संज्ञा से अभिहित किया गया है और यही अक्षय काल है ऐसा महाभारत के भीष्मपर्व में कहा गया है।[5] स्पष्ट है कि महाभारत

---

1 न विद्या न तपो दानं न मित्राणि न च बान्धवाः।
शक्नुवन्तिं परित्रातुं नरं कालेन पीडितम्।
पर्यायैर्हन्यमानानां परित्राता न विद्यते।
— महा॰; स्त्रीपर्व, 227-(31-33)

2 कीर्तितं यत् पुरस्तान्मे सूते यच्चात्ति च प्रजाः।
यच्चेदं प्रभवः स्थानं भूतानां संयमो यमः।
स्वभावेनैव वर्तन्ते द्वन्द्वसृष्टानि भूरिशः।।
— वही; शान्तिपर्व, 238-(19-20)

3 एतद् प्रज्ञामयैर्धीरा निस्तरान्त मनीषिणः।
प्लवैरप्लवन्तो हि।
— वही; 225-18

4 तमिन्द्रियाणि सर्वाणि नानुपश्यन्ति पंचधा।
— वही; 224-52

5 i) अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः।
— श्री॰भग॰गी॰; 10-13

ii) कालः कलयतामहम्।
— वही; 10-30

iii) कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रबृद्धः।
— वही

में काल के अक्षय तथा क्षरणशील (लौकिक तथा दिव्य) स्वरूप का वर्णन तो मिलता ही है साथ ही साथ इसका पुरूषीकरण भी उपलब्ध होता है।

2.3 विभिन्न शास्त्रों में काल

विभिन्न शास्त्रों यथा दर्शन, चिकित्सा, ज्योतिष आदि में काल के विभिन्न स्वरूप का दर्शन प्राप्त होता है। इन समस्त शास्त्रों में काल के स्वरूप के विकास परम्परा के विभिन्न चरणों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। काल के दोनों ही स्वरूप अक्षय तथा क्षरणशील के अतिरिक्त इसके अन्य दृष्टिकोण का चित्रण इन शास्त्रों की विशेषता है–

2.3.1 दर्शनशास्त्र

भारतीय दर्शनशास्त्र तथा पाश्चात्य दर्शनशास्त्र की विभिन्न शाखाओं ने अपनी मान्यताओं के अनुसार 'काल' शब्द की व्याख्या की है। वैशेषिक दर्शनशास्त्र की परम्परा में सात पदार्थों का अस्तित्व माना गया है, जिसमें से प्रथम पदार्थ द्रव्य के नौ भेदों में से 'काल' भी एक अवयव है।[1] इसे न्यायदर्शन में भी पूर्ण रूप से स्वीकार किया गया है।[2] न्याय वैशेषिक में वर्णित सृष्टि प्रक्रिया के अनुसार प्रत्येक कार्य अपने–अपने करण से ही उत्पन्न होता है और इस प्रक्रिया में एक ऐसे तत्त्व की स्वीकृति अनिवार्य हो जाती है जो सभी जन्य वस्तुओं का कालिक आधार हो, ऐसा ही द्रव्य न्याय वैशेषिक दर्शन परम्परा काल संज्ञा से जाना जाता है।[3] न्याय वैशेषिक

---

[1] पृथित्यप्तेजोवायुराकाशं कालो दिग् आत्मा मन इति द्रव्याणि।
— वैशे॰सू॰; 1–1–5

[2] समानतन्त्रे दिक्कालौ वैतव्येन चिन्तितौ।
तन्नेह लिख्यते लोके द्वेष्या हि बहुभाषिणः।।
— न्याय॰म॰; भाग–1, पृ. 128

[3] जन्यानां जनकः कालो जगतामाश्रयो मतः।
— भा॰प॰; कारिका 45

दर्शन के अनुसार अतीत, वर्तमान और भविष्यत् आदि व्यवहार का जो कारण है वही काल है और यह एक, विभु एवं नित्य कहा गया है।[1] उत्पन्न पदार्थों का उत्पादक काल है और यह जगत का आश्रय भी है।[2] ज्येष्ठ-कनिष्ठ, परत्व-अपरत्व की बुद्धि का हेतु भी यही काल है, यह काल यद्यपि एक और नित्य है फिर भी उपाधिभेद से क्षण, मुहूर्त्त आदि तथा भूत, भविष्य तथा वर्तमान इसके भेद मान लिये जाते है।[3] सूत्रकार महर्षि कणाद ने काल की सिद्धि के लिए परत्व-अपरत्व, युगपत्, चिर तथा क्षिप्र ये पाँच अनुमापक हेतु दिये है।[4] महर्षि कणाद ने काल की परिभाषा देते हुए कहा है कि नित्यों में न होने वाले तथा अनित्यों में होने से स्पष्ट है कि जन्यकार्यों का कारण (निमित्त) ही काल है।[5] इस दर्शन परम्परा में काल-मापन संबंधी अनेक पदों का प्रयोग यह सूचित करने के लिए पर्याप्त है कि यहाँ काल को अखण्ड व असीम मानते हुए भी उसकी मापक उपाधियों को स्वीकार किया गया है।[6] प्रभाकर मत तथा न्यायमत में काल को केवल अनुमेय माना गया है,[7] जबकि भट्टमत काल

---

1 अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः। स चैको विभुर्नित्यश्च।

— त॰स॰; द्रव्यलक्षणप्रकरणम्, पृ. 49

2 जन्यानां जनकः जगतामाश्रयो मतः।
परापरत्वधी हेतुः क्षणादिः स्यादुपाधितः।।

— कारि॰; 45-46

3 वही

4 परस्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि।

— वैशे॰सू॰; 2-2-6

5 नित्येष्वभावादनित्येषु भावात्कारणे कालाख्येति।

— वही; 2-2-9

6 क्षणलवनिमेषकाष्ठाकलामुहूर्त्तयामाहोरात्रार्धमासर्त्वयनसंवत्सरयुगकल्पमन्वन्तरप्रलयमहाप्रलयहेतुः।

— वही; प्रशस्तपाद भाष्य, पृ. 43

7 दिक्कालावनुमेयामेव।

— प्र॰प॰; पृ. 81

की प्रत्यक्षवेधता का ही प्रतिपादन करता है।[1] वेदान्तदर्शन में भी काल को समस्त जगत का अधिकरण होने से मिथ्या कहा गया है।[2] शैवागम में स्वातन्त्र्य शक्ति व काल शक्ति को एक ही अथवा एक ही शक्ति के दो रूप में स्वीकार किया गया है।[3] पाश्चात्य दार्शनिक एफ.एच. ब्रैडले का कहना है कि हमारे प्रायः सभी तत्त्वमीमांसीय विवरणों में स्थान तथा काल को मान्यता मिली है, यह काल प्रस्तुत क्षणों का क्रम है।[4] ब्रैडले महोदय इस अवधारणा को व्यवहारिक मानते है परन्तु सत् के स्वरूप निर्धारण में सहायक नहीं मानते।[5] हेनरी बर्गसां महोदय को तत्त्व दार्शनिक चिन्तक माना गया है।[6] इन्होंने काल को कालिक क्षणों के क्रम के साथ-साथ अवधि (Duration) के रूप में स्वीकार किया है।[7] बर्गसां महोदय काल के क्षणिक क्रमों को गणित मूलक काल (Mathematical Time) कहते है।[8] उनके मतानुसार सत् जो गति है वह वस्तुतः कालावधि है तथा कालावधि (Duration) एक गत्यात्मकता की अनुभूति है।[9]

---

1 आकाशकालादिशोप्यत्र प्रत्यक्षाः।

— त०सि०र०; पृ. 170

2 कालस्त्वविधैव तस्या एव सर्वाधारत्वादिति।

— सि०बि०; पृ. 157

3 यस्याः परमेश्वरस्वातन्त्र्यशक्तेः, सा कालोत्थापकत्वात् भगवतः कालशक्तिरिति उच्यते। अत्याहतकलां यस्य कलाशक्तिमुपाश्रिता इत्यादौ।

— ई०प्र०वि०; भाग-2, पृ. 8

4 लाल, बसन्त कुमार- समकालीन पाश्चात्य दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2003, पृ. 11-12

5 वही

6 वही; पृ. 113

7 वही; पृ. 117

8 वही; पृ. 119

9 वही; पृ. 123

2.3.2 चिकित्सा शास्त्र

आयुर्वेद शास्त्र में चरकसंहिता की महती प्रतिष्ठा है। इस ग्रन्थ में काल को परिणाम कहा गया है।[1] इसी काल को पुरुष की उत्पत्ति का कारक तथा रोगों का कारण भी माना गया है।[2] यह ग्रन्थ सम्पूर्ण जगत को काल के वश में मानता है तथा सभी भावों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश का कारण भी इसे ही स्वीकार करता है।[3] कार्य और प्रयोजन के उद्देश्य से इस काल को दो, तीन, छह, बारह या इससे भी अधिक भागों में विभक्त किया जा सकता है।[4] इस ग्रन्थ में संवत्सर को काल रूप में प्रतिष्ठित किया गया है और शीतलक्षणयुक्त हेमन्त, ऊष्ण लक्षण युक्त ग्रीष्म एवं वर्षा लक्षण युक्त वर्षा ऋतु इन भागों में विभक्त किया गया है।[5] रोगी की अवस्था के सन्दर्भ में भी कार्य और अकार्य के लिए काल और अकाल शब्द प्रयुक्त हुए है।[6] स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ में काल को परिणाम माना गया है और यह सम्पूर्ण भावों की उत्पत्ति और विनाश का कारण होने के साथ-साथ गणनात्मक स्वरूप वाला भी माना गया है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के अनुसार मानव शरीर या यूँ कहे कि प्रत्येक जीव शरीर में भी एक कालचक्र का अस्तित्व है। इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए

---

1 कालः पुनः परिणाम उच्यते।

— च०सं०; सूत्रस्थान, 11-45

2 कालजस्त्वेव पुरुषः कालजास्तस्य जामयः।
जगत् कालवंश सर्वं कालः सर्वत्र कारणम्।।

— वही; 25-25

3 वही

4 कालो हि नित्यगश्चावस्थिकश्चः तत्रावस्थिको विकारमपेक्षते, नित्यगस्तु ऋतुसात्म्यापेक्षः।

— वही; विमानस्थान, 1-6

5 शीतोष्णवर्षलक्षणाः पुनर्हेमन्तगीष्मवर्षाः संवत्सरः सः कालः।

— वही; सूत्रस्थान, 11-45

6 आतुरावस्थास्वादि तु कार्याकार्यं प्रति कालाकाल संज्ञा।

— वही; विमानस्थान, 18-137

एक प्रयोग[1] पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। यह प्रयोग एक कुत्ते पर किया गया। उस कुत्ते को रोज ठीक एक ही समय पर खाना दिया जाता था। कुछ दिनों तक ऐसा करने पर ठीक उसी समय पर उस कुत्ते के शरीर में भोजन से संबंधित प्रक्रिया स्यमेव प्रारंभ हो जाती है जैसे मुँह में लार का बनना तथा अमाशय से पाचक रस का स्राव[2] आदि। यह स्थिति मानव शरीर में भी होती है, जिसका अनुभव किया जा सकता है। यह प्रयोग निश्चित रूप से जीव शरीर में भी एक काल घटिका के अस्तित्व को सिद्ध करता है।

2.2.3 ज्योतिष शास्त्र

सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र का आधार काल है।[3] काल के विभिन्न अवयवों तथा स्वरूप का आधार मानकर ही इस शास्त्र के सिद्धान्त अस्तित्व में आए है। काल के प्रत्येक स्वरूप चाहे व अखण्ड हो अथवा गणित स्वरूप ज्योतिषशास्त्र में इन दोनों ही स्वरूपों पर काफी चर्चा उपलब्ध होती है। समयवाची 'काल' शब्द का प्रयोग अनेक प्रसङ्गो यथा आधान काल[4] अथवा जन्मकाल[5] आदि में हुआ है। इस काल के गणनात्मक भेद को स्थूल तथा सूक्ष्म इन कालों में बांटा गया है।[6] काल के सूक्ष्म मान

---

1 Chatterjee, Chandi Charan- ***Human Physiology,*** Medical Allied Agency, Calcutta, 1998, P. 455

2 वही

3 विदितस्ते मया भावस्तोषितस्तपसा ह्यहम्।
दद्यां कालाश्रयं ज्ञानं ग्रहाणां चरितं महत्।।
— सू॰सि॰; 1-5

4 आधानेकाले कमलोद्भवेन वर्णावलीभालतलान्तराले।
या कल्पिता पश्यति दैववित्तां होरागमज्ञानविलोचनेन।।
— जात॰भ॰; 13

5 जन्मकालतिथिवारतारकाश्चापि योगकरणक्षणभिधाः।
मङ्गलाय किल सन्तु पत्रिका यस्य शास्त्रविहिता विरच्यते।।
— वही; 18

6 लोकानामन्तकृत कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः।
सद्विधा स्थूलसूक्ष्मत्वान्मूर्तश्चामूर्त उच्यते।।
— सू॰सि॰; 1-10

में प्राण, पल, घटी, दिन, अहोरात्र, मास को स्वीकार किया गया है।[1] यह गणना मास से और आगे चलकर वर्ष[2], युग[3], चतुर्युग[4], मनु[5], कल्प[6], ब्रह्मा के दिन[7] आदि तक पहुँच गई है। अतः स्पष्ट है कि काल के स्वरूप का जितना विकास ज्योतिषशास्त्र में हुआ है उतना किसी अन्य ग्रन्थ में नहीं। काल को पुरुषाकृति के रूप में स्वीकार करना इस शास्त्र की अन्य विशेषता है। यद्यपि काल के पुरुषाकृति का संकेत अथर्ववेद के काल सूक्तों में उपलब्ध होता है[8] परन्तु वह स्वरूप अल्प विकसित ही है। ज्योतिष शास्त्र में इस काल स्वरूप का अत्यन्त विकसित स्वरूप उपलब्ध होता है, इसके शरीर के अवयवों यथा शिर, मुख, स्तन, हृदय, उदर, कटि प्रदेश, बस्ति, गुह्य,

---

1 नाडीषष्ट्या तु नाक्षत्र-महोरात्रं प्रकीर्तितम्।
तत् त्रिंशता भवेन्मासः सावनोऽर्कोदयैस्तधा।।
— सू॰सि॰; 1-12

2 ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत् संक्रान्त्या सौर उच्यते।
मासैर्द्वादशभिर्वर्षं दिव्यं तदह उच्यते।।
— वही; 1-13

3 पञ्चसंवत्सरमय- युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः।।
— ऋक् ज्यो॰; 1

4 तद् द्वादश सहस्राणि चतुर्यगमुदाहृम्।
सूर्याब्दसङ्ख्यया द्वित्रिसागरैरयुताहतै।।
— सू॰सि॰; 1-15

5 ससन्ध्यस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश।
कृतप्रमाणः कल्पादौ सन्धिः पञ्चदशः स्मृतः।।
— वही; 1-19

6 वही

7 इत्थं युगसहस्रेण भूतसंहार कारकः।
कल्पो ब्राह्ममहः प्रोक्तं शर्वरीतस्य तावती।।
— वही; 1-20

8 अथर्व.; 19-53, 19-54

उरू, जंघा, जानु तथा चरण आदि का वर्णन मिलता है।[1] इन अङ्गों में विभिन्न राशियों की स्थिति भी स्वीकार की गई है[2] जो अधोलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट की जा सकती है-

राशि	मे	वृ	मि	क	सि	कन्या	तु	वृ	धनु	म	कुं	मीन
अवयव	शिर	मुख	स्तन	हृदय	उदर	कमर	बस्ति	गुप्ताङ्ग	ऊरू	जंघा	द्यु	पैर

इस काल पुरुष के बाह्य अङ्गों के अतिरिक्त इसके आन्तरिक स्वरूप को स्पष्ट करने में समर्थ आत्मा, मन, सत्त्व, वाणी, ज्ञान, सुख, काम व दु:ख का भी वर्णन मिलता है।[3] इन पर विभिन्न ग्रहों का आधिपत्य स्वीकार किया गया है[4] जिसे अधोलिखित तालिका में सूचीबद्ध किया गया है-

ग्रह	सूर्य	चं	मं	बु	गु.	शु.	श.
आन्तरिक भाव	आत्मा	मन	सत्त्व	वाणी	ज्ञान सुख	काम	दु:ख

---

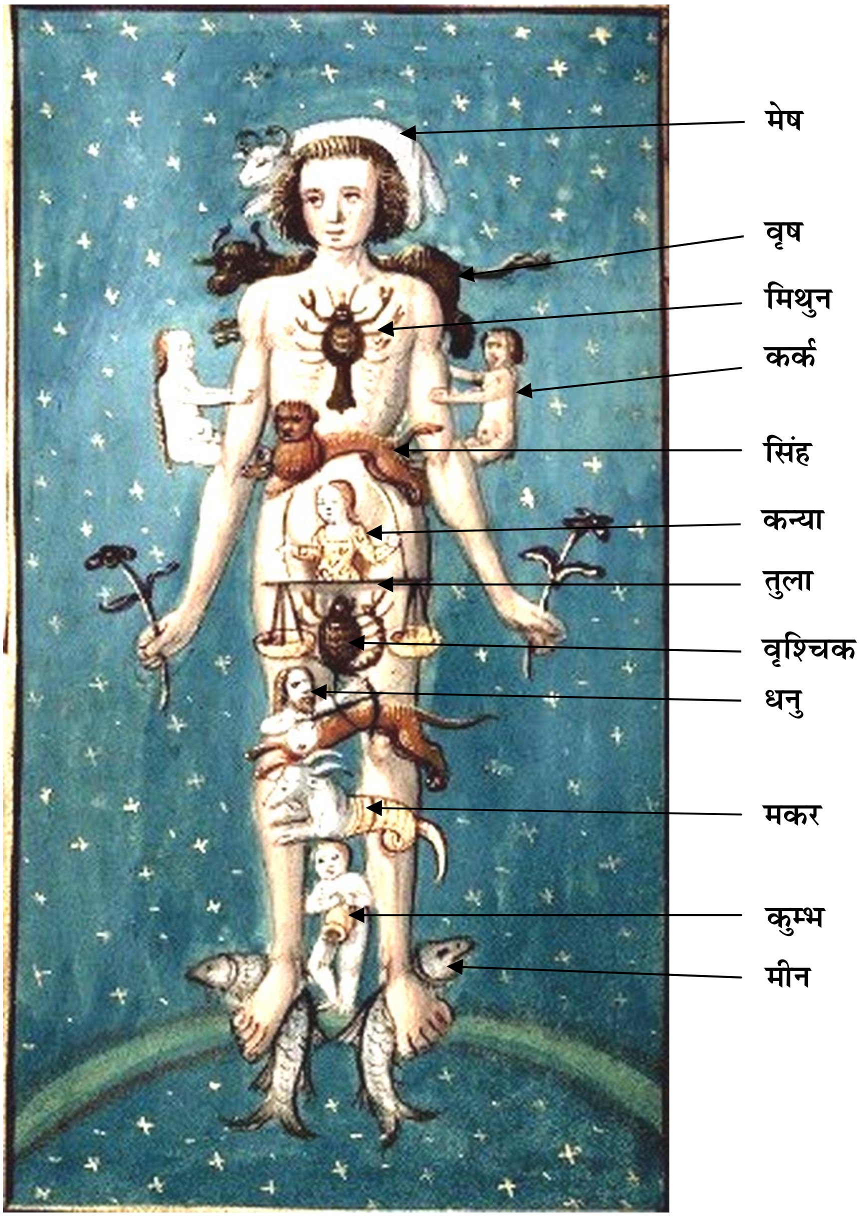
1 मेषादिमूर्धा वदनं गलाधो हृत्कुक्षिवासोभृतवस्तिगुह्यम्।
ततोरूजानुद्वयजङ्घमङ्घ्री पापान्वितं यत्तदुपैति नाशम्।।
— सर्वा०चि०; 1-7

2 वही

3 आत्मा रविः शीतकरो मनस्तु सत्त्वं कुजौ भाषणमब्जसुनूः।
वाचाम्पतिर्ज्ञानसुखे मदश्च शुक्रो भदेवर्कसुतस्तु दु:खम्।।
— वही; 1-57

4 वही

ज्योतिषशास्त्र में वर्णित कालपुरुष को निम्नलिखित आरेख द्वारा और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है-



जबकि काल पुरुष के आन्तरिक अवयवों के रूप में ग्रहों की कल्पना शैली को अधोलिखित सारिणी द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

आन्तरिक अवयव	**ग्रह**
आत्मा	रवि
मन	चन्द्रमा
सत्त्व	मंगल
वाणी	बुध
ज्ञान सुख	गुरु
काम	शुक्र
दुःख	शनि

इस काल पुरुष का मानव शरीर के साथ साम्य स्थापित किया गया है[1] और कहा गया है कि काल पुरुष के अङ्ग रूप राशियों के बलाबल के आधार पर ही मनुष्य के भी तत्तअङ्गो की पुष्टता तथा हीनता की कल्पना की गई है।[2] काल के प्रवाह को अनुकूल बनाने के सम्बन्ध में भी इस शास्त्र में निर्देश प्राप्त होते है।[3] ग्रहों

1 कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां कल्पयेत्प्रसवकाले।
सदसदग्रहसंयोगात् पुष्टान् सोपद्रवांश्चापि।।
— सारा॰; 3-6

2 आत्मादयो गगनगैर्बलिभिर्बलवत्तराः।
दुर्बलैर्दुबलास्ते स्युर्विपरीतं शनेः फलम्।।
— वही; 4-2

3 यस्य यश्च यदा दुःस्थः सतं यत्नेन पूजयेत्।
एषां धात्रा वरो दत्तः पूजिताः पूजयिष्यथ।
मानवानां ग्रहाधीना उच्छ्रायाः पतनानि च।
भावाभावौ च जगतां तस्मात् पूज्यतमा ग्रहाः।।
— वृ॰प॰हो॰; 87-(23-24)

को नारायण का स्वरूप माना गया है[1] और ग्रहार्चन द्वारा काल के प्रवाह में आने वाले सुख तथा दु:ख को नियंत्रित करने के विषय में अपने वैशिष्ट्य के[2] कारण ही यह शास्त्र आज भी उतना ही प्रासाङ्गिक है, जितना कि वैदिक काल में।

2.4 वेदाङ्ग ज्योतिष में काल

वेदाङ्ग ज्योतिष के तीनों ही संस्करण, ऋक्, याजुष् तथा आथर्वण ज्योतिष काल गणना को ही समर्पित है। ऋक् ज्योतिष के आरंभ में ही ग्रन्थ का उद्देश्य बताने के क्रम में इसे कालविधान निर्णय के लिए समर्पित बताया गया है।[3] सम्पूर्ण वेदाङ्ग साहित्य ही वैदिक ज्ञान को विकसित करने की दिशा में एक महान प्रयास कहा जा सकता है। परन्तु वेदों के यज्ञमूलक[4] तथा यज्ञों के काल पर आधारित होने के कारण[5] काल विधान शास्त्र ज्योतिष का महत्व स्वयं ही बढ़ जाता है। जैसा कि पूर्व में काल के स्वरूप को स्पष्ट करने के क्रम में स्पष्ट हो गया है कि काल के दो स्वरूप है अखण्ड तथा गणनात्मक या कलनात्मक[6] और इन्हीं भेदों के आधार पर वेदाङ्ग ज्योतिष के तीनों ही संस्करणों में उपलब्ध काल के स्वरूप को प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

1 प्राक् कर्म सूचकरवगा: कथमेषु भक्ति: प्राक्कर्म भोग शमनाय हि भोग मूचु:।
केचित्तया दुरित हज्जगदीशभक्ति: किन्तु ग्रहाधिगत एक स एव विष्णु:।।
— जात०सा०; 1-42

2 ग्रहग्रहणनक्षत्र तिथ्यादौ योगबाधने।
दानपूजादिकं कार्यं दैवज्ञं सम्यगर्चयेत्।।
— वही; 1-46

3 प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मन:।।
— ऋक् ज्यो०; 2

4 वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ता: कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञा:।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान।।
— याजुष् ज्यो०; 3

5 ऋक् ज्यो०; 36

6 लोकानामन्तकृत् काल: कालोऽन्य: कलनात्मक:।
सद्विधा स्थूलसूक्ष्मत्वान्मूर्तश्चामूर्त उच्यते।।
— सू०सि०; 1-10

2.4.1 ऋक् ज्योतिष

वेदाङ्ग ज्योतिष का यह प्रथम संस्करण है। इस ग्रन्थ में काल के दोनों स्वरूपों अर्थात् अखण्ड व कलनात्मक में से केवल कलनात्मक स्वरूप का ही विशद वर्णन उपलब्ध होता है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही काल की वंदना की गई है[1] और ग्रन्थ का उद्देश्य प्रतिपादित करते हुए इसे काल-ज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया है।[2] इस काल को भाष्यकारों ने काल पुरुष सूर्य के रूप में उद्धत् किया है।[3] इस काल को सूर्य-चन्द्र तथा नक्षत्रों पर आधारित कहा गया है[4] यह सिद्ध करता है ग्रन्थ में कलनात्मक काल को ही विशेष रूप से प्रस्तुत किया गया है। जहाँ तक अखण्ड काल का प्रश्न है काल पुरुष के रूप में उनका स्मरण[5] करना ही इसके अस्तित्व व महत्ता को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। कलनात्मक काल के वर्णन में जिस सबसे बड़े कालमान का उल्लेख हुआ है वह युग है[6] तथा इस युग के पाँच संवत्सरों से मिलकर बने होने की बात कही गई है।[7]

---

1 प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः।।
— ऋक् ज्यो०; 2

2 वही

3 शिरसा कालं कालपुरुषं रविं प्रणम्य सरस्वतीमभिवाद्य अभिवन्द्य लगधस्य महात्मनो महर्षेः कालज्ञानमहं शुचिः प्रवक्ष्यामि वच्मीति। लगधः कश्चित् प्राचीनो महर्षिस्तेन पञ्चवर्षात्मके युगे यथा कालानां रविन्चन्द्रसावनदिनादीनां ज्ञानं कृतं तथा तदानयनमहं शुचिर्वच्मीत्यर्थः।।
— वही; 2 सुधा०भा०

4 ज्योतिषां सूर्यचन्द्रनक्षत्राणामयनं चलनं कृत्स्नं सफलं विप्राणां ज्योतिर्विदां
समस्तं स्वीकृतमनुपूर्वशो यथाक्रमं लोके संसारे यज्ञकालार्थसिद्वये वक्ष्यामिति स्फुटम्।
— वही; 3 सुधा०भा०

5 वही; 2

6 पञ्चसंवत्सरमय-युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरना शुचिः।।
— वही; 1

7 वही

इस संवत्सर में दो अयन कहे गए हैं- उत्तरायण और दक्षिणायन।[1] इसके बाद ऋतु, मास, नक्षत्र, अहोरात्र, मुहूर्त्त, तिथि, पर्व आदि का भी वर्णन है[2] सूक्ष्म कालमानों में नाडिका[3], कला[4], पल[5], आढक[6], कुम्भिका[7], द्रोण[8], काष्ठा[9] आदि का उल्लेख है। प्रस्तुत ग्रन्थ में कालमान के लिए प्रयुक्त विभिन्न नक्षत्रों के अधिष्ठाताओं की भी कल्पना की गई है।[10] कालज्ञान को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध करने के क्रम में कहा गया है कि इसे जानने वाला ही इस लोक में पुत्र-पौत्रादिकों तथा मरणोपरान्त इन्हीं ज्योतिषमान लोकों को प्राप्त करता है।[11] पञ्च सम्वत्सरात्मक युग के उसके मूल

---

[1] प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक।
सार्पार्धे दक्षिणाऽर्कस्य माघश्रावण्योः सदा।।
— ऋक् ज्यो०; 6

[2] इत्येतन्मासवर्षाणां मुहूर्तोदयपर्वणाम्।
दिनर्त्त्वयनमासानां व्याख्यानं लगधोऽब्रवीत्।।
— वही; 29

[3] कला दश च विंशा, स्याद् द्वे मुहूर्त्तस्य नाडिके।
तत्रिंशद् द्युकलानां तु षट्शती त्र्यधिका भवेत्।।
— वही; 16

[4] वही

[5] नाडिके द्वे मुहूर्त्तस्तु पञ्चाशत्पलमाढकम्।
आढकात् कुम्भिका द्रोणः कुडवैर्वधते त्रिभिः।।
— वही; 17

[6] वही

[7] वही

[8] वही

[9] ससप्तैकं भयुक् सोमः सूर्यो द्यूनि त्रयोदश।
नवमानि च पञ्चान्हः काष्ठा पञ्चाक्षरा स्मृता।।
— वही; 18

[10] नक्षत्रदेवता एता एताभिर्यज्ञकर्मणि।
यजमानस्य शास्त्रज्ञैर्नाम नक्षत्रजं स्मृतम्।।
— वही; 28

[11] सोमसूर्यस्तृचरितं लोकं लोके च सन्ततिम्।
सोमसूर्यस्तृचरितं विद्वान वेदं विदश्नुते।।
— वही; 30

स्वरूप में जानना ही कालज्ञान कहा गया है[1] स्पष्ट है कि प्रस्तुत ग्रन्थ में कलनात्मक काल को जानकर ही उस अखण्ड काल के स्वरूप विषयक ज्ञान प्राप्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है।

2.4.2 याजुष् ज्योतिष

याजुष् ज्योतिष तथा ऋक् ज्योतिष में विषयवस्तु विषयक अत्यधिक साम्यता के कारण काल स्वरूप के सन्दर्भ में इन दोनों ही ग्रन्थों में पर्याप्त समानता पाई जाती है। ग्रन्थ में कलनात्मक अर्थात् गणनात्मक काल के विषय में चर्चा का आरम्भ प्रथम श्लोक से ही हो जाता है जहाँ युग, संवत्सर, दिन, ऋतु तथा अयन का उल्लेख करते हुए इसके अध्यक्ष के रूप में प्रजापति की स्तुति की गई है।[2] यहाँ भी ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य यज्ञों के निमित्त उचित समय का निर्धारण बताया गया है और कहा गया है कि इस काल विधान शास्त्र को जानने वाला ही यज्ञ को जानता है।[3] इस ग्रन्थ में काल की सबसे बड़ी इकाई के रूप में युग को स्वीकार किया गया है और इसे पाँच वर्षों वाला कहा गया है।[4] स्पष्ट है कि युग के बाद के काल की इकाई वर्ष है। यहाँ

---

1 पञ्चसंवत्सरमयं–युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः।।
— याजुष् ज्यो॰; 1

2 वही

3 वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्यौतिषं वेद स वेद यज्ञम्।।
— वही; 3

4 माघशुक्लप्रपन्नस्य पौषकृष्णसमापिनः।
युगस्य पञ्चवर्षस्य कालज्ञानं प्रचक्षते।।
— वही; 5

वर्ष के बाद काल की इकाईयों में अयन[1], ऋतु[2], मास[3], पक्ष[4], अहोरात्र[5], दिन[6], रात[7], नक्षत्र[8], तिथि[9] आदि का उल्लेख किया गया है। गणनात्मक काल की अन्य सूक्ष्म

---

1 स्वराक्रमेतेसोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदादियुगं माघस्तपः शुक्लोऽयनंह्युदक्।।
— याजुष् ज्यो॰; 6

2 वसुस्त्वष्टा भवोऽजश्च मित्रः सर्पोऽश्विनौ जलम्।
धाता कश्चायनाद्याः स्युरर्धपञ्चमभस्त्वृतुः।।
— वही; 10

3 एकान्तरेऽह्नि मासे च पूर्वान् कृत्वा दिरूत्तरः।
अर्धयोः पञ्चपर्वाणां मृदू पञ्चदशाष्टमौ।।
— वही; 11

4 विषुवन्तं द्विरभ्यस्तं रुपोनं षड्गुणीकृतम्।
पक्षा यदर्धं पक्षाणां तिथिः स विषुवान स्मृताः।।
— वही; 23

5 यदुत्तरस्यायनतो गतं स्याच्छेषं तथा दक्षिणतोऽयनस्य।
तदेव षष्ट्या द्विगुणं विभक्तं सद्वादशं स्याद् दिवसप्रमाणम्।।
— वही; 40

6 सूर्यर्क्षभागान् नवभिर्विभज्य शेषं द्विरभ्यस्य दिनोपभुक्तिः।
तिथि युता भुक्तिदिनेषु कालो योगो दिनैकादशकेन तद्भम्।।
— वही; 26

7 धर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपाह्रास उद्गतौ।
दक्षिणेतौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्त्येयमेन तु।।
— वही; 8

8 जौ द्रा गः खे श्वे ही रो षाश्चिन्मूषकण्यः सूमाधाणः।
रे मृ (म्रे) घाः स्वा पो जः कृष्यो ह ज्ये ष्ठा इत्यृक्षा लिङ्गैः।।
— वही; 18

9 या पर्वभादानकलास्तासु सप्तगुणा तिथिः।
युक्ता स्तासां विजानीयात् तिथिभादानिकाः कलाः।।
— वही; 21

इकाईयाँ में मुहूर्त[1], पल[2], नाडिका[3], कला[4], काष्ठा[5] आदि परिगणित है। कालावयवों में नक्षत्र[6] भी महत्त्वपूर्ण माने गए है और इनके अधिष्ठाता देवताओं[7] के साथ-साथ इनके क्रूर व उग्र वर्ग[8] भी बताए गए है। काल खण्ड में शुभत्व अथवा अशुभत्व के अन्वेषण का यह प्रथम प्रयास कहा जा सकता है। याजुष् ज्योतिष में वर्णित काल विमर्श के मूल पुरुष के रूप में महर्षि लगध का स्मरण किया गया है[9] और कहा

---

1 कला दश सविंशा स्याद् द्वे मुहूर्त्तस्य नाडिके।
तत्रिंशत् द्युकलानां तु षट्शती त्र्यधिका भवेत्।।
— याजुष् ज्यो॰; 38

2 पलानि पञ्चाशदपां धृतानि तदाढकं द्रोणमतः प्रमेयम्।
त्रिभिर्विहीनं कुडवैस्तु कार्यं तन्नाडिकायास्तु भवेत् प्रमाणम्।।
— वही; 24

3 वही

4 पञ्चत्रिंशं शतं पौष्णमेकोनमयनान्यृषेः।
पर्वणां स्याच्चतुष्पादी काष्ठानां चैवताः कला।।
— वही; 30

5 ससप्तैकं भयुक् सोमः सूर्यो द्यूनि त्रयोदश।
उत्तमानि तु पञ्चान्हः काष्ठा पञ्चाक्षरा भवेत्।।
— वही; 39

6 वही; 18

7 अग्निः प्रजापतिः सोमो रुद्रोऽदितिर्वृहस्पतिः।
सर्पाश्च पितरश्चैव भगश्चैवार्यमापि च।।
सविता त्वष्टाऽथ वायुश्चेन्द्राग्नी मित्र एव च।
इन्द्रो निर्ऋतिरापो वै विश्वेदेवास्तथैव च।।
विष्णुर्वसवो वरुणोऽज एकपात् तथैव च।
अहिर्बुध्न्यस्तथा पूषा अश्विनौ यम एव च।।
— वही; 32-34

8 उग्राण्यार्द्रा च मित्रा च विशाखा श्रवणोऽश्वयुक्।
क्रूराणि तु मघा स्वाती ज्येष्ठा मूलं यमस्य यत्।।
— वही; 36

9 इत्येतन्मासवर्षाणां मुहूर्त्तोदयपर्वणाम्।
दिनर्त्त्वयनमासानां व्याख्यानं लगधोऽब्रवीत्।।
— वही; 43

गया है कि इस काल स्वरूप को जानने वाले व्यक्ति मरणोपरान्त, चन्द्रलोक, सूर्यलोक तथा नक्षत्रलोक को प्राप्त करता है जबकि इस लोक में पुत्र पौत्रादिकों का सुख भोगता है।[1] यह वर्णन यह संकेत देता है कि काल के इस गणनात्मक स्वरूप को जानकर ही व्यक्ति उस अखण्ड और अक्षर काल को प्राप्त कर सकता है।

2.4.3 आथर्वण ज्योतिष

भाषा शैली और वर्ण्य विषय के दृष्टिकोण से आथर्वण ज्योतिष अपने पूर्ववर्ती वेदाङ्ग-ज्योतिषी संस्करणों से नितान्त भिन्न है। जहाँ ऋक् ज्योतिष तथा याजुष् ज्योतिष ग्रन्थों में आचार्य लगध के काल विषयक सिद्धान्तों का संग्रह है।[2] जबकि आथर्वण ज्योतिष ब्रह्मा तथा महर्षि कश्यप के मध्य संवाद के रूप में प्रस्तुत है।[3] ग्रन्थ में अपेक्षाकृत छोटे कालमानों पर ही चर्चा की गई है। ग्रन्थ में प्रयुक्त सबसे बड़ा कालकान ऋतु है।[4] अन्य कालमानों में पक्ष[5], तिथि[6],

---

1 सोमसूर्यस्तृचरितं विद्वान वेद विदश्नुते।
सोमसूर्यस्तृचरितं लोकं लोके च सन्तनिम्।।
— याजुष् ज्यो॰; 44

2 i) इत्येतन्मासवर्षाणां मुहूर्तोदयपर्वणाम्।
दिनर्त्त्वयनमासानां व्याख्यानं लगधोऽब्रवीत्।।
— ऋक् ज्यो॰; 29

ii) याजुष् ज्यो॰; 43

3 अथ ब्रह्माणं स्वयभुं (वं) गुरुं लोक पितामहम्।
ब्रह्मलोके सुखासीनं काश्यपः परिपृच्छति।।
— आथर्वण ज्यो॰; 1

4 स्थाप्यं च कर्म ऋतुभिश्च यूपो ग्रहप्रवेशो गजबन्धनं च।
ग्रामेऽथवासो नगरे पुरे वा शनैश्चरै सर्वमिदं प्रशस्तम्।।
— वही; 100

5 कृत्रिरासदिवादरंभूत दिवाशुचष्ट दिवाहर पूर्णदिवा।
इतिविष्टिरहर्गण रात्रिचरानच कर्म भवेत् कृतमाशु शुभम्।।
— वही; 58

6 नन्दाभद्रा जया रिक्ता पूर्णा पक्षस्तु पंचमी।
तिथयः पंच विज्ञेया पक्षयोरुभयोरपि।।
— वही; 66

नक्षत्र[1], करण[2], वार[3], मुहूर्त्त[4], रात्रि[5], दिन[6] आदि है। काल के सूक्ष्म परिणामों में निमेष[7], लव[8], कला[9] तथा त्रुटि[10] शब्द प्रयुक्त हुए है। सूक्ष्मकालावय 'मुहूर्त्त' के निर्धारण हेतु सूर्य को आधार माना गया है[11] और इसकी आकाशीय स्थिति के आधार पर विभिन्न मुहूर्त्तो का नामकरण किया गया है।[12] ग्रन्थ की विशेषता यह है कि सूर्य की आकाशीय स्थिति से संबंधी इन मुहूर्त्त संज्ञक कालमानों में शुभत्व, अशुभत्व, क्रूर, उग्र

---

1 नक्षत्रेण करणेन मुहूर्तेनेति नित्यशः।
नक्षत्रस्य च दूरत्वाद् द्वाभ्यां कर्म समारभेत्।।
— आथर्वण ज्यो॰; 84

2 शुक्ल प्रतिपदि रात्रौ दिविपंचम्यां तथाष्टम्यां रात्रौ।
द्वादश्यामपि दिवा प्रथमं प्रतिपद्यते करणम्।।
— वही; 30

3 आदित्यः सोमोभौमश्च तथा बुधबृहस्पतिः।
भार्गवः शनैश्चरश्चैव एते सप्तदिनाधिपा।।
— वही; 93

4 तस्य सुश्रूषमाणस्य काश्यपस्य महात्मनः।
प्रोवाच भगवान् सर्वं मुहूर्तज्ञानमुत्तमम्।।
— वही; 3

5 किं प्रमाणं मुहूर्तानां रात्रौ वा यदि वा दिवा।
चन्द्रादित्य गतं सर्वं, तन्मे प्रब्रूहि पृच्छतः।।
वही; 2

6 वही

7 द्वादशाक्षि निमेषस्तु लवो नामाभिधीयते।
लवास्त्रिंशत् कलाज्ञेया कलात्रिंशत् त्रुटिर्भवेत्।।
— वही; 4

8 वही

9 वही

10 वही

11 ववं च वालवं चव कौलवं तैतिलेति च।
गराजिर्वणिजं चैव विष्टिर्भवति सप्तमम्।।
शकुनिं चतुष्पदं नागं चतुर्थं कौस्तुभं भवेत्।
एकैकस्यतु यत्कर्म तद्वक्ष्यामि पृथक्-पृथक्।।
— वही; 34-35

12 वही

आदि गुणों का अन्वेषण किया गया है।[1] इन मुहूर्त्तो में भी मध्यदिन में रहने वाले अभिजित मुहूर्त्त में विशिष्ट शुभत्व का प्रतिपादन किया गया है।[2] तिथि के एक भाग 'करण' का नामकरण किया गया है[3] और इनके भी शुभाशुभत्व पर विचार किया गया है।[4] करण के बाद तिथियों के भी शुभ और अशुभ गुणों से युक्त होने की बात की गई है।[5] काल के इन खण्डों के शुभाशुभत्व में भी तुलना की गई है और इन्हे अधोलिखित क्रम में श्रेष्ठ बताया गया है–

वार–करण–योग–तारा–चन्द्रमा

वार की कल्पना भी इस ग्रन्थ की एक अन्य विशेषता है। यह पहला वेदाङ्ग ज्योतिषीय ग्रन्थ है जिसमें वार का वर्णन मिलता है।[6] सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र,

---

1 अत ऊर्ध्वंतु सर्वेषामानुपूर्त्याच्छुभाशुभम्।
सर्व विस्तरशस्ताश्च तन्मे निगदितः श्रृणुः।।
— आथर्वण ज्यो॰; 12

2 अभिजित्सर्वकामाय सर्वकामार्थसाधनः।
अर्थसञ्चय मानानामध्वानं गन्तुमिच्छतात्।।
— वही; 21

3 i) शुक्ल प्रतिपदि रात्रौ दिविपंचम्यां तथाष्टम्यां रात्रौ।
द्वादश्यामपि दिवा प्रथमं प्रतिपद्यते करणम्।।
— वही; 30

ii) पौर्णमास्यां ववं रात्रौ तच्चतुर्थ्यां पुनर्दिवा।
तद्वि तत्सप्तम्यां रात्रौ तच्चैवैकादश्यां दिवा।।
— वही; 31

4 शुभाशुभ निबद्धानि करणानि निबोधत।
तानि तत्त्वेन विज्ञाय नापदं प्राप्नुयान्नरः।।
— वही; 32

5 आदौविसर्जयेत धीरः प्रस्थाने प्रथमां तिथिम्।
द्वितीया संप्रयातस्य सिद्धमर्थं विनिर्दिशेत्।।
— वही; 59

6 आदित्यः सोमोभौमश्च तथा बुधबृहस्पतिः।
भार्गवः शनैश्चरश्चैव एते सप्तदिनाधियाः।।
— वही; 93

शनि तथा रविवार के नामोल्लेख के बाद इनके भी शुभ और अशुभ होने की बात की गई है। तदुपरान्त इन वारों को कुछ विशेष कार्यों के लिए प्रशस्त जबकि कुछ के लिए निन्दित माना गया है।[1] नक्षत्रों के वर्णन से पहले ही बता दिया गया है कि नक्षत्रों के शुभाशुभत्व को जानकर काम करने वाला व्यक्ति उन्नति को अनायास ही प्राप्त कर लेता है।[2] सूर्य-नक्षत्राधारित काल विमर्श के बाद जीव वैज्ञानिक काल घटिका से संबंधित विमर्श इस ग्रन्थ की महत्ता को और भी बढ़ा देता है। जीववैज्ञानिक काल घटिका का वर्णन स्त्री के ऋतुकाल के सन्दर्भ में किया गया है।[3] स्त्री का ऋतुकाल भी एक निश्चित कालचक्र से बंधा होता है[4] और यह मान करीब चान्द्रमास का होता है।[5] इस काल घटिका से सम्बन्धित कालखण्डों के भी शुभाशुभत्व का निर्णय इस ग्रन्थ में किया गया है।[6] तथा संतानोत्पत्ति से इसके मध्य संबंध स्थापित किया गया है।[7] इन कालमानों के वर्णन के बाद वे उपाय भी बताए गए है जिससे इन कालमानों के अशुभत्व का नाश अथवा उसमें कमी लाई जा

---

1 आथर्वण ज्यो॰; 94-100

2 पृथक् पुरुषविज्ञेयं नक्षत्राणां शुभाशुभम्।
आत्म सम्पत् करं ज्ञेयमात्मानमृद्धिमिच्छताम।।
— वही; 102

3 ऋतुकाले तु नारीणां नान्यत् पुरुषदशर्नम्।
संभाषं न च कुर्वीत यदीच्छेत् संततिं शुभाम्।।
— वही; 134

4 The process of discharging blood and other materials from the lining of the uterus in sexually mature non-pregnant woment at intervals of about and lumar month until the menopouse.
– Webster, Thomas- ***Illustrated Oxford Dictionary,*** Oxford University Press, New york, 1998, P. 509

5 वही

6 रजसा विप्लुता नारी द्विजस्य ह्युपसेविनः।
प्रज्ञा तेजोबलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते।।
— वही; 137

7 युग्मासु पुत्राः जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
तस्माद् युग्मासुपुत्रार्थी संविशेदार्तवेस्त्रियाम्।।
— वही; 143

सकती है।[1] उपरोक्त तथ्य यह सूचित करते है कि आथर्वण ज्योतिष के काल में विभिन्न कालखण्डों के शुभाशुभत्व के निर्धारण करने की विद्या विकसित हो चुकी थी और अशुभ कालखण्डों के अशुभत्व को शान्त करने तथा उन्हे शुभ गुणों से युक्त करने के उपायों की दिशा में प्रगति की जा चुकी थी।

उपर्युक्त विवरण से यह सिद्ध होता है कि काल के दो स्वरूप है अखण्ड काल और कलनात्मक काल, जहाँ तक वेदाङ्ग ज्योतिष में वर्णित काल स्वरूप का प्रश्न है यह काल के दोनों ही स्वरूपों को प्रस्तुत करने का अद्वितीय प्रयास कहा जा सकता है। वेदाङ्ग ज्योतिष की विषय वस्तु यह सिद्ध करती है कि ये ग्रन्थ काल के स्वरूप का यथार्थ निरूपण करने में अवश्य ही सफल सिद्ध हुये है।

---

[1] शान्तिभिश्च तथान्यच्चोपवासैर्व्रतादिभिः।
येऽर्चयन्ति महात्मानं सर्वं प्रशमयन्ति ते।।
उपवासैर्गवांदानैस्तर्पणैश्च मनीषिणाम्।
ग्रहनक्षत्रजाः दोषा प्रशाम्यन्तीह देहिनाम्।।
नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव देवता पितरो द्विजा।
पूजिता प्रतिपूज्यन्ते निर्दहन्तापमानिताः।।
— आथर्वण ज्यो॰; 151-161

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

वेदाङ्ग ज्योतिष में वर्णित काल परिमाण की इकाईयाँ

"लोकानामन्तकृत् कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः।

स द्विधा स्थूलसूक्ष्मत्वान्मूर्तश्चामूर्त उच्यते॥"[1]

सूर्यनारायण के अंशभूत पुरुष प्रोक्त[2] सिद्धान्त आज भी विद्वत् समाज में स्वीकृत है। यह सत्य है कि काल अपने मूल रूप में अखण्ड, अविभाज्य और अनित्य है, परन्तु लोकव्यवहार की दृष्टि से इस काल का विभाजन अत्यन्त अनिवार्य हो गया था। मानव सभ्यता के आरंभ में सूर्य की उपस्थिति तथा अनुपस्थिति से दिन व रात का, चन्द्रमा द्वारा तिथियों, पक्ष व मास आदि कालमानों का अन्वेषण हुआ। इतना अवश्य है कि उस समय काल के ये अवयव किसी अन्य संज्ञाओं द्वारा जाने जाते होंगे। कालमान विवेचना में दो प्रमुख अवयव माने जा सकते हैं- (i) कालमान की आवश्यकता तथा (ii) कालमान के निर्धारण बिन्दु। इन अवयवों पर क्रमशः दृष्टिपात आवश्यक है-

i) कालमान की आवश्यकता

मानव को अपने दैनन्दिन कार्यों के निष्पादन हेतु कालमान के ज्ञान की आवश्यकता का अनुभव हुआ होगा। कई कार्य ऐसे थे जिसमें प्रकाश की अधिक आवश्यकता होती थी जबकि कुछ में कम की।

अतः दिन तथा रात को जानना आवश्यक प्रतीत हुआ होगा। इसी प्रकार अपनी

---

1 सू॰सि॰; 1-10

2 न मे तेजः सहः कश्चिदाख्यातुं नास्ति मे क्षणः।
मदंशः पुरुषोऽयं ते निश्शेषं कथयिष्यति॥
— वही; 1-6

जिज्ञासा तथा अन्वेषण प्रवृत्ति के कारण तिथि व पक्षों का अन्वेषण हुआ। कृषि आदि कार्य के लिए ऋतुओं का ज्ञान आवश्यक हुआ होगा जबकि बार-बार वर्षा आदि आने के कारण वर्ष अथवा संवत्सर के अस्तित्व का बोध मानव को होने की संभावना स्वीकृत की जा सकती है। अतः कहा जा सकता है कि अपने दैनिक कार्यों, कृषि, आजीविका, भोजन आदि ऐसे तत्त्व थे, जिससे मानव सभ्यता के आदिकाल में कालमान की इकाईयाँ अस्तित्व में आईं। वैदिक काल आते-आते मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ी और जीवनशैली में जटिलताओं का आगमन हो चुका था। यही कारण है कि कृषि, भोजन, आजीविका के साथ-साथ यज्ञादि अनुष्ठानों की अधिकता ने भी विभिन्न सूक्ष्म कालमानों की आवश्यकता को बढ़ावा दिया।

ii) कालमान के निर्धारक बिन्दु

विभिन्न कालमानों यथा दिन, रात, मुहूर्त्त, पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष आदि के निर्धारण के लिए सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पृथिवी की कक्षा, पृथिवी की अक्षीय गति आदि महत्त्वपूर्ण कारक हैं। मानव सभ्यता के आरम्भ में दिन तथा रात के निर्धारण हेतु सूर्य को महत्त्वपूर्ण माना गया अर्थात् जब तक सूर्य दिखे, तब तक दिन और जब सूर्य अनुपस्थित हो तो रात्रि। इसी प्रकार चन्द्रमा की घटती, बढ़ती कलाओं ने तिथियों व पक्षों के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निवर्हण किया। वातावरण में होने वाले विभिन्न परिवर्त्तन व तापमान ने ऋतुओं का वर्गीकरण सम्भव किया। मानव मस्तिष्क ने यह भी अनुभव किया होगा कि इन ऋतुओं की आवृत्ति बार-बार एक विशेष काल के अन्तराल पर होती है और यह कालावधि कुछ लम्बी थी। इस कालावधि का निर्धारण वर्षा ऋतु को आधार मानकर किया गया और यह कालावधि वर्ष मानी गई। स्पष्ट है कि प्राचीन समय में कालमान के निर्धारक बिन्दु के रूप में सूर्य, चन्द्र व ऋतुओं को स्वीकार किया गया था। जैसे-जैसे मानव सभ्यता विकसित होती गई वैसे-वैसे कालमान के निर्धारक बिन्दु और स्पष्ट होते गए। जैसे दिन-रात का कारण पृथिवी की अक्षीय गति को माना गया। जबकि ऋतुओं व वर्ष का कारण पृथिवी की कक्षीय गति स्वीकृत हुई। इस सन्दर्भ में वेदाङ्ग ज्योतिष को कालमान की विकास

यात्रा का एक महत्त्वपूर्ण मोड़ माना जा सकता है। जहाँ कालमानों की आवश्यकता तथा कालमान की गणना के निर्धारक बिन्दु व गणना पद्धति पर विशद् चर्चा की गई है। काल की इन अवधियों में संवत्सर[1], वर्ष[2], अयन[3], ऋतु[4], मास[5], पर्व[6], पक्ष[7], तिथि[8], दिन[9], मुहूर्त्त[10], पल[11], आढक[12], द्रोण[13], कुडव[14], नाड़ी[15], करण[16] आदि का वर्णन किया है। वेदाङ्ग ज्योतिष में प्राप्त उपरोक्त समस्त काल–मान को उनके घटते हुए क्रम में प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

1 पञ्चसंवत्सरमयं–युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः।।
— याजुष् ज्यो॰; 11

2 इत्येन्मासवर्षाणां मुहूर्तोदयपर्वणाम्।
दिनर्त्त्वयनमासानां व्याख्यानं लगधोऽब्रवीत्।।
— ऋक् ज्यो॰; 29

3 वही

4 वही

5 वही

6 वही

7 शुक्ल प्रतिपदि रात्रौ दिविपंचम्यां तथाष्टम्यां रात्रौ।
द्वादश्यामपि दिवा प्रथमं प्रतिपद्यते करणम्।।
— आथर्वण ज्यो॰; 30

8 आदौविसर्जयेत धीरः प्रस्थाने प्रथमां तिथिम्।
द्वितीया संप्रयातस्य सिद्धमर्थं विनिर्दिशेत्।।
— वही; 59

9 आदित्यः सोमोभौमश्च तथा बुधबृहस्पतिः।
भार्गवः शनैश्चरश्चैव एते सप्तदिनाधियाः।।
— वही; 93

10 ऋक् ज्यो॰; 29

11 पलानि पञ्चाशदपां धृतानि तदाढकं द्रोणमतः प्रमेयम्।
त्रिभिर्विहीनं कुडवैस्तु कार्यं तन्नाडिकायास्तु भवेत् प्रमाणम्।।
— याजुष् ज्यो॰; 24

12 वही

13 वही

14 वही

15 वही

16 एकादशभिः करणै मसिः संप्रतिपद्यते।
ध्रुवाणि तत्र चत्वारि चराण्यन्यानि सप्तच।।
— आथर्वण ज्यो॰; 33

3.1 युग

युग शब्द 'युज्' धातु से ग्रहण किया गया है, जिसका अर्थ है- 'जुड़ना'।[1] जुड़ने से तात्पर्य है- अनेक वर्षों का संग्रह[2], युग शब्द का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन काल से ही किया जाता रहा है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में उपलब्ध होता है जहाँ इसका प्रयोग सामान्यतया एक पीढ़ी के लिए किया गया है।[3] ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में ही इस शब्द का प्रयोग वर्ष के लिए हुआ है।[4] ऋग्वेद में इसके अतिरिक्त भी अन्य कई ऐसे स्थल हैं जहाँ 'काल' शब्द एक दीर्घ कालावधि में प्रयुक्त हुआ है[5] पर इतना अवश्य है कि यह निर्णय कर पाना अत्यन्त कठिन है कि यहाँ वर्णित युगमान क्या था? वाजसनेयी संहिता भी तीन युगों के विषय में कहता है[6] परन्तु इस युग के कालमान के संदर्भ में यह श्रुति भी मौन है। अथर्ववेद में एक स्थान पर कहा

---

1 आप्टे, वामन शिवराम- संस्कृत हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1993, पृ. 836

2 पाण्डेय, दीपनारायण- प्राचीन भारत के युग चक्र, उर्मिला पब्लिकेशंस, जौनपुर, 1993, पृ. 61

3 तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्त्तेन्यं मघवा नाम विभ्रत्।

— ऋ०; 1-103-4

4 दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान दशमे युगे। अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः।।

— वही; 1-158-6

5 i) युगे युगे विदथ्यं गृणदभ्योग्नेरथिं यशसं धेहि नत्यसीम्।

— वही; 6-8-5

ii) या ओंषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगे पुरा।

— वही; 10-97-1

iii) देवाना पूर्व्ये युगे सतः सदजायत्।

— वही; 10-72-2

iv) ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य ये मथुः।
पर्यन्या नाहुषा युगा मह्वारंजासि दीयथः।।

— वही; 5-73-3

v) मनुष्या युगानि

— वही; 1-192-11

vi) त्वामग्ने युगे युगे दधिरे देवासः।

— वही; 6-15-8

6 या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगम्पुरा।

— वा०सं०; 12-75

गया है कि- “हम तुझे एक सौ, दस हजार वर्ष, दो तीन यहाँ तक कि चार युग प्रदान करते हैं।”[1] स्पष्ट है कि यहाँ युग की अवधि दस हजार वर्षों से अधिक मानी गई है, क्योंकि कालक्रम का वर्णन आरोही-क्रम में हुआ है। परन्तु तैत्तिरीय संहिता में कृत-त्रेता-द्वापर से रक्षा करने की प्रार्थना का वर्णन उस समय इन तीन युगों के प्रचलन का ठोस प्रमाण है।[2] तैत्तिरीय ब्राह्मण में इन तीन युगों के अतिरिक्त ‘काल’ का भी वर्णन उपलब्ध होता है।[3] महाभारत में पञ्चसम्वत्सरात्मक युग का निर्देश प्राप्त होता है।[4] आदिपर्व में पाण्डवों का वर्णन करने के क्रम में कहा गया है कि एक-एक वर्ष के अन्तर से उत्पन्न हुए कुरुओं में श्रेष्ठ पाण्डु के वे पाँचों पुत्र युग के पाँच वर्षों के समान लगते हैं।[5]

3.1.1 वेदाङ्ग ज्योतिषीय युग गणना प्रणाली

वेदाङ्ग ज्योतिष के ऋग्वेदीय संस्करण ऋक् ज्योतिष में ‘युग’ पर विशेष रूप से विचार किया गया है।[6] ऋक् ज्योतिष का प्रथम श्लोक ही यह प्रतिपादित करता है कि एक युग में कुल पाँच सम्वत्सर होते हैं।[7] इस पञ्च सम्वत्सरात्मक युग के अध्यक्ष

---

1 शतं तेऽयुत हायनाब्द्धे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।

— अथर्व०; 8-2-21

2 कृतमयानां........ त्रेतायानां.......... द्वापरोयानां.......... पुरोधायामस्मिन् कर्मन्नस्यां देवहृत्याम्।

— तै०सं०; 4-3-3

3 कृताय सभाविनं। त्रेताया आदिनवदर्शनम्। द्वापराय बहिः सदनम्। कलये समास्थाणुम्।

— तै०ब्रा०; 3-4-1

4 अनुवत्सरं जाता अपि ये कुरुसत्तमाः।
पांडुपुत्रा त्यराजंत पंच संवत्सरा इव।।

— महा०; आदिपर्व, 124-22

5 वही

6 पञ्चसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः।।

— ऋक् ज्यो०; 1

7 वही

के रूप में 'प्रजापति' का स्मरण किया गया है।[1] ऋक् ज्योतिष में ऋषि कहते हैं कि इस युग का प्रारंभ माघ मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से होता है[2] तथा समाप्ति पौष मास के कृष्ण पक्ष को होती है।[3] ऋक् ज्योतिष में महर्षि लगध युग के प्रारम्भ तथा समाप्ति की सीमा बताने के साथ-साथ उस विशेष आकाशीय घटना का भी उल्लेख करते हैं जिसके बाद किसी भी युग का प्रारम्भ होता है।[4] इस सन्दर्भ में वे सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं और कहते हैं कि सूर्य व चन्द्रमा एक साथ ही धनिष्ठा अर्थात् श्रविष्ठा नक्षत्र में जाते हैं तब युग का प्रारम्भ होता है।[5] युग प्रारम्भ होने के साथ-साथ माघ मास, तपस् अर्थात् शिशिर ऋतु, शुक्ल पक्ष और उत्तरायण का भी प्रारम्भ होता है।[6] इस ग्रन्थ के अनुसार एक युग में 60 सौरमास, 62 चान्द्र मास, 2 अधिमास, 67 नक्षत्र मास, 1830 सावन दिन, 1860 तिथियाँ, 30 क्षय तिथि और 1809 नक्षत्र होते थे।[7]

स्पष्ट है कि एक युग में निम्नलिखित कालमान होंगे।

366 × 5 = 1830 सावन दिन

6 × 5 = 30 ऋतुएँ

2 × 5 = 10 अयन

12 × 5 = 60 सौर मास

---

1 पञ्चसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः।।
— ऋक् ज्यो०; 1

2 माघशुक्लप्रवृतस्य पौषकृष्णसमापिनः।
युगस्य पञ्चवर्षस्य कालज्ञानं प्रचक्षते।।
— वही; 32

3 वही

4 स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदादियुगं माघस्तपः शुक्लोऽयनं ह्युदक्।।
— वही; 5

5 वही

6 वही

7 शास्त्री, गिरजाशङ्कर- वैदिक ज्योतिष, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, वि०सं०, 2065, पृ. 175

इस प्रकार ऋक् ज्योतिष तथा याजुष् ज्योतिष वेदाङ्गों में युग-विषयक सिद्धान्तों में पर्याप्त समानता दृष्टिगत होती है। जहाँ तक आथर्वण ज्योतिष का प्रश्न है युग विषयक कोई भी चर्चा इस ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होती है।

3.2 सम्वत्सर

'सम्वत्सर' शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए कहा गया है- "संवसन्ति ऋतवोऽत्र, संवस् + सरन" अर्थात् वर्ष।[1] ऋग्वेद में 'सम्वत्सर' शब्द का प्रयोग 'वर्ष' के लिए अनेक बार हुआ है।[2] ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में ही अग्नि विषयक मन्त्र में कहा गया है कि 'अग्नि' द्वारा भक्षण किया गया अन्न वर्ष भर में बढ़ जाता है।'[3] यहाँ 'वर्ष' के लिए 'सम्वत्सर' शब्द ही प्रयुक्त है।[4] वाजसनेयी संहिता में पुरुषमेध याग वर्णन क्रम में संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, इद्वत्सर, और वत्सर शब्द प्रयुक्त हुए हैं।[5] जबकि तैत्तिरीय संहिता सम्वत्सरों का साम्य देवताओं से करता है और कहा गया है कि अग्नि संवत्सर है, आदित्य परिवत्सर है, चन्द्रमा इदावत्सर है और वायु अनुवत्सर है।[6] स्पष्ट है कि यहाँ केवल चार सम्वत्सरों का नामोल्लेख है, परन्तु इसी ब्राह्मण ग्रन्थ के अन्य स्थान पर वाजसनेयी संहिता प्रोक्त नामों के अतिरिक्त इदुवत्सर नाम भी

---

1 आप्टे, वामन शिवराम- संस्कृत हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसीदास, 1993, पृ. 1047

2 संवत्सरस्य तदहः परिषष्ठयन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव।
ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्मकृण्वन्तः परिवत्सरीणम्।।
— ऋ॰सं॰; 7-103-7

3 संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः।
— वही; 1-140-2

4 वही

5 i) संवत्सरोसि परिवत्सरोसीदावत्सरोसीद्वत्सरोसि वत्सरीसि
— वा॰सं॰; 26-45

ii) संवत्सराय पर्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमि।
द्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जरा ँ संवत्सराय पलिकनीम्।।
— वही; 80-16

6 अग्निर्वा संवत्सरः। आदित्यः परिवत्सरः। चन्द्रमा इदावत्सरः। वायुरनुवत्सरः।
— तै॰ब्रा॰; 1-4-10

प्राप्त होता है।[1] ऋग्वेद के दशम मण्डल के कुछ मन्त्रों में वर्ष के लिए 'समा' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है।[2] स्पष्ट है कि युग से छोटा दूसरा कालमान 'संवत्सर' है। गोपथ ब्राह्मण में भी कहा गया है कि 'संवत्सर अधिदेव और अध्यात्म होकर प्रतिष्ठित है, जो इस बात को जानता है वह प्रजावान होकर प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है।'[3] स्पष्ट है कि एक युग में होने वाले वर्षों के नाम हैं- संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर।[4] वाजसनेयि संहिता में वर्ष अर्थ में 'समा' शब्द प्रयुक्त हुआ है।[5] वर्ष में बारह महीने होते थे, मलमास के ज्ञान से संबंधित सूत्र भी ऋग्वेद में मिल जाते हैं।[6] इसी श्रुति के प्रथम मण्डल में सूर्य की स्तुति करने के क्रम में ऋषि ने कहा है कि सत्यभूत (आदित्य) का बारह अरोंवाला चक्र द्युलोक के चारों ओर सतत भ्रमण करते हुए भी नष्ट नहीं होता है, हे अग्ने इस चक्र पर पुत्रों के 720 जोड़े आरूढ़ रहते हैं।[7]

---

1 i) संवत्सरोसि परिवत्सरोसि। इदावत्सरोसीदुवत्सरोसि। इद्वत्सरोसि वत्सरोसि।
— तै॰ब्रा॰; 8-10-4
ii) संवत्सराय पर्यायिणी। परिवत्सरायाविजाता। इदावत्सरायापस्कद्वरीं। इद्वत्सरायातीत्वरी। वत्सराय विजर्जरां। संवत्सराय पलिक्नीम्।
— वही; 3-4-1

2 यत्वा देव प्रपिबन्ति तत आप्यायसे पुनः। वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः।।
— ऋ॰सं॰; 40-88-5

3 सा वा एष संवत्सरोऽधिदैवं चाध्यात्मं च प्रतिष्ठितः स य एवमेतत् संवत्सरमधिदैवं चाध्यात्मं च प्रतिष्ठितम् वेद प्रतिष्ठति प्रतितिष्ठति प्रजया पशुभिर्य एवं वेद स वा एष संवत्सरः।
— गो॰ब्रा॰; पूर्वभाग, 14-11

4 शर्मा, हरिदत्त- ज्योतिष विश्वकोश, सुबोध पॉकेट बुक्स, दिल्ली, 2000, पृ. 634

5 i) तेषा ँ श्रीर्मयिकल्प्यतामस्मिन् लोके शत् ँ समाः।
— वा॰सं॰; 119-46
ii) कुर्वन्नेवेहकर्मणि जिजीविषे शत् ँ समाः।
— वही; 40-2

6 i) द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वति चक्रं परिद्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः।।
— ऋ॰सं॰; 1-164-11
ii) वेदमासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते।
— वही; 1-28-8

7 द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वति चक्रं परिद्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः।।
— वही; 4-164-11

स्पष्ट है कि प्रस्तुत मन्त्र में वर्ष के बारह महीनों और 360 दिन-रात का संकेत है। ऐतरेय आरण्यक का भी कथन है कि संवत्सर 360 दिन और 360 रात्रि का ही प्रमाण होता है।[1] शतपथ ब्राह्मण संवत्सर को कभी बारह मास वाला तो कभी तेरह मास वाला मानता है।[2] निरूक्तकार यास्काचार्य ने कहा है कि- "वर्ष का नाम संवत्सर इसलिये है क्योंकि इसमें प्राणी निवास करते हैं।"[3]

3.2.1 वेदाङ्ग ज्योतिषीय संवत्सर प्रणाली

वेदाङ्ग ज्योतिष में सौर मास[4], सावन मास[5], चान्द्र मास[6] तथा नाक्षत्र मास[7] का वर्णन मिलता है। इस सन्दर्भ में याजुष् ज्योतिष स्पष्ट रूप से कहता है कि एक वर्ष में 366 दिन, 6 ऋतुएँ, दो अयन और 12 सौर मास होते हैं।[8] जबकि एक युग में सावन मास की संख्या 61, चान्द्रमास 62 और 67 नाक्षत्र मास होते हैं।[9] इस प्रकार एक वर्ष में उपरोक्त कालमान इस प्रकार स्पष्ट किए जा सकते हैं-

1 वर्ष में सावन मास = 61 ÷ 5 = 12.2 सावन मास

---

1 संवत्सरस्याहोरात्राः।

— ऐ॰आ॰; 3-2-11

2 द्वादश वा त्रयोदश वा संवत्सराय मासाः।

— शत॰ब्रा॰ 5-4-5-2

3 संवत्सरः संवसन्तेऽस्मिन् भूतानि।

— निरू॰; 4-27

4 त्रिशत्यन्हां षष्टषषिृरब्दः पञ्चर्त्ततोऽयने।
मासाद्वादश सूर्याः स्युरेतत् पञ्चगुणं युगम्।।

— याजुष् ज्यो॰; 28

5 सावनेन्दुस्तृमासानां षष्टिः सैकद्धिसप्तिका।
धु त्रिंशत सावनस्याब्दः सूर्यस्तृणां सिपर्यय:।।

— वही; 31

6 वही

7 वही

8 त्रिशत्यह्नां सषट्षष्टिरब्दः पञ्चर्त्तवोऽयने।
मासा द्वादश सौराः स्युरेतत् पञ्चगुणं युगम्।।

— वही; 28

9 वही; 31

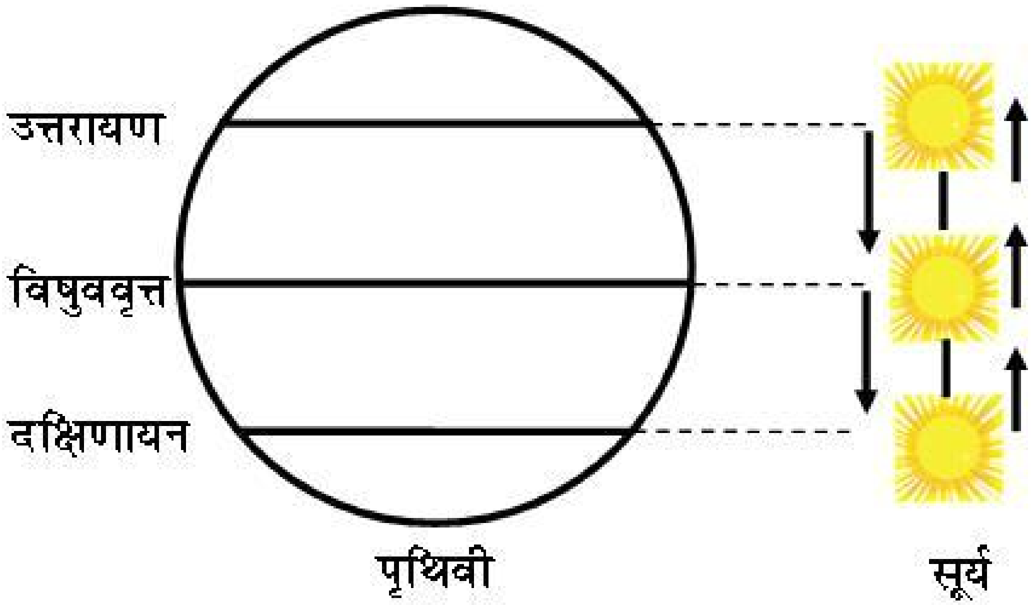
1 वर्ष में चान्द्र मास = 62 ÷ 5 = 12.4 चान्द्र मास

1 वर्ष में नाक्षत्र मास = 67 ÷ 5 = 13.4 नाक्षत्र मास

वर्ष अथवा सम्वत्सर विषय सिद्धान्त वेदाङ्ग ज्योतिष के ऋक् तथा याजुष् संस्करण में ही प्राप्त होते हैं। आथर्वण ज्योतिष में इस विषय से सम्बन्धित तथ्यों का अभाव है।

3.3 अयन

अयन दो कहे गए हैं– उत्तरायण और दक्षिणायन।[1] सायन मकरारम्भ से सायन कर्कारम्भ पर्यन्त उत्तरायण और सायन कर्कारम्भ से मकरारम्भ पर्यन्त दक्षिणायन होता है।[2] उत्तरायण में सूर्य क्रमशः उत्तर की ओर और दक्षिणायन में दक्षिण की ओर



खिसकता रहता है।[3] शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त कुछ उद्धरण से इस ओर सङ्केत अवश्य मिलते हैं कि उस समय सूर्य जब विषुववृत्त के उत्तर रहता था तब तक उत्तरायण

---

[1] दीक्षित, शंकर बालकृष्ण– भारतीय ज्योतिष, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2004, पृ. 46

[2] वही

[3] वही

और जब तक दक्षिण रहता था तब तक दक्षिणायन मानते थे।[1] यजुर्वेद में भी ऋषि का कथन प्राप्त होता है– सोम के योग्य तथा अग्नि जिसके दहन का आस्वादन करता है वे हमारे पितर देवताओं में गमन योग्य देवयान मार्ग से आएँ।[2] यह उत्तरायण की ओर संकेत करता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण सम्वत्सर अर्थात् वर्ष को एक पक्षी के रूप में कल्पित करता है, इसमें उत्तरायण तथा दक्षिणायन को सम्वत्सर रूपी पक्षी के पंखों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।[3] तैत्तिरीय संहिता में भी कहा गया है 'सूर्य छः मास दक्षिण और छः मास उत्तर चलता है।'[4] कालिदास भी कहते हैं कि कर्कादि छः राशियों में सूर्य दक्षिणायन तथा मकरादि छः राशियों में सूर्य उत्तरायण होता है।[5] साथ ही जब सायन सूर्य दक्षिणायन होता है तब देवताओं की रात्रि तथा जब उत्तरायण होता है, तब देवताओं का दिन होता है।[6]

---

1 वसन्तो गीष्मो वर्षाः। ते देवा ऋतवः शरद्धेमन्तः शिशिरस्ते पितरो.......... स(सूर्यः) यत्रोदगावर्तते। देवेषु तर्हि भवति......... यत्र दक्षिणावर्तते पितृषु तर्हि भवति।

— शत०ब्रा०; 12-1-3

2 आ यन्तु नः पितरः सोम्यसोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानेः।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तो ब्रुवन्तु तेऽवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्।

— यजु०; 119-58

3 यथा वै पुरुष एवं विषुवान्। यथा तस्य दक्षिणोऽर्धस्तथोत्तरः।
यथा शालायै पक्षसी एवं संवत्सरस्य पक्षसी।

— तै०ब्रा०; 11-2-3

4 तस्मादित्यः षष्मासो दक्षिणेनैति षडुत्तरेण।

— तै०सं०; 6-5-3

5 अथायने कीटमृगादिषट्के
क्रमेण ते दक्षिणसौम्यसंज्ञे।
तमीदिने सायनभागभास्व-
दुत्थे स्फुटे नाकसदामुभे स्तः।।

— ज्योति०भ०; 1-17

6 वही

3.3.1 वेदाङ्ग ज्योतिषीय अयन प्रणाली

अयन संबंधी विचारधारा का दिग्दर्शन वेदाङ्ग ज्योतिष के ऋक् ज्योतिष तथा याजुष् ज्योतिष में विशेष रूप से होता है। ऋक् ज्योतिष के अनुसार जब चन्द्रमा और सूर्य एक साथ स्थित होकर धनिष्ठा नक्षत्र में होते हैं तब नए युग के उत्तरायण का प्रारंभ होता है।[1] जैसा कि उत्तरायण के प्रारम्भ के विषय में बता दिया गया था कि धनिष्ठा नक्षत्र के आरम्भ में सूर्य और चन्द्रमा उत्तर की ओर मुड़ते हैं जबकि आश्लेषा नक्षत्र के आधे भाग में सूर्य और चन्द्रमा दक्षिण की ओर मुड़ते हैं।[2] जहाँ तक उत्तरायण और दक्षिणायन का प्रारंभ किस मास में होता है तो ऋक् ज्योतिष में आचार्य लगध ने स्पष्ट रूप से कहा है कि सूर्य का उत्तरायण माघ मास में तथा दक्षिणायन श्रावण मास में होता है।[3] सूर्य के उत्तरायण तथा दक्षिणायन प्रारम्भ होने के मास तथा नक्षत्र स्थिति को बताने के साथ-साथ दिन तथा रात्रि के मान में होने वाली वृद्धि तथा ह्रास के विषय में भी बड़े ही विस्तार से बताया गया है। यहाँ लगध ऋषि ने स्पष्ट रूप से कहा है कि सूर्य के उत्तरायण में जाने पर उदक के एक प्रस्थ जितना दिन बढ़ता है और रात्रि के मान में कमी आती है जबकि दक्षिणायन में रात्रि का मान बढ़ता है तथा दिन का मान घटता है।[4] दिन तथा रात्रि मान में होने वाला यह अंतर अधिकतम छः मुहूर्त्त का हो सकता है।[5] अयन के आरम्भ में कौन सी तिथि आती है अथवा अयन किस तिथि से आरम्भ होता है इस विषय पर भी महर्षि लगध मौन नहीं रहे हैं अपितु उन्होंने कहा कि संवत्सर के प्रथम अयन का प्रारम्भ माघ

---

1 प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक।
सार्पार्धे दक्षिणाऽर्कस्य माघश्रावणयोः सदा।।
— ऋक् ज्यो॰; 16

2 वही

3 वही

4 घर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपा ह्रास उदग्गतौ।
दक्षिणेतौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्ययनेन तु।।
— वही; 7

5 वही

शुक्ल प्रतिपदा को होता है जबकि पञ्च सम्वत्सरात्मक युग के अंतिम दक्षिणायन का प्रारम्भ श्रावण कृष्ण पक्ष दशमी तिथि को होता है।[1] अर्थात् प्रतिपदा, सप्तमी, त्रयोदशी, चतुर्थी और दशमी तिथियाँ दो बार अयनादि में होती है, ये क्रमशः दो-दो अयनों में आती है।[2] निम्नलिखित तालिका के द्वारा इस स्थिति को स्पष्ट किया जा सकता है-

संवत्सर	**उत्तरायणारम्भ**		**दक्षिणायनारम्भ**	
	तिथि	**चन्द्र तिथि**	**तिथि**	**चन्द्र नक्षत्र**
संवत्सर	माघ शुक्ल प्रतिपदा	धनिष्ठा	श्रावण शुक्ल सप्तमी	चित्रा
परिवत्सर	माघ शुक्ल त्रयोदशी	आर्द्रा	श्रावण कृष्ण चतुर्थी	पूर्वाभाद्रपद
इदावत्सर	माघ शुक्ल दशमी	अनुराधा	श्रावण शुक्ल प्रतिपदा	आश्लेषा
अनुवत्सर	माघ शुक्ल सप्तमी	अश्विनी	श्रावण शुक्ल त्रयोदशी	पूर्वाषाढा
इद्वत्सर	माघ शुक्ल चतुर्थी	उत्तरा फाल्गुनी	श्रावण कृष्ण दशमी	रोहिणी

---

1 प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्दमसावुदक।
सार्पार्धे दक्षिणाऽर्कस्य माघश्रावणयोः सदा।।
— ऋक् ज्यो॰; 6

2 प्रथमं सप्तमं चाहुरयनाद्यं त्रयोदश।
चतुर्थं दशमं चैव द्विर्युग्माद्यं बहुलेऽप्यृतौ।।
— वही; 8

इन दस अयनों के आरम्भ में चन्द्रमा किन नक्षत्रों में होता है। इस विषय पर ऋक् ज्योतिष का कथन है कि वसु, त्वष्टा, भव, अज, मित्र, सर्प, अश्विनौ, जल, धाता तथा क जिन नक्षत्रों के स्वामी हैं वे ही नक्षत्र युगारम्भ से प्रत्येक अयनों के आरम्भ में क्रमशः होते हैं।[1] अयन के आरम्भ[2], अयनों के कारण दिन तथा रात्रि में होने वाली वृद्धि अथवा ह्रास[3], अयनों के समय होने वाले चान्द्र नक्षत्र[4] तथा तिथियों[5] के विषय में याजुष् ज्योतिष के सिद्धान्त ऋक् ज्योतिष के सिद्धान्तों से पूर्णतः साम्य रखते है। जहाँ तक आथर्वण ज्योतिष का प्रश्न है अयन विषयक सिद्धान्तों का इस ग्रन्थ में नितान्त अभाव है।

3.4 ऋतु

अयन से ठीक छोटा कालमान ऋतु है। वैदिक साहित्य में सामान्यतया छः ऋतुओं का उल्लेख प्राप्त होता है। इस विषय में सामवेद में वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त तथा शिशिर ऋतुओं का नामोल्लेख प्राप्त होता है।[6] जबकि तैत्तिरीय

---

[1] वसुस्त्वष्टा भवोऽजश्च मित्रः सर्पोऽश्विनौ जलम्।
अर्यमा कोऽयनाद्याः स्युरर्धपञ्चमभस्त्वृतुः।।
— ऋक्॰ ज्यो॰; 9

[2] स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदादियुगं माघस्तपः शुक्लोऽयनंह्युदक।।
— याजुष् ज्यो॰; 6

[3] घर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ।
दक्षिणेतौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्त्ययमेन तु।।
— वही; 8

[4] वसुस्त्वष्टा भवोऽजश्च मित्रः सर्पोऽश्विनौ जलम्।
धाता कश्चायनाद्याः स्युरर्धपञ्चमभस्त्वृतुः।।
— वही; 10

[5] प्रथमं सप्तमं चाहुरयनाद्यं त्रयोदश।
चतुर्थं दशमं चैव द्विर्युग्माघं बहुलेऽप्यृतौ।।
— वही; 9

[6] वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यो वर्षाण्यनु शरदो
हेमन्तः शिशिरः इन्नु रन्त्यः।।
— साम॰; 16-4-2

ब्राह्मण में वसन्त ऋतु का स्मरण संवत्सर के सिर अर्थात् प्रथम ऋतु के रूप में किया गया है।[1] यहाँ संवत्सर की कल्पना एक पक्षी के रूप में की गई है जहाँ वसन्त सिर के रूप में, ग्रीष्म दाहिना पंख, वर्षा पुच्छ, शरद् उत्तर पंख तथा हेमन्त ऋतु को इस पक्षी का मध्य भाग कहा गया है।[2] ऐतरेय ब्राह्मण में भी पाँचों ऋतुओं का उल्लेख मिलता है, यहाँ हेमन्त और शिशिर ऋतुओं के समान होने के कारण इन्हें एकीकृत कर पाँच ऋतुओं के रूप में स्वीकृत कर लिया गया है।[3] इस स्थिति को निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा समझा जा सकता है।



जहाँ तक ऋत्वारम्भ का प्रश्न है इस सन्दर्भ में पर्याप्त संशय की स्थिति है। तैत्तिरीय संहिता तो कहती है कि ऋतुपात्र के दोनों ओर मुख होता है, कौन जान सकता है कि ऋतु का प्रथम मुख कौन सा है?[4] अभिप्राय यह है कि ऋत्वारम्भ की

---

1 तस्य ते वसन्तः शिरः। ग्रीष्मो दक्षिणः पक्षः। वर्षा पुच्छं। शरदुत्तरः पक्ष। हेमन्तो मध्यम।

— तै॰ब्रा॰; 3-40-4-9

2 वही

3 सप्तदशो वै प्रजापतिर्द्वादश मासाः पञ्चर्तवो हेमन्त शिशिरयोः समानेन तावान् संवत्सरः संवत्सरः प्रजापतिः।

— ऐ॰ब्रा॰; 11-1-11

4 उभयतो मुखमृतुपात्रं भवति को हि तद्वेद यदृतूनां मुखम्।

— तै॰सं॰; 16-5-8

तिथि को निश्चित करना कठिन है। ऋग्वेद में भी ऋतु शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है।[1] अथर्ववेद में भी इन ऋतुओं का उल्लेख प्राप्त होता है।[2] ऋग्वेद ऋतुओं के नियामक देवता के रूप में सविता देव को स्वीकृत करते हैं।[3] ऋग्वेद का प्रसिद्ध पुरुष सूक्त भी वसन्त, ग्रीष्म और शरद् ऋतु का उल्लेख करता है।[4] शतपथ ब्राह्मण में कही पाँच[5] तो कही छः[6] ऋतुएँ स्वीकृत की गई हैं। एक स्थान पर तो सात ऋतुएँ भी कही गई हैं।[7] आचार्य यास्क ने अपनी रचना निरूक्त में ऋतु को सामान्य कालवाचक कहा है क्योंकि वह गतिशील रहता है।[8] ऋतुधा की 'काले–काले' व्याख्या द्वारा भी इसी मत की पुष्टि होती है।[9] ऋतुओं का कारण सूर्य को ही माना गया है[10] और यह ज्ञान भारतीय मनीषियों को ऋग्वैदिक काल में ही हो चुका था। किस मास में कौन सी

---

1 को अग्निम् ईट्टे हविषा घृतेन सुचा ऋतुभिर् धुवेभिः।

— ऋ॰सं॰; 1–84–18

2 गीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद् वर्षाः स्विते नो दधात्।
आ नो गोषु भजता प्रजायां निषाद् इद वः शरणे स्याम्।।

— अथर्व॰; 6–55–2

3 व्यृतूँरदर्धररमतिः सविता देव आगात्।

— ऋ॰; 12–38–4

4 वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इधा शरद् हविः।

— वही; 40–90–6

5 पञ्च वा ऋतवः संवत्सरस्य।

— शत॰ब्रा॰; 8–1–4–5

6 तदाहुः षडेर्क्त्तवः संवत्सरस्य।

— वही; 2–1–1–13

7 अथ यं प्रथममुत्तरतो जुहोति। ऋतवः स स सप्तकपालो भवति सप्त ह्यृतवः।।

— वही; 9–3–1–19

8 ऋतुरर्तेर्गति कर्मणः।

— निरू॰; 12–25

9 उपावसृजात्मनाऽऽत्मानं समञ्जन् देवानामन्नमृतावृतौ हवींषि काले काले वनस्पतिः शमिता देवो अग्निरित्येते त्रयः स्वदयन्तु हत्यं मधुनां च घ्रतेन च।।

— वही; 8–3

10 पूर्वाम नुप्रदिशं पार्थिवानामृतून् प्रशासद्विदधावनुष्ठु।

— ऋ॰; 11–95–3

ऋतु होती है इसका निर्देश तैत्तिरीय संहिता में अत्यन्त विस्तार से किया गया है[1] और कहा गया है कि मधु और माधव मास में वसन्त ऋतु, शुक्र शुचि में ग्रीष्म, नभस और नभस्य में वर्षा, इष और ऊर्ज में शरद, सहस और सहस्य में हेमन्त जबकि तपस और तपस्य मास में शिशिर ऋतु होती है।[2]

3.4.1 वेदाङ्ग ज्योतिषीय ऋतु प्रणाली

वेदाङ्ग ज्योतिष में भी ऋतु के सम्बन्ध में पर्याप्त विचार किया गया है। ग्रन्थ के पहले ही श्लोक में युगाध्यक्ष प्रजापति के अङ्ग के रूप में ऋतु की भी गणना की गई है।[3] ऋतु के मान के सन्दर्भ में कहा गया है कि एक ऋतु साढ़े चार नक्षत्रों की होती है।[4] युगारम्भ में तपस अर्थात् शिशिर ऋतु सबसे पहले आती है।[5] इस ऋतु के प्रारम्भ होने के ठीक एक मास और एक दिन के बाद अगली ऋतु आती है।[6] अर्थात् युगारम्भ माघ शुक्ल प्रतिपदा तथा शिशिर ऋतु में होता है अतः अगली ऋतु 'वसन्त' चैत्र मास, शुक्ल पक्ष, तृतीया को प्रारंभ होगी। इस प्रकार पन्द्रहवी तिथि अर्थात् पूर्णिमा आठवीं ऋतु अर्थात् वसन्त ऋतु में आएगी। उपरोक्त ऋतु सम्बन्धी तथ्य को

---

1 मधुश्च माधवश्च वासंतिकावृतू शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू इषश्चोर्जश्च शारदावृतू सहश्च सहस्यश्च हैमंतिकावृतू तपश्च तपस्य शैशिरावृतू।

— तै॰सं॰; 14-4-11

2 वही

3 पञ्चसंवत्सरमय-युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः।।

— ऋक् ज्यो॰; 1

4 वसुस्त्वष्टा भवोऽजश्च मित्रः सर्पोऽश्विनौ जलम्।
अर्यमा कोऽयनाद्याः स्युरर्धपञ्चमभस्त्वृतुः।।

— वही; 9

5 स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदादियुगं माघस्तपः शुक्लोऽयनं ह्युदक्।।

— वही; 5

6 एकान्तरेऽह्नि मासे च पूर्वान् कृत्वादिरूत्तरः।
अर्धयोः पञ्चपर्वाणां मृदू पञ्चदशाष्टमौ।।

— याजुष् ज्यो॰; 11

निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

	ऋतु	**प्रारम्भ**	**अन्त**
1.	**शिशिर**	माघ, शुक्ल प्रतिपदा	चैत्र, शुक्ल द्वितीया
2.	**वसन्त**	चैत्र, शुक्ल तृतीया	ज्येष्ठ, शुक्ल चतुर्थी
3.	**ग्रीष्म**	ज्येष्ठ, शुक्ल पञ्चमी	श्रावण, शुक्ल षष्ठी
4.	**वर्षा**	श्रावण, शुक्ल सप्तमी	आश्विन, शुक्ल अष्टमी
5.	**शरद**	आश्विन, शुक्ल नवमी	मार्गशीर्ष, शुक्ल दशमी
6.	**हेमन्त**	मार्गशीर्ष, शुक्ल एकादशी	माघ, शुक्ल द्वादशी
7.	**शिशिर**	माघ, शुक्ल त्रयोदशी	चैत्र, शुक्ल चतुर्दशी
8.	**वसन्त**	चैत्र, शुक्ल पञ्चदशी	माघ, शुक्ल प्रतिपदा

हाँ इतना अवश्य है कि याजुष् ज्योतिष में पाँच ऋतुओं के होने का सङ्केत मिलता है।[1] लगध ऋषि ने ऋतु शेष के आनयन विधि का भी निर्देश किया है। इस सन्दर्भ में उन्होंने कहा है प्रत्येक पर्व में दिनमान में से जो तिथि का आधा शेष रह जाता है, वह पर्वों के साथ, सब पर्वों के शेष एकत्र होने पर वह ऋतुशेष जानना चाहिये।[2] ग्रन्थ के अन्त में भी कहा गया है सम्पूर्ण ग्रन्थ ऋतु आदि कालमान की

[1] त्रिशत्यह्नां सषट्षष्टिरब्दः पञ्चर्त्तवोऽयने।
मासा द्वादश सौराः स्युरेतत् पञ्चगुणं युगम्।।
— याजुष् ज्यो॰; 41

[2] यदर्धं दिनभागानां सदा पर्वणि पर्वणि।
ऋतुशेषं तु तद् विद्यात् संख्याया सह पर्वणाम्।।
— वही; 41

गणना को ही समर्पित है।[1] ऋतु विषयक अवधारणाओं में ऋक् ज्योतिष तथा याजुष् ज्योतिष में अत्यधिक समानता है। आथर्वण ज्योतिष में 'ऋतु संज्ञक' कालमान के विषय में चर्चा नहीं मिलती है। इतना अवश्य है कि रजस्वला विधान क्रम में 'ऋतुकाल' शब्द अवश्य प्रयुक्त हुआ है।[2] परन्तु यह प्रस्तुत विषय से सम्बद्ध नहीं है।

3.5 मास

ऋतु से छोटा कालमान मास कहा जाता है। वैदिक काल में चान्द्र मास ही प्रचलित थे।[3] ऋग्वेद में मासों को बारह संख्या वाला कहा गया है और इन वैदिक ऋषियों को तेरहवें मास अर्थात् अधिमास का भी ज्ञान था।[4] यही श्रुति एक अन्य स्थान पर भी इन महीनों को आदित्य के बारह अरों वाले चक्र के रूप में स्मरण करती है जो सतत भ्रमण करने के बाद भी नष्ट नहीं होता है।[5] इसी श्रुति के प्रथम मण्डल में बारह परिधि, एक चन्द्र, तीन नाभि और शंकु की तरह 360 चंचल अरों की चर्चा की गई है।[6] यह बारह परिधि वर्ष के बारह महीनों के तरफ ही संकेत करते हैं। तैत्तिरीय संहिता में पहली बार महीनों के नाम आए हैं- मधु, माधव, शुक्र, शुचि,

---

1 इत्येतन्मासवर्षाणां मुहूर्त्तोदयपर्वणाम्।
दिनर्त्त्वयनमासानां व्याख्यानं लगधोऽब्रवीत्।।

— याजुष् ज्यो॰; 43

2 ऋतुकाले तु नारीणां नान्यत् पुरुषदर्शनम्।
संभाषं न च कुर्वीत यदीच्छेत् संततिं शुभम्।।

— आथर्वण ज्यो॰; 184

3 दीक्षित, शंकरबालकृष्ण- भारतीय ज्योतिष, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2004, पृ. 39

4 वेदमासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते।

— ऋ॰; 11-25-8

5 द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परिद्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः।।

— वही; 4-164-11

6 द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिता षष्टिर्न चलाचलासः।।

— वही; 11-164-48

नभस्, नभस्य, इष, ऊर्ज, सहस्, सहस्य, तपस्, तपस्य।[1] मासों के नामोल्लेख के साथ-साथ प्रत्येक ऋतु में आने वाले मासों का भी निर्देश प्राप्त होता है।[2] इसके अनुसार मधु और माधव वसन्त ऋतु के, शुक्र और शुचि ग्रीष्म के, नभस और नभस्य वर्षा के, इष और ऊर्ज शरद के, सहस और सहस्य हेमन्त के एवं तपस् और तपस्य शिशिर के मास हैं।[3] वाजसनेयी संहिता में इन मासों के अतिरिक्त 'मलिम्लुच' और 'संसर्प' मासों के नाम का भी उल्लेख मिलता है।[4] ऐतरेय ब्राह्मण के उल्लेख भी 'तेरहवे' मास के विषय में संकेत करते हैं।[5] तैत्तिरीय ब्राह्मण का यह कथन- 'अश्वमेध में रशना बारह अरत्नी की करनी चाहिए या तेरह की? संवत्सर ऋतुओं का ऋषभ है, तेरहवाँ मास उसका विष्टप है, अश्वमेध यज्ञों में श्रेष्ठ है, जैसे ऋषभ का विष्टप है उसी प्रकार उसका भी है।'[6] यह इस ओर संकेत करता है कि वेदकाल में वर्ष सौर था इसके अतिरिक्त सावन, चान्द्र और सौर वर्षों का भी प्रचार था।[7] इन प्राचीन ग्रन्थों में मास पूर्णिमान्त[8] और अमान्त[9] दोनों ही थे। मासों में हेमन्त ऋतु को

---

[1] मधुश्च माधवश्व शुक्रश्च नभस्यश्चेषश्चोर्जश्च सहश्च सहस्यश्च
तपश्च तपस्यश्चोपयामग्रहीतोसि ऽ स सर्पोस्य ऽ हस्पत्याय त्वा।
— तै॰सं॰; 11-14-14

[2] मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृत् शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृत् नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृत् इषश्चोर्जश्च शारदावृ तू सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृत् तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृत्।
— वही; 14-4-11

[3] वही

[4] संसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवापतये स्वाहा।
— वा॰सं॰; 22-80

[5] तं त्रयोदशान्मासादक्रीणँस्तस्मात त्रयोदशोमासो नानुविधते।
— ऐ॰ब्रा॰; 31-1

[6] द्वादशरत्नी रशना कर्तेत्या३त्रयोदशरत्नी३रिति। ऋषभो वा एष ऋतूनां। यत्संवत्सरः। तस्य त्रयोदशी मासो विष्टपं। ऋषभ एष यज्ञानां। यदश्मवेधः। यथा वा ऋषभस्य विष्टपं एवमतस्य विष्टपम्।।
— तै॰ब्रा॰; 13-8-3

[7] दीक्षित, शंकरबालकृष्ण- भारतीय ज्योतिष, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2004, पृ. 146

[8] वर्हिषा पूर्णमासे व्रतमुपैति वत्सैरमावस्यायाम्।
— तै॰सं॰; 1-6-7

[9] अमावास्यया मासान्सम्पाद्याहरूत्सृजन्ति अमावस्यया हि मासान् सम्पश्यन्ति।
पौर्णमास्या मासान्सम्पाद्याहरूत्सृजन्ति पौर्णमास्या हि मासान्सम्पश्यन्ति।।
— वही; 7-5-6-1

अंतिम मास माना जाता था।[1] आचार्य यास्क ने मास में माप अर्थ को ही प्रमुख माना है।[2] ऋग्वेद मासों के निर्माता के रूप में चन्द्रमा को महत्व देता है।[3] एक मास में दो पक्षों के सम्बन्ध में भी यास्काचार्य ने संकेत दिए हैं।[4] अथर्ववेद में भी अधिमास रूपी तेरहवें मास का उल्लेख मिलता है और इसे देवराज इन्द्र का गृह कहा गया है।[5] ताण्ड्य ब्राह्मण वर्ष के दिनों की संख्या ठीक रखने के संबंध में अति महत्त्वपूर्ण संकेत देता है और कहता है कि यदि एक दिन नहीं छोड़ा जाए तो वर्ष वैसे ही फूल जाएगा जैसे चमड़े का मशक।[6] वेदाङ्ग ज्योतिष में यद्यपि मेषादि राशियों का वर्णन नहीं है फिर भी मास सौरमास ही है।[7] अनेक स्थान पर चान्द्र मासों की तिथि का उल्लेख भी है। जब ऋतु आरम्भ के बारे में चर्चा की गई है तब इस प्रवृत्ति पर विशेष बल दिया गया है।[8]

---

1 हेमन हेम्रि हेमन्ते। प्रतितरामिव अत्यन्तं प्रतिकूला-इव हिमोपहतपक्षवादुपक्षोणा इव। अर्ध भागे देशे।

— शत०ब्रा०; 11-5-4-5

2 मासा मानात्।

— निरू०; 14-27

3 अरूणो मासकृद् वृकः।

— ऋ०; 1-105-18

4 मासकृन्मासानां चार्धमासानां च कर्त्ता भवति।

— निरू०; 5-21

5 त्रयोदशो मास इन्द्रस्य ग्रहः।

— अथर्व०; 5-6-4

6 यथा वै दृतिराध्मात एवं संवत्सरोनुत्सृष्टः।

— ता०ब्रा०; 15-110-2

7 दीक्षित, शंकरबालकृष्ण- भारतीय ज्योतिष, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2004, पृ. 138

8 स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदादियुगं माघस्तपः शुक्लोऽयनंह्युदक।।

— याजुष् ज्यो०; 6

3.5.1 वेदाङ्ग ज्योतिषीय मास विचार

वेदाङ्ग ज्योतिष में मासों में माघ[1], श्रावण[2] तथा पौष[3] मास का उल्लेख है। पञ्च वर्षीय युग के प्रारम्भ में माघ मास तथा समाप्ति पर पौष मास का निर्देश महर्षि लगध ने किया है।[4] अयनारम्भ के प्रसङ्ग में भी कहा गया है कि सूर्य माघ मास में उत्तरायण तथा श्रावण मास में दक्षिणायन को प्रारम्भ करते हैं।[5] याजुष् ज्योतिष में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि एक वर्ष में बारह सौर मास होते हैं।[6] वेदाङ्ग ज्योतिष के समय कई मास प्रचलन में थे जैसे– सौर मास, सावन मास, नाक्षत्र मास, चान्द्र मास आदि।[7] इस सन्दर्भ में लगधाचार्य का मत है कि युग में सावन मास की संख्या 61, चान्द्रमास 62 तथा नाक्षत्र मास 67 होते हैं।[8] सावन मास 30 दिनों का तथा सौर मास 30½ दिनों

---

1 स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदादियुगं माघस्तपः शुक्लोऽयनं ह्युदक्।।
— ऋक् ज्यो॰; 5

2 प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्धे दक्षिणाऽर्कस्य माघश्रावणयोः सदा।।
— वही; 6

3 माघशुक्लप्रवृतस्य पौषकृष्णसमापिनः।
युगस्य पञ्चवर्षस्य कालज्ञानं प्रचक्षते।।
— वही; 32

4 माघशुक्लप्रपन्नस्य पौषकृष्णसमापिनः।
युगस्य पञ्चवर्षस्य कालज्ञानं प्रचक्षते।।
— याजुष् ज्यो॰; 5

5 प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघश्रावणयोः सदा।।
— वही; 7

6 त्रिशत्यह्नां सषट्षष्टिरब्दः पञ्चर्त्तवोऽयने।
मासा द्वादश सौराः स्युरेतत् पञ्चगुणं युगम्।।
— वही; 28

7 सावनेन्दुस्तृमासानां षष्टिः सैकद्विसप्तिका।
द्यु त्रिंशत् सावनस्याब्दः सौरस्तृणां सिपर्यय:।।
— वही; 31

8 वही

का होता है।[1] सूर्य एवं चन्द्रमा के अन्तर की स्थिति तिथि होती है और ऐसी 30 तिथियों का एक चान्द्रमास होता है।[2] सूर्य की संक्रान्ति से सौर मास का निर्णय होता है।[3] 30 दिन रात तथा 30 नक्षत्र भ्रमण का माप करने वाला समय क्रमशः सावन और नाक्षत्र मास कहा जाता है।[4] पञ्चसम्वत्सरात्मक युग में बताई गई कुल मासों के आधार पर प्रत्येक वर्ष में मासों की संख्या को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है-

मास	युग में	वर्ष में
सावन मास	61	61 ÷ 5 = 12.2 मास
चान्द्र मास	62	62 ÷ 5 = 12.4 मास
नाक्षत्र मास	67	67 ÷ 5 = 13.4 मास

अधिमास के विषय में वेदाङ्ग ज्योतिष में विचार किया गया है।[5] इसका कारण बताते हुए कहा गया है कि सौर दिन से चान्द्र तिथि छोटी होने के कारण युग के मध्य और अन्त में अधिमास आते है।[6] आथर्वण ज्योतिष में मासों का वर्णन तो प्राप्त

---

1 सावनेन्दुस्तृमासानां षष्टिः सैकद्धिसप्तिका।
द्यु त्रिंशत् सावनस्याब्दः सौरस्तृणां सिपर्यय:।।
— याजुष् ज्यो०; 31

2 ऐन्दस्तिथिभिस्तद्धत् संकान्त्या सौर उच्यते।
मासैर्द्वादशभिर्वर्षं दिव्यं तदह उच्यते।।
— सू०सि०; 11-131

3 वही

4 त्रिंशतानि व्यतीतानि भचक्र भ्रमणानि च।
मास: स उच्यते चान्द्र: सौर: सावन ऋक्षक:।।
— सि०द०; 22-211

5 द्यूनं द्विषष्टिभागेन ज्ञेयं सौरं सपार्वणम्।
यत्कृतावुपजायेते मध्येऽन्ते चाधिमासकौ।।
— याजुष् ज्यो०; 37

6 वही

नहीं होता है परन्तु तिथियों[1], पक्षों[2], अमावस्या[3] तथा पूर्णिमा[4] आदि का उल्लेख ग्रन्थ के रचनाकाल के समय इन मासों के ज्ञान की ओर अवश्य सङ्केत करते हैं।

3.6 पक्ष

भारतीय ज्योतिष शास्त्र की परम्परा पन्द्रह दिनों का एक पक्ष मानती है तथा अमावस्या से पूर्णिमा के बीच की अवधि को 'शुक्ल पक्ष' तथा पूर्णिमा से अमावस्या तक के बीच की अवधि को 'कृष्ण पक्ष' कहा जाता है।[5] शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कलाएँ निरन्तर बढ़ती रहती हैं तथा कृष्ण पक्ष में ये क्षीण होती जाती हैं।[6] ऋग्वेद में चन्द्रमा द्वारा मास के पक्षों के निर्माण के सन्दर्भ में बताया गया है।[7] इसके अतिरिक्त इन पक्षों के सन्दर्भ में श्रुतियों में कुछ विशिष्ट गणनाएँ भी प्राप्त होती हैं। जैसे देवों ने चतुर्दशी से मिले हुए पूर्णमासी के पूर्वभाग को 'अनुमति'[8] कहा गया है, पूर्णमासी के

---

1 नन्दाभद्रा जया रिक्ता पूर्णा पक्षस्तु पंचमी।
तिथयः पंच विज्ञेया पक्षयोरुभयोरपि।।

— आथर्वण ज्यो॰; 66

2 कृत्रिरासदिवादरंभूत दिवाशुचरष्ट दिवाहर पूर्णदिवा।
इतिविष्टिरहर्गण रात्रिचरानच कर्म भवेत् कृतमाशु शुभम्।।

— वही; 58

3 अमावस्यां न यात्रा स्यात् पौर्णमास्यांतथा दिवा।
पौर्णमास्यां प्रयातस्य नसिद्धिस्तस्य जायते।।

— वही; 64

4 पौर्णमास्यां ववं रात्रौ तच्चतुर्थ्यां पुनर्दिवा।
तद्धि तत्सप्तम्यां रात्रौ तच्चैवैकादश्यां दिवा।।

— वही; 31

5 दशोरा नंदलाल- ब्रह्माण्ड और ज्योतिष रहस्य, रणधीर प्रकाशन, हरिद्धार, 1994, पृ. 173

6 वही

7 नवो नवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामत्यग्रम्।
भागं देवभ्यो विदधात्यायन् प्रचन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः।।

— ऋ॰; 10-85-119

8 अन्विदनुमते त्वं मन्यास शञ्च न स्कृधि।
कृत्वे दक्षाय नो हिनु प्र ण आयूंष्ठंषि तारिषः।।

— यजु॰; 34-18

अन्तिम भाग को 'राका' कहा गया है।[1] इसी प्रकार अमावस्या का पूर्वभाग 'सिनीवाली' तथा अंतिम भाग को 'कुहू' संज्ञा से सूचित किया गया है।[2] शतपथ ब्राह्मण में शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष को क्रमशः यव तथा अयव एवं पूर्वपक्ष तथा अपर पक्ष भी कहा गया है।[3] अमावस्या के विषय में इस ब्राह्मण में कहा गया है कि इस दिन चाँद देवताओं के पास रहने के कारण दृष्टिगत नहीं होता।[4] तैत्तिरीय ब्राह्मण इस सन्दर्भ में किञ्चिद् भिन्न है। यहाँ मासों के नाम भी अलग हैं[5] - अरूण, अरूणरज, पुंडरीक, विश्वजित्, अभिजित्, आर्द्र, पिन्वमान, उन्नवान, रसवान, इरावान, सर्वौषध, संभर तथा महस्वान। अर्धमास अर्थात् पक्षों के नाम भी यहाँ प्राप्त हो जाते हैं।[6] कृष्ण पक्ष तथा शुक्ल पक्ष के उपविभागों का भी उल्लेख तैत्तिरीय ब्राह्मण में उपलब्ध होता है। ये उपविभाग संज्ञान, विज्ञान दर्शा, दृष्टा, प्रस्तुत, विष्टुत, सुत, असुन्वत संज्ञाओं द्वारा सूचित हैं।[7] इनमें संज्ञान, विज्ञान, दर्शा, दृष्टा ये दो-दो करके

---

1 राकामहं सुहवा सुष्टुती हुवे श्रृणोतु नः सुभगा बोधतुत्मना।
सीत्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानयां ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यं।

— ऋ०; 12-32-4

2 सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा।
जुषस्व हत्यमाहुत प्रजां देवि दिदिड्ढि नः।।
कुहू देवीं सुकृतं विदमनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि।।

— अथर्व०; 7-47-1

3 पूर्वपक्षा वै यवाऽपरपक्षाऽअयवास्ते हीदं सर्वं युवते चायुवते च।

— शत०ब्रा०; 8-4-2-11

4 ते देवा अब्रुवन अमा वै नोऽध वसुर्वसति।

— वही; 8-4-2-11

5 अरूणोरूणरजाः पुडरीको विश्वनिदभिजित्।
आर्द्रः पिन्वमानोन्नवान् रसवानिरावान।।
सर्वौषधः संभरो महस्वान्।।

— तै०ब्रा०; 3-10-1

6 पवित्रन् पवयिष्यन् पूतो मेध्यः यशो यशस्वानायुरमृतः। जीवो जीविष्यन्त्स्वर्गो लोकः। सहस्वान् सहीयानोजस्वान् सहमानः। जयन्नभिजयन्त्सुद्रविणो द्रविणोदाः। आर्द्रपवित्रो हरिकेशो मोदः प्रमोदः।।

— वही; 3-10-1

7 संज्ञानं विज्ञानं दर्शा दृष्टेति। एतावनुवाकौ पूर्वपक्षस्याहोरात्राणां नामधेयाति।।
प्रस्तुतं विष्टुतं सुतासुन्वतांति। एतावनुवाकावपरपक्षस्याहोत्राणां नामधेयानि।।

— वही; 3-10-10-2

पूर्वपक्ष के अहोरात्र के नाम हैं, जबकि प्रस्तुत, विष्टुप, सुत, असुन्वत ये दो-दो करके अपर पक्ष के अहोरात्र के नाम हैं।[1] जहाँ तक कृष्ण पक्ष तथा शुक्ल पक्ष के मध्य पूर्वापर का प्रश्न है इस सन्दर्भ में तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि शुक्ल पक्ष पूर्व में आता है कृष्ण पक्ष पर कहा गया है।[2] इसमें कहा गया है कि पूर्वपक्ष में देवता उत्पन्न हुए और अपर पक्ष में असुर इसलिए देवताओं की जय हुई और असुरों की पराजय।[3] यहाँ शुक्ल और कृष्ण पक्ष को शुभाशुभत्व के आधार पर पूर्व तथा अपर पक्ष में विभक्त किया गया है।[4] निरूक्त में भी यास्काचार्य ने चन्द्रमा संबंधी 'नवो नवो भवति' मन्त्र के सन्दर्भ में पूर्वपक्ष और अपरपक्ष शब्दों का प्रयोग शुक्ल और कृष्ण पक्षों के उद्देश्य से ही किया गया है।[5]

3.6.1 वेदाङ्ग ज्योतिषीय पक्ष सम्बन्धी अवधारणा

ऋक् ज्योतिष तथा याजुष् ज्योतिष के साथ-साथ आथर्वण ज्योतिष में भी पक्ष विषयक सिद्धान्त उपलब्ध हैं। ऋक् ज्योतिष में पक्ष शब्द का प्रयोग किया गया है। युगारम्भ के समय ही माघ मास और उत्तरायण के साथ-साथ 'शुक्ल-पक्ष' का भी उल्लेख किया गया है।[6] युग की समाप्ति के सन्दर्भ में कहा गया है कि पौष मास के कृष्ण पक्ष के साथ ही युग की समाप्ति होती है।[7] याजुष् ज्योतिष में भी मासों को

---

1 गोरख प्रसाद- भारतीय ज्योतिष का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2004, पृ. 29

2 पूर्वपक्षं देवान्वसृज्यन्त। अपरपक्षमवसुराः। ततो देवा अभवन्। परासुराः।

— तै०ब्रा०; 2-2-3-1

3 वही

4 गोरख प्रसाद- भारतीय ज्योतिष का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2004, पृ. 58

5 नवो नवो भवति जायमान इति पूर्वपक्षादिमभिप्रेत्याह्वां केतुरुषसामेत्यग्रमित्यंपरपक्षान्तमभिप्रेत्य...।।

— निरू०; 11-6

6 माघशुक्लप्रवृतस्य पौषकृष्णसमापिनः।
युगस्य पञ्चवर्षस्य कालज्ञानं प्रचक्षते।।

— ऋक् ज्यो०; 32

7 वही

पक्ष में बदलने के सन्दर्भ में उल्लेख किया गया है।[1] पूर्णमासी आदि शब्द का प्रयोग भी ऋक् ज्योतिष में मिलता है जो शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष के ज्ञान का आभास दिलाता है।[2] अयनारम्भ की तिथियों के वर्णन के प्रसङ्ग में भी कृष्ण पक्ष की चतुर्थी व दशमी तिथि का उल्लेख प्राप्त होता है।[3] आथर्वण ज्योतिष में भी शुक्ल पक्ष[4] तथा कृष्ण पक्ष[5] का यत्र-तत्र उल्लेख किया गया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में प्राप्त उल्लेख इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि पक्ष दो थे और प्रत्येक में पन्द्रह तिथियाँ होती थी।

3.7 तिथि

'तिथि' शब्द का सामान्य अभिप्राय चान्द्र दिवस से है।[6] इस शब्द की उत्पत्ति- अत् + इथिन्, पृषो ० वा डीप् से की जा सकती है।[7] सूर्य से सङ्गम के अनन्तर जब चन्द्रमा 12 अंश के अन्तर में होता है तो प्रति 12 अंश की एक-एक तिथि होती है।[8]

---

1 भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः।
एकादशगुणाश्चेन्दोः शुक्लेऽर्धं चैन्दवा यदि।।
— याजुष् ज्यो०; 15

2 तृतीयायां नवम्यां च पौर्णमास्यां त्रिकद्विके।
द्वादश्यां विषुवान् प्रोक्तो द्वादश्यां दशमं भवेत्।।
— ऋक् ज्यो०; 33

3 प्रथमं सप्तमं चाहुरयनाद्यं त्रयोदश।
चतुर्थं दशमं चैव द्विर्युग्माद्यं बहुलेऽप्यृतौ।।
— याजुष् ज्यो०; 9

4 शुक्ल प्रतिपदि रात्रौ दिविपंचम्यां तथाष्टम्यां रात्रौ।
द्वादश्यामपि दिवा प्रथमं प्रतिपद्यते करणम्।।
— आथर्वण ज्यो०; 30

5 आद्यंतु शकुनिं नाम रात्रौ कृष्ण चतुर्दशीं।
आधाने हरणे चैव तथैव च पलायने।।
श्रुत्यानामथ योधानां पक्षिणां ग्रहपोषणे।
चिकित्सायां तु युद्धे च सर्वत्रैतत्प्रशस्यते।।
— वही; 36

6 आप्टे, वामन शिवराम- संस्कृत हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1993, पृ. 429

7 वही

8 शर्मा, हरिदत्त- ज्योतिष विश्वकोश, सुबोध पब्लिकेशन्स, 2000, पृ. 244

ऐतरेय ब्राह्मण में सर्वप्रथम तिथि की परिभाषा प्राप्त होती है और वहाँ कहा गया है कि जहाँ चन्द्रमा अस्त होता है और उदित होता है, वह तिथि है।[1] सामविधान ब्राह्मण में भी कृष्ण चतुर्दशी, कृष्ण पञ्चमी, शुक्ल चतुर्दशी आदि शब्द आए हैं।[2] मास के बाद समय के अपेक्षाकृत छोटे भाग को 'अहोरात्र' कहा जाता है। ऋग्वेद के अनुसार जल से भरे समुद्र के बाद संवत्सर उत्पन्न हुआ, फिर जगत को वश में रखने वाली परमसत्ता ने 'अहोरात्राणि' बनाए।[3] ब्राह्मण ग्रन्थों में इन चान्द्र तिथियों के लिए विशेष संज्ञाओं का भी प्रयोग किया गया है। जैसे राका पूर्णिमा के दिन को कहा गया है जब चन्द्रमा पूरा दिखाई देता है।[4] तैत्तिरीय ब्राह्मण में शुक्ल और कृष्ण पक्षों के दिन और रातों के भिन्न-भिन्न नाम बताए गए हैं।[5] शुक्ल पक्ष की अन्तिम रात्रि 'कामदुधा'[6]

---

1 यां पर्यस्तमियादभ्युदियादिति सा तिथिः।

— ऐ॰ब्रा॰; 32-10

2 सा॰वि॰ब्रा॰; 2-6, 2-8, 3-3

3 समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत्।
अहोरात्राणि विदधदिवश्वस्य मिषतो वशी।।

— ऋ॰; 10-190-2

4 पूर्णे निशाको सा राका।

— षड् ब्रा॰; 5-6-6

5 i) संज्ञानं विज्ञानं दर्शा दृष्टेति। एतावनुवाकौ पूर्वपक्षस्याहोरात्राणां नामधेयानि।
प्रस्तुतं विष्टुत ॅ सुता सुन्वतीति। एतावनुवाकावपरपक्षस्याहोरात्राणं नामधेयानि।।

— तै॰ब्रा॰; 3-10-10-2

ii) संज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं जानदभिजानत्। संकल्पमानं प्रकल्पमानमुपकल्पमानमुपक्लृप्तं क्लृप्तं। श्रेयोवसीय आयत् सम्भूतं भूतम्।।

— वही; 3-10-1-1

iii) दर्शा दृष्टा दर्शता विश्वरूपा सुदर्शना। अप्यायमाना प्यायमाना प्याया सुनृतेरा। आपूर्यमाणा पूर्यमाणा पूरयन्ति पूर्णा पौर्णमासी।।

— वही; 3-10-1-1

iv) प्रस्तुतं विष्टुत्ॅसॅस्तुतं कल्याणं विश्वरूपं। शुक्रममृतं तेजस्वि तेजः समृद्धं। अरूणं भानुमन् मरीचिमदभितप् तपस्वत्।।

— वही; 3-10-1-2

v) सुता सुन्वती प्रसुता सूयनामाऽभिषूयमाणा। प्रीति प्रपा सम्पा तृप्तिस्तर्पयन्ती। कान्ता काम्या कामजाताऽयुष्मती कामदुधा।।

— वही; 3-10-1-2, 3

6 कान्ता काम्या कामजाताऽयुष्मती कामदुधा।

— वही; 3-10-1-3

जबकि शुक्ल पक्ष की अन्तिम रात्रि 'पौर्णमासी'[1] कही जाती थी। अमावस्या और पौर्णमासी के अतिरिक्त 'अष्टका' शब्द भी तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्रयुक्त हुआ है।[2] कृष्ण पक्ष की आठवी रात्रि ही अष्टका कही जाती थी।[3] कृष्ण प्रतिपदा का 'व्यष्टका'[4] तथा शुक्ल प्रतिपदा को 'उदृष्ट'[5] कहा गया है। यास्क ने भी निरूक्त में पौर्णमासी के दो प्रकार अनुमति तथा राका का भी निर्वचन किया है।[6]

3.7.1 वेदाङ्ग ज्योतिष वर्णित तिथि स्वरूप

महर्षि लगध प्रणीत ऋक् ज्योतिष में तिथियों का उल्लेख किया गया है। तिथियों में प्रतिपदा[7], तृतीया[8], नवमी[9], पौर्णमासी[10], चतुर्दशी[11], षष्टी[12], द्वादश[13], सप्तमी[14],

---

[1] आपूर्यमाणा पूर्यमाणा पूरयन्ति पूर्णा पौर्णमासी।

— तै॰ब्रा॰; 3–10–1–1

[2] द्वादश पौर्णमास्यः। द्वादशाष्टकाः। द्वादशामवस्याः।

— वही; 1–5–12

[3] पौर्णमास्यष्टकामावस्या।

— वही; 3–11–1–19

[4] पौर्णमास्यां पूर्वमहर्भवति। व्यंष्टकायामुत्तरं....। अमावास्यायां पूर्वमहर्भवति। उदृष्ट उत्तरम्।

— ता॰ब्रा॰; 18–11–8

[5] वही

[6] या पूर्वा पौर्णमासी सानुमतिः, या उत्तरा सा राका।

— निरू॰; 11–29

[7] प्रथमं सप्तमं चाहुरयनाद्यं त्रयोदश।
चतुर्थे दशमं चैव द्विर्युग्माद्यं बहुलेऽप्यृतौ।।

— याजुष् ज्यो॰; 9

[8] तृतीयायां नवम्यां च पौर्णमास्यां त्रिकद्विके।
द्वादश्यां विषुवान् प्रोक्तो द्वादश्यां दशमं भवेत्।।

— ऋक् ज्यो॰; 33

[9] वही

[10] वही

[11] चतुर्दशीमुपवसथस्तथा भवेअथोदितो दिवसमुपैति चन्द्रमाः।

— वही; 34

[12] वही; 33

[13] वही

[14] याजुष् ज्यो॰; 9

त्रयोदशी[1], चतुर्थी[2], दशमी[3] आदि का वर्णन मिलता है। तिथि आनयन के लिए भी कुछ विधियों का उल्लेख मिलता है।[4] तिथि के सम्बन्ध में एक विशेष तथ्य याजुष् ज्योतिष में बताया गया है। इसमें कहा गया है कि सावन दिन में से उसका 62वाँ भाग घटा देने पर शेष को चान्द्र दिन अथवा तिथि कहते हैं।[5] यह तिथि सौर दिन से छोटी होती है। यही कारण है कि युग के मध्य तथा अन्त में अधिमास आते हैं।[6] तिथि समाप्ति काल निर्धारण प्रसङ्ग में बताया गया है कि- पर्व के बाद बीती हुई संख्या के दुगने को पर्व के भांशों में से घटाने पर जो शेष मिलता है वह दिन का वह क्षण होता है जब तिथि समाप्त होती है।[7] तिथि सम्बन्धी विशेष चर्चा वेदाङ्ग ज्योतिष के आथर्वण संस्करण में प्राप्त होती है। तिथियों को उनके गुण धर्म के आधार पर विभिन्न संज्ञाओं यथा नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता तथा पूर्णा से अभिहित किया गया है।[8] ये प्रत्येक पक्ष में होती हैं।[9] प्रतिपदा व षष्ठी तथा एकादशी तिथि नन्दा[10], द्वितीया-सप्तमी तथा द्वादशी

---

1 प्रथमं सप्तमं चाहुरयनाद्यं त्रयोदश।
चतुर्थे दशमं चैव द्विर्युग्माद्यं बहुलेऽप्यृतौ।।
— याजुष् ज्यो०; 9

2 वही

3 वही

4 तिथिमर्कदशाभ्यस्तां पर्वभांशसमन्विताम्।
विभज्य भसमूहेन तिथिनक्षत्रमादिशेत्।।
— वही; 20

5 ह्यूनं द्विषष्टिभागेन ज्ञेयं सौरं सपार्वणम्।
यत्कृतावुपजायेते मध्येऽन्ते चाधिमासकौ।।
— वही; 37

6 वही

7 अतीतपर्वभागेभ्यः शोधयेद् द्विगुणां तिथिम्।
तेषु मण्डलभागेषु तिथिनिष्ठां गतां रविः।।
— वही; 22

8 नन्दाभद्रा जया रिक्ता पूर्णा पक्षस्तु पंचमी।
तिथयः पंच विज्ञेया पक्षयोरूभयोरपि।।
— आथर्वण ज्यो०; 166

9 वही

10 नन्दा प्रतिपदं विद्यात्षष्ठीमेकादशीमपि।
द्वितीया सप्तमी भद्रा द्वादशी चोपपद्यते।।
— वही; 67

'भद्रा'[1], तृतीया-अष्टमी तथा त्रयोदशी 'जया'[2] संज्ञक है। जबकि चतुर्थी, नवमी तथा चतुर्दशी 'रिक्ता'[3] एवं पञ्चमी-दशमी तथा पञ्चदशी 'पूर्णा'[4] संज्ञा से जानी जाती है। इसके अतिरिक्त षष्ठी, अष्टमी, चतुर्थी तथा नवमी तिथियाँ 'पक्षछिद्र' मानी गई है।[5] तिथियों के इस वर्गीकरण को निम्नलिलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

संज्ञा	**तिथियाँ**	**संख्या**
नन्दा	प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी	1, 6, 11
भद्रा	द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी	2, 7, 12
जया	तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी	3, 8, 13
रिक्ता	चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी	4, 9, 14
पूर्णा	पञ्चम, दशमी, पञ्चदशी	5, 10, 15
पक्षछिद्र	षष्ठी, अष्टमी, चतुर्थी, नवमी	6, 8, 4, 9

---

1 नन्दा प्रतिपदं विद्यात्षष्ठीमेकादशीमपि।
द्वितीया सप्तमी भद्रा द्वादशी चोपपद्यते।।
— आथर्वण ज्यो॰; 67

2 तृतीया चाष्टमी चैव जया च स्यात् त्रयोदशी।
चतुर्थी नवमी रिक्ता तथैव चतुर्दशी।
— वही; 68

3 वही

4 पञ्चमी दशमी पूर्णा तथा पञ्चदशीति च।
तिथयोह्येषु वारेषु सिद्धार्थास्तत्रतच्छृणु।।
— वही; 69

5 षडष्टौ नव चत्वारि पक्षछिद्राणि वर्जयेत्।
अपि नक्षत्रसम्पन्नां वर्जयेत्तु चतुर्दशीम्।।
— वही; 65

तिथियों के वर्गीकरण के साथ-साथ इन तिथियों के शुभाशुभत्व पर भी पर्याप्त विचार किया गया है। शुभाशुभत्व का निर्णय करते समय यात्रा तथा कार्यों की प्रकृत्ति को विशेष रूप से ऋषि ने ध्यान में रखा है। यात्रा के दृष्टिकोण से शुभ तिथियों में द्वितीया[1], तृतीया[2], पञ्चमी[3], दशमी[4], एकादशी[5] तथा त्रयोदशी[6] की गणना की गई है। जबकि अशुभ फलोत्पादक तिथियों में प्रतिपदा[7], चतुर्थी[8], षष्ठी[9], सप्तमी[10], अष्टमी[11], नवमी[12], अमावस्या[13] तथा पूर्णमासी[14] तिथियों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त कृष्ण पक्ष की तृतीया, सप्तमी, दशमी तथा चतुर्दशी तिथि एवं शुक्ल पक्ष की चतुर्थी, अष्टमी, एकादशी तथा पूर्णिमा तिथियों में भद्रा होने के कारण शुभ कार्य शीघ्रफल

---

1 द्वितीया संप्रयातस्य सिद्धमर्थं विनिर्दिशेत्।
— आथर्वण ज्यो॰; 59

2 तृतीया क्षेममारोग्यं चतुर्थी मरणादृभयम्।
पंचमी विजया श्रेष्ठा सा वै सर्वार्थ साधिका।।
— वही; 60

3 वही

4 दशम्यां प्रस्थितो राजा भूमिलाभाय कल्पते।
एकादशी तु सर्वत्र प्रशस्ता सर्वकर्मसु।।
— वही; 61

5 वही

6 द्वादशीत्वर्थनाशाय सन्धि कुर्यात् त्रयोदशी।
चतुर्दशी चलत्कर्म कौतुकान्यत्र कारयेत्।।
— वही; 63

7 आदौविसर्जयेत धीरः प्रस्थाने प्रथमां तिथिम्।
— वही; 59

8 वही; 60

9 षष्ठीत्वं न लाभाय सप्तमीत्वन्न भाग्भवेत्।
अष्टमी रोगलाभाय नवम्यां न निवर्तते।।
— वही; 61

10 वही

11 वही

12 वही

13 अमावस्यां न यात्रा स्यात् पौर्णमास्यांतथा दिवा।
पौर्णमास्यां प्रयातस्य नसिद्धिस्तस्य जायते।।
— वही; 64

14 वही

नहीं देता है।[1] षष्ठी, अष्टमी, चतुर्थी एवं नवमी तिथि को 'पक्ष छिन्द्र' संज्ञक होने के कारण[2] तथा चतुर्दशी तिथि को भी यात्रा के लिए प्रशस्त नहीं माना गया है।[3] शुक्रवार को नन्दा, बुधवार को भद्रा, मंगलवार को जया, शनिवार को रिक्ता, तथा गुरूवार को पूर्णा तिथियाँ विजय तथा सम्पूर्ण फलों को देने वाली कही गई है।[4] नन्दा तिथियों में खाना, पीना, गहना, सुन्दर स्त्रियां, आनंद तथा मन को प्रिय लगने वाला कार्य करना चाहिए।[5] भद्रा तिथियों में मङ्गल कार्य, पद-ग्रहण, माङ्गलिक पाठ आदि शुभ कार्यो का निष्पादन करने का निर्देश है।[6] इसी तरह जया तिथियों में सेना का संगणन, सञ्चालन विक्रय तथा शास्त्रों के निर्माण को[7] एवं रिक्ता तिथियों में सभी स्थिर एवं अस्थिर कार्यों को करने से बचने की ओर संङ्केत किया गया है।[8] जबकि पूर्णा तिथियों में पुल बाँधना, घर व कोषागार निर्माण, पोषण, वाहन, रथ सवारी का निर्माण व क्रय कार्य

---

[1] कृत्रिरासदिवादरंभूत दिवाशुचरष्ट दिवाहर पूर्णदिवा।,
इतिविष्टिरहर्गण रात्रिचरानच कर्म भवेत् कृतमाशु शुभम्।।
— आथर्वण ज्यो॰; 58

[2] षडष्टौ नव चत्वारि पक्षछिद्राणि वर्जयेत्।
अपि नक्षत्रसम्पन्नां वर्जयेत्तु चतुर्दशीम्।।
— वही; 65

[3] वही

[4] नन्दा भृगौ सोमसुते च भद्रा भौमे जया सूर्यसुते च रिक्ता।
पूर्णा गुरौ पंचसु पंच एते जयावहः सर्वफलप्रदाश्च।।
— वही; 70

[5] नन्दायां भक्ष्य भोज्यानि भूषणानि वरस्त्रियः।
आनन्दं चैव कुर्वीत मनः प्रियतमानि च।।
— वही; 72

[6] भद्रायां भद्रकार्याणि यानि योग्यासनानि च।
स्वस्तिवाचन कर्माणि कारयेदारभेत च।।
— वही; 73

[7] जयायां योजयेत्सेनां वणिजः क्षिपकारिणः।
पण्यविक्रयणं कुर्युः शस्त्रकर्म च कारयेत्।।
— वही; 74

[8] रिक्तायां वर्जयेन्नित्यं तिथौ तिथि विचक्षणः।
ध्रुवाणि सर्वकार्याणि स्थावराणि चराणि च।।
— वही; 75

को प्रशस्त कहा है।[1] तिथियों के इस वर्गीकरण तथा शुभाशुभ के निर्धारण के बाद ग्रन्थ के ऋषि ने एक सूत्र दिया है उनके अनुसार ब्राह्मणों द्वारा पुण्याह वाचन कराकर यदि कार्य प्रारम्भ कराएँ जाएँ तो उसमें नक्षत्र, मुहूर्त्त, तिथि तथा करण के अशुभत्व का नाश होकर शुभ गुणों की प्राप्ति हो जाती है।[2] स्पष्ट है कि आथर्वण ज्योतिष में प्राप्त तिथियों से सम्बन्धित यह विशद् वर्णन फलित ज्योतिष तथा शान्तिकर्म के विकास की ओर संङ्केत करता है।

3.8 वार

रविवार, सोमवार आदि शब्दों का प्रयोग वेदों में नहीं मिलता है। हाँ इतना अवश्य है कि ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में 'वासर' शब्द अवश्य प्रयुक्त हुआ है।[3] इसी श्रुति में एक अन्य स्थान पर जहाँ दिन के मान के घटने तथा बढ़ने का वर्णन है वही एक बार और 'वासर' शब्द प्रयुक्त है।[4] हाँ इतना अवश्य है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में दिन के विभिन्न भागों यथा पूर्वाह्ण[5], मध्याह्न[6], अपराहण[7] और सायं[8] का उल्लेख किया गया है।

---

1 पूर्णायां सेतुबन्धांश्च कोष्ठान् कोशांश्च कारयेत्।
वाहनानि च पोषे च रथयानानि कारयेत्।।
— आथर्वण ज्यो॰; 76

2 द्विजपुण्याहघोषेण कृतं स्यात्सर्व साम्पदम्।
नक्षस्य मुहूर्तस्य तिथेश्च करणस्य च।।
— वही; 88

3 आदिप्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम्। परो यदिध्यते दिवा।।
— ऋ॰; 8-6-30

4 सोमराजन् प्रण आयूंषि तारीरहानीव सूर्यो वासराणि।
— वही; 8-48-7

5 ऋग्भिः पूर्वाहणे दिवि देव ईयते। यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्नः।
सामवेदेनास्तमये महीयते। वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्यः।।
— तै॰ब्रा॰; 13-12-9-11

6 वही

7 पूर्वाह्णे वै देवानां मध्यन्दिनो मनुष्याणामपराह्णः पितृणाम्।।
— शत॰ब्रा॰; 12-41-2-7

8 वरूणस्य सायमासवोपनः।
— तै॰ब्रा॰; 11-5-31

3.8.1 वेदाङ्ग ज्योतिषीय वार विचार

वेदाङ्ग ज्योतिष के ऋक् तथा याजुष् संस्करण में वार से सम्बन्धित किसी भी सिद्धान्त का वर्णन नहीं किया गया है। हाँ, आथर्वण ज्योतिष में इस विषय पर पर्याप्त विचार अवश्य किया गया है। सात दिनों के स्वामी का उल्लेख[1] सात दिन वाले सप्ताह के अस्तित्व का बोध कराता है। इस सप्तदिनाधिपतियों के रूप में क्रमशः सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरू, शुक्र तथा शनि का उल्लेख किया गया है।[2] विभिन्न कालाङ्गो यथा वार, करण, योग तथा तारा के मध्य बलाबल के निर्णय प्रसङ्ग में वार को अन्य से हीन बली माना गया है।[3] वार के अधिपतियों के उल्लेख के बाद ग्रन्थकर्त्ता ऋषि ने प्रत्येक वार को किए जाने वाले कार्यों का भी उल्लेख किया है। इस क्रम में उन्होंने कहा है कि राजा का अभिषेक, राजा की यात्रा, राजा का कार्य, राजा का दर्शन तथा हवन आदि अग्निकार्य रविवार को शुभ होता है।[4] सोमवार को रसपान, मधु व सोमपान, श्रङ्गारिक वस्तुओं का धारण, उबटन आदि का लेपन, खेतों में बीजवपन तथा वृक्षारोपण का कार्य करना चाहिए।[5] मंगलवार के दिन नगर या पुर में भेद नीति द्वारा प्रहार, उसी प्रकार राज्य में सेनापति पद पर नियुक्ति, व्यायाम, शस्त्र

---

1 आदित्यः सोमोभौमश्च तथा बृहस्पतिः।
भार्गवः शनैश्चरश्चैव एते सप्तदिनाधिपाः।।
— आथर्वण ज्यो॰; 93

2 वही

3 वारश्चाष्ट गुणः प्रोक्तः करणं पोडशान्वितम्।
द्वात्रिंशत् गुणयोगश्च तारापष्टि समन्विता।।
— वही; 91

4 नृपाभिषेकं नृपतिप्रयाणं नृपस्य कार्यं नृपदर्शनं च।
यच्चाग्नि कार्यं भुवि किञ्चिदुक्तं तत्सर्वमादित्य दिने प्रशस्तम्।।
— वही; 94

5 पानं रसानां मधुसोमपानं सौभाग्यकर्माण्यनुलेपनानि।
क्षेत्रेऽथबीजानिवपेत वृक्षान्। सोमस्य कुर्याद्दिवसेविधिज्ञः।।
— वही; 95

सञ्चालन तथा चोरी का कार्य प्रशस्त कहा गया है।[1] जुआ खेलना, युद्ध करना, कन्या का विवाह, प्रिय कार्य, शत्रु से सन्धि व रूठे मित्रों के साथ पुनः सन्धि आदि कार्य बुधवार को करना चाहिए।[2] गुरूवार में अध्ययन का आरम्भ, देवपूजन, ग्रह-निर्माण, महात्माओं का दीक्षा संस्कार, वस्त्र, अंगनाओं का भूषण तथा कृषि कार्य उत्तम माना गया है।[3] अश्वारोहण, योगारूढ होना, गजारोहण, कन्यादान, क्रय-विक्रय आदि कार्य शुक्रवार को प्रशस्त कहा गया है।[4] इसी प्रकार ऋषि ने ऋतुओं के अनुकूल स्थापना करना, खम्भे गड़वाना, गृह प्रवेश, हाथी बांधना, गाँव, पुर, नगर आदि में निवास शनिवार को शुभ माना है।[5] इसके अलावा विभिन्न तिथियों के साथ योग के कारण भी वार के शुभत्व का निर्धारण किया गया है। जैसे शुक्रवार को नन्दा (1, 6, 11), बुधवार को भद्रा (2, 7, 12) मङ्गलवार को जया (3, 8, 13), शनिवार को रिक्ता (4, 9, 14) तथा गुरूवार को पूर्णा (5, 10, 15) तिथियों का योग विजय और सम्पूर्ण फलों को प्रदान करने वाला कहा गया है।[6]

---

[1] भेदाभिघातो नगरे पुरे वा सेनापतित्वं च तथैव राज्ये।
व्यायामशस्त्राभ्यसनं च चौर्यं भूमेः सुतस्याह्नि सदा प्रशस्तम्।।
— आर्थवण ज्यो॰; 96

[2] द्यूत प्रवेशोरणकारणार्थं कन्याप्रियार्थं रिपुसन्धिकार्यम्।
भिन्नेऽथमैत्रे प्रतिसंधिकार्यं क्षिप्रं प्रशंसन्ति दिने बुधस्य।।
— वही; 97

[3] स्वाध्यायदेवार्चनवेश्मकार्यं संस्कारदीक्षां च तथायतीनाम्।
वस्त्राणिदाराप्रियभूषणानि कुर्यात् कृषिं देवगुरोर्दिने च।।
— वही; 98

[4] अश्वप्रवाहं प्रथमं प्रशस्तं योगप्ररोहो गजरोहणं च।
कन्याप्रदानं क्रयविक्रयौ च तेषां सदा शुक्रदिने प्रशस्तम्।।
— वही; 99

[5] स्थाप्यं च कर्म ऋतुभिश्च यूपो ग्रहप्रवेशो गजबन्धनं च।
ग्रामेऽथवासो नगरे पुरे वा शनैश्चरे सर्वमिदं प्रशस्तम्।।
— वही; 100

[6] नन्दा भृगौ सोमसुते च भद्रा भौमे जया सूर्यसुते च रिक्ता।
पूर्णा गुरौ पंचसु पंच एते जयावहाः सर्वफलप्रदाश्च।।
— वही; 70

3.9 करण

'करण' नामक कालमान का उल्लेख वैदिक संहिताओं के अतिरिक्त महाभारत में भी प्राप्त नहीं होता है।[1]

3.9.1 वेदाङ्ग ज्योतिषीय वर्णित करण सम्बन्धी अवधारणा

वेदाङ्ग ज्योतिष का ऋक् तथा याजुष् संस्करण भी इस कालमान के सम्बन्ध में मौन है। आथर्वण ज्योतिष में अवश्य करण के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा की गई है। तिथि के आधे भाग को 'करण' कहते है।[2] ये करण संख्या में ग्यारह होते हैं जिसमें चार ध्रुव संज्ञक तथा सात चर संज्ञक होते हैं।[3] वव, वालत, कौलव, तैतिल, गर, वणिज तथा विष्टि ये सात चर संज्ञक करण हैं[4] जबकि शकुनि, चतुष्पद, नाग तथा कौस्तुभ ध्रुव संज्ञक करण हैं।[5] इन करणों के देवताओं का भी वर्णन इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है, इसके अनुसार शकुनि करण का स्वामी गरूड़, चतुष्पद करण का स्वामी वृषभ, नाग करण का देवता नाग तथा कौस्तुभ करण का स्वामी कुबेर होता है।[6]

---

1 दीक्षित, शंकर बालकृष्ण– भारतीय ज्योतिष, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2004, पृ. 161

2 तिथ्यर्धभोगि करणं सदा भवति पार्थिव।
स्थिराणि तेषां चत्वारि सप्त विद्धि चराणि च।।
— वि॰ध॰पु॰; 11–83–25

3 एकादशभिः करणै मासः संप्रतिपद्यते।
ध्रुवाणि तत्र चत्वारि चराण्यन्यानि सप्त च।।
— आथर्वण ज्यो॰; 33

4 ववं व वालवं चैव कौलवं तैतिलेति च।
गराजिर्वणिजं चैव विष्टिर्भवति सप्तमम्।।
— वही; 34

5 शकुनिं चतुष्पदं नागं चतुर्थं कौस्तुभं भवेत्।
एकैकस्यतु यत्कर्म तद्वक्ष्यामि पृथक् पृथक्।।
— वही; 35

6 शकुनस्य गरुत्मान्वै वृषभो वै चतुष्पदे।
नागस्य देवता नागाः कौस्तुभस्य धनाधिपः।।
— वही; 155

इसी प्रकार वव, वालव, कौलव तथा तैतिल करणों के स्वामी क्रमशः विष्णु, प्रजापति, सोम तथा इन्द्र हैं।[1] जबकि वासुदेव, मणिभद्र तथा मृत्युदेव क्रमशः गर, वाणिज तथा विष्टि करणों के अधिपति हैं।[2] करणों के देवताओं को निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

करण	**वव**	**वालव**	**कौलव**	**तैतिल**	**गर**	**वणिज**	**विष्टि**	**शकुनि**	**चतुष्पद**	**नाग**	**कौस्तुभ**
देवता	विष्णु	प्रजापति	सोम	इन्द्र	वासुदेव	मणिभद्र	मृत्युदेव	गरूड़	वृषभ	नाग	कुबेर

करण के विषय में कहा गया है कि शुक्ल पक्ष प्रतिपदा में रात में, पञ्चमी के दिन में, अष्टमी के रात में तथा द्वादशी तिथि में दिन का पहला करण 'वव' होता है।[3] इसी प्रकार पौर्णमासी की रात में, चतुर्थी में पुनः दिन में, सप्तमी तिथि के रात में तथा एकादशी के दिन में 'वव' करण होता है।[4] आथर्वण के अनुसार करणों का स्वरूप इस प्रकार का होता है–

---

1 ववस्य देवता विष्णुर्वालवस्य प्रजापतिः।
कौलवस्य भवेत्सोमस्तैतिलस्य शतक्रतुः।।
— आथर्वण ज्यो॰; 56

2 गराजिर्वसुदेवत्यो मणिभद्रोऽथ वाणिजे।
विष्टेस्तु दैवतं मृत्युर्देवता परिकीर्तितः।।
— वही; 57

3 शुक्ल प्रतिपदि रात्रौ दिविपंचम्यां तथाष्टम्यां रात्रौ।
द्वादश्यामपि दिवा प्रथमं प्रतिपद्यते करणम्।।
— वही; 30

4 पौर्णमास्यां ववं रात्रौ तच्चतुर्थ्यां पुनर्दिवा।
तद्वि तत्सप्तम्यां रात्रौ तच्चैवैकादश्यां दिवा।।
— वही; 31

	तिथि	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	30
शुक्ल पक्ष	पूर्वार्ध	कौ॰	वा॰	तै॰	व॰	व॰	कौ॰	ग॰	वि॰	या॰	तै॰	व॰	व॰	कौ॰	ग॰	वि॰	0
	उत्तरार्ध	व॰	कौ॰	ग॰	वि॰	वा॰	तै॰	व॰	व॰	कौ॰	ग॰	वि॰	वा॰	तै॰	व॰	व॰	0
कृष्ण पक्ष	पूर्वार्ध	वा॰	तै॰	व॰	व॰	कौ॰	ग॰	वि॰	वा॰	तै॰	व॰	व॰	कौ॰	ग॰	वि॰	0	च॰
	उत्तरार्ध	कौ॰	ग॰	वि॰	वा॰	तै॰	व॰	व॰	कौ॰	ग॰	वि॰	वा॰	तै॰	व॰	श॰	0	ना॰

इन समस्त करणों को शुभ तथा अशुभ स्वरूप वाला कहा गया है और इसके वास्तविक स्वरूप के ज्ञान को प्राप्त करना आवश्यक कहा गया है ताकि मनुष्य आपत्ति को प्राप्त नहीं करे।[1] इस विषय पर कहा गया है कि 'शकुनि' करण में आभूषण धारण, योद्धाओं का अपहरण, पलायन, पक्षियों का घर में पालन, चिकित्सा तथा युद्ध आदि कर्म करने चाहिए।[2]

चतुष्पद करण जब दिन में हो तो तांत्रिक विधि से भूतो को बलि देकर शत्रुओं का सर्वनाश करने का कार्य करना उत्तम रहता है।[3] यही करण जब अमावस्या के दिन में हो तो चौपायों से संबंधित समस्त कार्य तथा श्राद्ध आदि कर्म में प्रवृत्त होना चाहिए इससे मनुष्य प्रयत्नवान् होता है।[4] 'नाग' करण अमावस्या की रात्रि में हो तो नाश करना, काटना, बाँधना, समाप्त करना, बलात कार्य, बलपूर्वक हरण आदि कार्य प्रशस्त है।[5] शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को दिन में कौस्तुभ करण होने पर यह समस्त कार्यों के

---

1 शुभाशुभ निबद्धानि करणानि निबोधत।
तानि तत्वेन विज्ञाय नापदं प्राप्नुयान्नरः।।
— आथर्वण ज्यो॰; 32

2 आद्यंतु शकुनिं नाम रात्रौ कृष्ण चतुर्दशीं।
आधाने हरणे चैव तथैव च पलायने।।
श्रुत्यानामथ योधानां पक्षिणां ग्रहपोषणे।
चिकित्सायां तु युद्धे च सर्वत्रैतत्प्रशस्यते।।
— वही; 36

3 भूततन्त्र बलिंदद्याच्छत्रूणां परघातकम्।
करणं चतुष्पदं नाम कृष्ण पञ्चदशीं दिवा।।
— वही; 37

4 चतुष्पदानां सर्वेषां हितं सर्वेषु कर्मसु।
श्राद्धमत्र च कुर्वीत प्रयतश्च भवेन्नर।।
— वही; 38

5 नष्टं दष्टं तथा बद्धं तदन्तमिति निर्दिशेत्।
यानि प्रसह्य कार्याणि प्रमथ्य हरणानि च।
तानि नागे प्रयुक्तानि सिद्धयन्ति फलवन्ति च।।
— वही; 40

लिए प्रशस्त होता है।[1] तथा इसी की एक अन्य संज्ञा 'वैश्वदेव' भी है।[2] वव नामक करण में स्थिर, चर, गमन एवं प्रवेश कार्य करना चाहिए।[3] वालव नाम करण ब्राह्मणों के सभी आरम्भिक कार्य चूड़ा-उपनयन, यज्ञ, विवाह तथा ऐश्वर्य के लिए उत्तम होता है।[4] दिन में तैतिल करण होने पर सुखी राज्य में शान्ति संबंधी तथा पुष्टि संबंधी कार्य का आरम्भ यदि किया जाय तो श्रेष्ठ फलदायक होता है।[5] 'कौलव' करण मित्रता सम्बन्धी कार्य, स्थिर कार्य तथा सिद्धि प्रदान करने वाले कार्यों के लिए प्रशस्त कहा गया है।[6] राजद्वार का आरम्भ, राजा की सेवा, आभूषणों का निर्माण व धारण तथा यात्रा संबंधित कार्य तैतिल करण में किया जाना चाहिए।[7] 'गर' नामक करण ग्रहस्थों के कार्य यथा पशुओं का पालन-पोषण तथा क्रय-विक्रय हेतु अच्छा होता है[8], साथ

---

1 शुक्ल प्रतिपदि दिवा कौस्तुभं करण भवेत्।
— आथर्वण ज्यो॰; 41

2 वही

3 ववेन ध्रुव कर्माणि क्षिप्राण्यति व कारयेत्।
प्रस्थाने च प्रवेशे च तद्धि सर्वार्थ साधकम्।।
— वही; 42

4 वालवं ब्राह्मणानांतु सर्वारम्भेषु शोभनम्।
चूडोपनयने यज्ञे विवाह भूति कर्मसु।।
— वही; 43

5 अन्यत्र शोभने राज्ये शान्तिकं पौष्टिकं प्रति।
राजद्वारिकमारम्भं कारयेत् तैतिले दिने।।
— वही; 44

6 मैत्रं युक्तं तु यत्कर्म यच्चस्यात्सिद्धि कारकम्।
स्थावराणि च कार्याणि कौलवे तानि कारयेत्।।
— वही; 45

7 राजद्वारिकमारम्भं कारयेत्तैतिले दिने।
एतद्धि करणं श्रेष्ठं नित्यं राज्ञोपसेविनाम्।।
अलंकारांश्च विविधान् दित्यान्याभरणानि च।
अन्यच्चापि तथा युक्तं युक्तानान्तु पथिक्रिया।।
— वही; 46, 47

8 गराजिनान्तु कुर्वीत यत्कर्म ग्रहमेधिनां।
पशूनां पोषणं चैव प्रयोज्यम् क्रयविक्रयम्।।
— वही; 48

ही यह करण गृह प्रवेश, वास्तुकर्म, गृहारम्भ तथा विशेषकर हल आदि चलाने के लिए भी शुभ कहा गया है।[1] 'वाणिज' करण विशेष रूप से विक्रय हेतु लाभप्रद परन्तु खरीदने वाले के लिए विशेष लाभवाला नहीं होता।[2] विष्टि करण अशुभ माना गया है और कहा गया है कि इस करण में न तो स्वयं ही कोई शुभ कार्य करना चाहिए और न ही किसी और से ही प्रारम्भ करवाना चाहिए।[3] क्योंकि इस करण में आरम्भ किया गया कार्य बहुत कम फल देने वाला[4] तथा अस्थायी होता है।[5] यह करण कुछ अधिक ही अशुभ माना गया है[6] परन्तु इसका अन्तिम भाग विजय प्रदान करने वाला कहा गया है।[7] 'विष्टि' करण को स्पष्ट करने हेतु कहा गया है कि प्रारम्भ की पाँच घटी तक विष्टि नामक करण का आगमन काल, चौदह घटी तक उसका वर्तमान काल, अगली आठ घटी तक उसका मध्यकाल तथा अन्तिम तीन घटी तक उसका पूँछ कहा गया है।[8] इन समस्त ग्यारह करणों से सम्बन्धित विशेष तथ्यों के प्रस्तुतीकरण के अतिरिक्त

---

1 गृहप्रवेशं वास्तूनां गृहाणां रोपणानि च।
विशेषेण तु कार्याणि कर्षणादीनि कारयेत्।।
— आथर्वण ज्यो॰; 49

2 वणिजं वणिजानान्तु सर्वपण्येष्ट शोभनम्।
विक्रेतारिध्यते तत्र क्रेता तत्र न रिध्यते।।
— वही; 50

3 विष्टिना करणे कर्म न कुर्यान्नैव कारयेत्।
कृछ्रेणापि कृतं कर्म भवेदल्प फलोदयम्।।
— वही; 51

4 वही

5 यदि सिध्यति तत्कर्म विष्टिनातु कदाचन।
नतच्चिरं सशंकंतु शक्यं भोक्तुं सुरैरपि।।
— वही; 52

6 आगतं धननाशाय आदौ कार्य विनाशिनी।
मध्ये प्राणहराज्ञेया विष्टिः पुच्छे ध्रुवं जयः।।
— वही; 53

7 वही

8 आगतंतु घटिका पंच वर्तमाने चतुर्दश।
मध्येचाष्टौ विजानीयाद् विष्टिपुच्छेत्रयः स्मृतः।।
— वही; 54

ग्रन्थ के ऋषि ने एक सूत्र भी दिया है जिसकी सहायता से करण ज्ञान किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में कहा गया है कि जिस तिथि में करण जानना हो, उस तिथि को शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से गिनकर जो संख्या मिले, उसे दूना कर फिर इसमें 1 घटा दे, जो शेष रहे उसमें 7 से भाग दे, भाग देने पर जो शेष आए उसको वव से विष्टि पर्यन्त क्रमशः गिनकर जाना जा सकता है।[1] स्पष्ट है कि आथर्वण ज्योतिष के रचनाकार ऋषि को करण विषयक विशेष ज्ञान था।

3.10 मुहूर्त्त

'मुहूर्त्त' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ऋग्वेद के 'विश्वामित्र-नदी' संवाद सूक्त में प्राप्त होता है।[2] यहाँ 'मुहूर्त्त' शब्द का प्रयोग करते हुए ऋषि कहते है कि जल से पूर्ण नदियों! मेरे सोम सम्पन्नता के कार्य की बात सुनने के लिए मुहूर्त्त भर रूक जाओ।[3] शतपथ ब्राह्मण भी मुहूर्त्त शब्द का निर्वचन करता हुआ कहता है- वह जो जल्दी से व्यतीत हो जाता है।[4] आचार्य यास्क ने भी 'मुहूर्त्त' शब्द के निर्वचन से यह सिद्ध किया है कि काल, परिवर्तन का ही नाम है।[5] तैत्तिरीय ब्राह्मण में दिवस और रात्रि दोनों के मुहूर्त्त संज्ञक पन्द्रह नाम बताए गए है और ये नाम शुक्ल पक्ष तथा

---

1 तां तिथिः द्विगुणीकृत्य हीनमेकन्तु कारयेत्।
सप्तभिश्च हरेद् भागं शेषं करणमुच्यते।।
— आथर्वण ज्यो॰; 31

2 रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरूप मुहूर्त्तमेवैः।
प्रसिन्धुमच्छा बृहती मनीषाऽवस्युरहवे कुशिकस्य सुनूः।।
— ऋ॰; 13-33-5

3 वही

4 तद् यन्मुहुः त्रायन्ते तस्मान्मुहूर्ताः।
— शत॰ब्रा॰; 10-4-12-18

5 मुहूर्तम् एवैः अयनैः अवनैः वा। मुहूर्त्तो मुहुर्ऋतः ऋतुः ऋते गतिकर्मणः मुहुः मुहुः इव कालः।
— निरू॰; 12-25

कृष्ण पक्ष में भिन्न-भिन्न है।[1] इन मुहूर्त्तों को निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

[1] i) अथ यदाह। चित्रः केतुर्दाता प्रदाता सविता प्रसविताभिशास्तानुमन्तेति। एष एव तत्। एष ह्येव तेह्नो मुहूर्ताः। एष रात्रेः।

— तै॰ब्रा॰; 3-10-9

ii) चित्रः केतुः प्रभानाभान्त्संभान्। ज्योतिष्मा ँ स्तेजस्वानाप ँ स्तपन्निभितपन्। रोचनो रोचमानः शोभनः शोभमानः कल्याणः।।

— वही; 3-10-1

iii) दाता प्रदाताऽनन्दोमोदः प्रमोदः। आवेशन्निवेशयन् संवेशनः स ँ शान्तः शान्तः। आभवन् प्रभवन् सम्भवन् सम्भूतो भूतः।।

— वही; 13-10-1-1, 2

iv) सविता प्रसविता दीप्तो दीपयन् दीप्यमानः। ज्वलन् ज्वलिता तपन् वितपन् सन्तपन्। रोचनो रोचमानः शुंभूः शुंभमानो वामः।।

— वही; 3-10-1-2

v) अभिशास्तानुमन्तानन्दो मोदः प्रमोदः। आसादयन् निषादयन् स् ँ सादनः स ँ सन्नः। आभूर्विभूः प्रभुः शंभूर्भुवः।।

— वही; 3-10-1-3

तिथि	शुक्ल पक्ष		कृष्ण पक्ष	
	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि
1.	चित्र	दाता	प्रस्तुत	अभिशास्ता
2.	केतु	प्रदाता	विष्टुत्	अनुमन्ता
3.	प्रमान्	आनन्द	संस्तुत	आनन्द
4.	आभान्	मोद	कल्याण	मोद
5.	संभान	प्रमोद	विश्वरूप	प्रमोद
6.	ज्योतिष्मान्	आवेशन	शुक्र	आसादयन्
7.	तेजस्वान्	निवेशन	अमृत	निसादयन्
8.	आतपन	संवेशन	तेजस्वी	संसादन
9.	तपन	संशान्त	तेज	सादन
10.	अभितपन्	शान्त	समृद्ध	संसन्न
11.	रोचन	आभवन्	अरूण	आभ्
12.	रोचमान	प्रभवन्	भानुमान्	विभू
13.	शोभन	संभवन्	मरीचिमान्	प्रभू
14.	शोभमान	संभूत	अभिजित्	शंभू
15.	कल्याण	भूत	तपस्वान्	भुव

इन मुहूर्त्तो के अंदर भी 15 प्रतिमुहूर्त्त कहे गए है।[1]

[1] इदानीं तदानीमेतर्हि क्षिप्रमजिरं। आशुर्निमेष फणोद्रवन्नतिद्रवन्। त्वर ₹ स्त्वरमाण आशुरशीयान् जवः।।
— तै॰ब्रा॰; 13-10-1-4

3.10.1 वेदाङ्ग ज्योतिषीय मुहूर्त्त गणना पद्धति

वेदाङ्ग ज्योतिष के ऋक् संस्करण में मुहूर्त्त का वर्णन किया गया है।[1] यहाँ बताया गया है कि एक दिन में 30 मुहूर्त्त होते हैं।[2] दक्षिणायन तथा उत्तरायण के प्रसङ्ग में भी मुहूर्त्त शब्द प्रयुक्त है और यहाँ कहा गया है कि दिन तथा रात्रि के मान में अधिकतम छः मुहूर्त्त की वृद्धि या ह्रास हो सकता है।[3] वेदाङ्ग ज्योतिष के याजुष् संस्करण में भी एक दिन में मुहूर्त्तों की संख्या के विषय में ऋक् ज्योतिष के सिद्धान्त का ही अनुसरण किया गया है।[4] दिनमान निकालने के प्रसङ्ग में भी दिन का मुहूर्त्तात्मक मान निकालने की विधि बताई गई है।[5] परन्तु इतना अवश्य है कि इन मुहूर्त्तों के नामकरण का वर्णन न तो ऋक् ज्योतिष में ही मिलता है और न ही याजुष् ज्योतिष में। वेदाङ्ग ज्योतिष का आथर्वण संस्करण इस दृष्टि से काफी समृद्ध है। यहाँ मुहूर्त्त विषय पर बड़ी ही गहन चर्चा प्राप्त होती है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही कश्यप ऋषि ने ब्रह्मा जी से मुहूर्त्त के संबंध में प्रश्न किया है।[6] इस ग्रन्थ में मुहूर्त्त का मान

---

1 घर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपा ह्रास उदग्गतौ।
दक्षिणेतौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्ययनेन तु।।
— ऋक् ज्यो॰; 7

2 कला दश च विंशा स्याद् द्वे मुहूर्तस्य नाडिके।
तत्त्रिंशद् द्युकलानां तु षट्शती त्र्यधिका भवेत्।।
— वही; 16

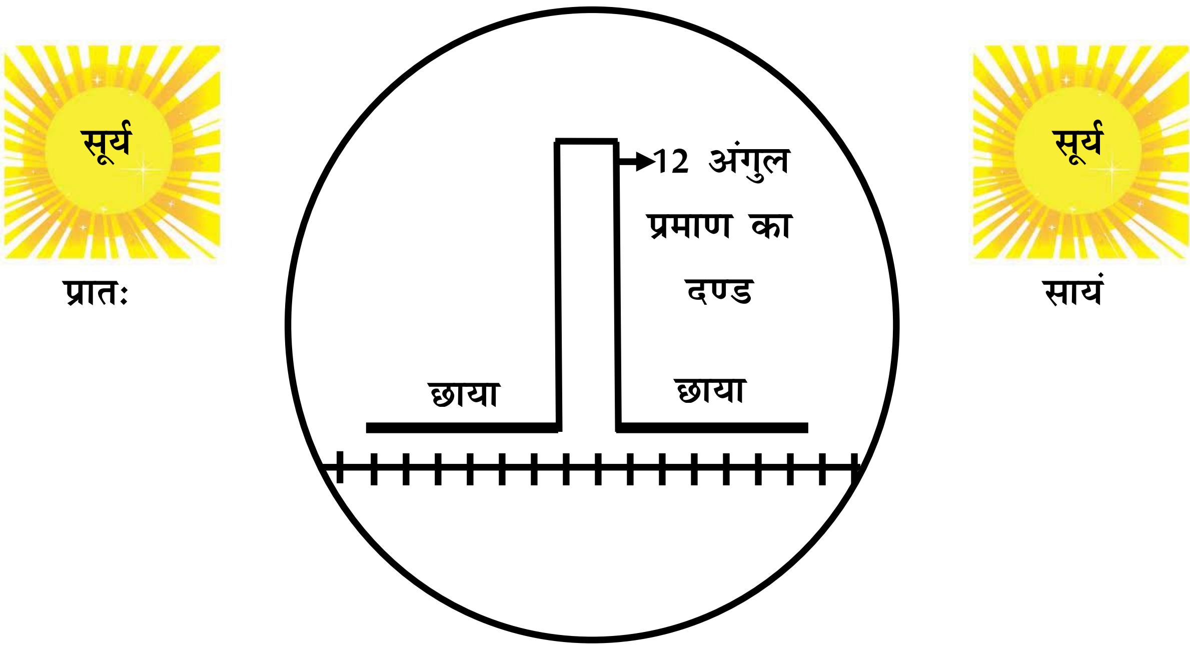
3 वही; 7

4 कला दश सविंशा स्याद् द्वे मुहूर्त्तस्य नाडिके।
तन्त्रिशत् द्युकलानां तु षट्शती त्र्यधिका भवेत्।।
— याजुष् ज्यो॰; 38

5 यदुत्तरस्यायनतो गतं स्याच्छेषं तथा दक्षिणतोऽयनस्य।
तदेकषष्ट्या द्विगुणं विभक्तं सद्वादशं स्यात् दिवसप्रमाणम्।।
— वही; 40

6 किं प्रमाणं मुहूर्तानां रात्रौ वा यदि वा दिवा।
चन्द्रादित्य गतं सर्वं, तन्मे प्रब्रूहि पृच्छतः।।
— आथर्वण ज्यो॰; 12

बताते हुए कहा गया है कि तीस त्रुटियों का एक मुहूर्त्त होता है।[1] ये पन्द्रह मुहूर्त्त दिन तथा रात में अलग-अलग अर्थात् संख्या में कुल तीस होते हैं।[2] दिन में मुहूर्त्त जानने की एक विधि का उल्लेख इस ग्रन्थ में किया गया है, इसके अनुसार बारह अंगुल प्रमाणवाली लकड़ी के डण्डे की छाया से मुहूर्त्तों को जाना जा सकता है।[3] इस विधि को निम्नलिखित आरेख द्वारा समझा जा सकता है।



---

1 त्रुटीनां तु भवेत् त्रिंशन्मुहूर्तस्य प्रयोजनम्।
द्वादशांगुलमुक्षेपं तस्य छाया प्रमाणतः।।
— आथर्वण ज्यो.; 5

2 ऐते मुहूर्ता व्याख्याता दशद्वौच तथा त्रयः।
अहन्येव तु विज्ञेया रात्रावपि न संशयः।।
— वही; 11

3 वही; 5

इस दण्ड के छाया के प्रमाण के आधार पर ही रौद्र[1], श्वेत[2], मैत्र[3], सुसारभट[4], सावित्र[5], वैराज[6], विश्वासु[7], अभिजित्[8], रोहिण[9], बल[10], विजय [11], नैर्ऋत[12], वारूण[13], सौम्य [14] तथा भग[15] ये मुहूर्त्त कहे गए हैं। स्पष्ट है कि पूर्वाह्नकाल में सूर्य की छाया पश्चिम दिशा की ओर होती है और अपराह्नकाल में सूर्य की छाया पूर्व दिशा की ओर होती है। यह छाया अधिकतम 96 अंगुल की हो सकती है, यदि यह पूर्व की ओर हो तो भग मुहूर्त्त[16] तथा पश्चिम की ओर हो तो रौद्र मुहूर्त्त[17] होता है। प्रत्येक

---

1 नवति षडंगुलाश्चैव प्रतीचीं तां प्रकाशयेत्।
पुरस्तात् सन्धिवेलायां मुहूर्त्तो रौद्र उच्यते।।
— आथर्वण ज्यो०; 6

2 श्वेतः षष्टिः समाख्यातो मैत्रोवै द्वादशांगुलः।
षट् सुसारभटोज्ञेयः सावित्रः पञ्चसुस्मृतः।।
— वही; 7

3 वही

4 वही

5 वही

6 चतुर्षु चैव वैराजस्त्रिषु विश्वावसुस्तथा।
मध्याह्ने चाभिजिन्नाम यस्मिन् छाया प्रतिष्ठति।।
— वही; 8

7 वही

8 वही

9 प्राचीं वैगामिनीं छायां रौहिणस्त्रिषु वर्तते।
बलश्चतुर्षु विख्यातो विजयः पञ्चसु स्मृतः।।
— वही; 9

10 वही

11 वही

12 नैर्ऋतस्तु षंडगुल्यो वारूणो द्वादशांगुलः।
सौम्यः षष्ठिः समाख्यातो भगस्तु परमस्तथा।।
— वही; 10

13 वही

14 वही

15 वही

16 वही

17 नवति षडंगुलाश्चैव प्रतीचीं तां प्रकाशयेत्।
पुरस्तात् सन्धिवेलायां मुहूर्तो रौद्र उच्यते।।
— वही; 6

मुहूर्त्त को उसकी छाया के प्रमाण के अनुसार निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है-

	पूर्व दिशा	पश्चिम दिशा	छाया प्रमाण (अंगुल में)
मुहूर्त्तों के नाम	भग	रौद्र	96
	सौम्य	श्वेत	60
	वारूण	मैत्र	12
	नैर्ऋत	सुसारभट	6
	विजय	सावित्र	5
	बल	वैराज	4
	रोहिण	विश्वासु	3
	अभिजित्	अभिजित्	0

छाया के प्रमाण पर आधारित मुहूर्त्तों के नामकरण के साथ-साथ इन मुहूर्त्तों से सम्बन्धित कृत्याकृत्य विचार इस ग्रन्थ की विशेषता है।[1] रौद्र नामक प्रथम मुहूर्त्त में नियमपूर्वक मारणादि भयंकर रौद्र कर्म करना चाहिए।[2] नवीन वस्त्र धारण करना, स्नान करना, ग्राम बसाना, बगीचा लगाना, कृषि कार्य आरम्भ करना तथा और भी सोचे हुए

---

1 अत ऊर्ध्वंतु सर्वेषामानुपूर्त्याच्छुभाशुभम्।
सर्व विस्तरशस्तौश्च तन्मे निगदितः शृणु।।
— आथर्वण ज्यो॰; 12

2 रौद्रे रौद्राणि कुर्वीत रूद्र कार्याणि नित्यशः।
यच्चरौद्रं भवेत् किञ्चित् सर्वमेतेन कारयेत्।।
— वही; 13

कार्य 'श्वेत' मुहूर्त्त में करना श्रेष्ठ कहा गया है।[1] मैत्र संज्ञक मुहूर्त्त में मैत्री विषयक तथा मित्र से सम्बन्धित कार्य तथा सन्धि आदि निश्चित करना चाहिए।[2] अभिचारिक प्रयोग, मित्रों के कल्याण तथा शत्रुओं के विनाश हेतु 'सारभट' मुहूर्त्त प्रशस्त माना गया है।[3] सावित्र मुहूर्त्त देवकार्य, यज्ञ, चूड़ा, जनेऊ तथा विवाह आदि के लिए उत्तम कहा गया है।[4] राजा द्वारा पराक्रम का आरम्भ, कवच धारण, वस्त्र दान एवं शस्त्र कर्म आदि वैराज मुहूर्त्त में कराना चाहिए।[5] विश्वासु नामक मुहूर्त्त सभी प्रकार के अर्थ सिद्धिवाले कार्यो को आरम्भ तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजातियों के स्वाध्याय हेतु प्रशस्त है।[6] अभिजित् मुहूर्त्त अत्यन्त श्रेष्ठ माना गया है और कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सभी वर्णों के लिए यह मुहूर्त्त प्रशंसनीय है।[7] इस मुहूर्त्त में सभी प्रकार की कामनाओं, अर्थो का साधन, अर्थ सञ्चय तथा यात्रा आदि कार्य किया जा सकता है।[8] रौहिण मुहूर्त्त में

---

1 श्वेते वासश्च स्नानं च ग्रामोद्यानं तथा कृषिः।
आरम्भाश्चात्रसिद्धयन्ति ये चार्थश्चिन्तिताः क्वचित्।।
— आथर्वण ज्यो॰; 14

2 मैत्रे मैत्राणि कुर्वीत मित्रकार्याणि नित्यशः।
पञ्चमैत्रं भवेत् किञ्चित् सर्वमेतेन कारयेत्।।
— वही; 15

3 अभिचारं तु शत्रूणां कुर्यात् सारभटेन तु।
आत्मार्थे सुहृदर्थे वा नश्यन्ते तस्य शत्रवः।।
— वही; 16

4 सावित्रेण मुहूर्तेन देव कार्याणि कारयेत्।
यज्ञान्विवाहानु द्वाहांश्चूडोपनयनानि च।।
— वही; 17

5 वैराजेन मुहूर्तेन राजा पौरुषमारभेत्।
वर्माणि पटदानानि शस्त्रकर्मच कारयेत्।।
— वही; 18

6 विश्वावसौतु सर्वार्थानारम्भाश्चात्र कारयेत्।
सर्वेषां च द्विजातीनां स्वाध्यायोऽत्र प्रशस्यते।।
— वही; 19

7 बह्म क्षत्रिय वैश्यानां शूद्राणां चापि नित्यशः।
सर्वेषामेव वर्णानां योगो मध्यं दिनेऽभिजित्।।
— वही; 20

8 अभिजित्सर्वकामाय सर्वकामार्थसाधनः।
अर्थसञ्चय मानानामध्वानं गन्तुमिच्छताम्।।
— वही; 21

लगाए गए वृक्ष, बेल आदि पौधे निरोग फल तथा फूल से युक्त रहते है।[1] बल नामक मुहूर्त्त में राजा द्वारा स्वयं आरूढ होकर सेना को आक्रमण के लिए तैयार करना तथा शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रस्थान करना आदि श्रेष्ठ है।[2] प्रयाण करना शान्ति और स्वस्ति पाठ हेतु विजय मुहूर्त्त प्रशंसित है।[3] शत्रु सेना को नष्ट करना, शत्रु देश का विनाश, आक्रमण, सम्पत्ति ग्रहण तथा शत्रुओं के विनाश हेतु नैर्ऋत मुहूर्त्त अत्यन्त श्रेष्ठ कहा गया है।[4] वारूण मुहूर्त कृषि कर्म अर्थात् गेहूँ, जौ, धान, चना और कमल के बुआई की दृष्टि से प्रशस्त माना गया है।[5] समस्त शुभ कार्य सौम्य मुहूर्त्त में करना चाहिए।[6] भग मुहूर्त्त बलवान पराक्रम वाला माना गया है और इस कालावधि में नारियों विशेषकर कुमारी कन्याओं के विवाह आदि से सम्बन्धित सौभाग्यकारक संस्कार सम्पादित करने चाहिए।[7] दिन के अन्तिम मुहूर्त्त अर्थात् भग में कन्या का वरण श्रेष्ठ होता है। क्योंकि इस मुहूर्त्त में वरण की गई कन्या पति को छोड़कर अन्यत्र कही नहीं जाती है।[8] इन मुहूर्त्तों के

---

[1] रौहिणेवापिता वृक्षा विल्व गुल्म लतास्तथा।
अरोगाः पुष्पवन्तश्च फलवन्तश्च नित्यशः।।
— आथर्वण ज्यो॰; 22

[2] बलेन तु बलं राजा स्वयमारूह्य योजयेत्।
योगः सम्पत्तितं कार्यं शत्रूंश्च विषमेजयेत्।।
— वही; 23

[3] विजयेन प्रयातस्य विजयो नात्र संशयः।
मंगलान्यत्र कुर्वीत शान्ति स्वस्त्ययनानि च।।
— वही; 24

[4] नैर्ऋते घातयेत्सेनां परराष्ट्रं तु मर्दयेत्।
कर्त्तुः सम्पत्करो ह्येषः सर्व शत्रु निवर्हणः।।
— वही; 25

[5] वारूणेन मुहूर्त्तेन वारूणानि प्रवापयेत्।
गोधूमान्यव शालींश्च चणकांश्चोत्पलानिच।।
— वही; 26

[6] सौम्ये सौम्यानि कुर्वीत सौम्य कार्याणि नित्यशः।
यच्च सौम्यं भवेत्किञ्चित् सर्वमेतेन कारयेत्।।
— वही; 27

[7] सर्वासामिह नारीणां कन्यानां च विशेषतः।
सौभाग्यानि प्रयुञ्जीत भगे भीम पराक्रमे।।
— वही; 28

[8] भगेन वरयेत्कन्यां ब्राह्मणीं कुलवर्धिनीं।
भगेन वरिता कन्या नैव सान्यत्र गच्छति।।
— वही; 29

वर्णन के बाद कहा गया है कि शुभ मुहूर्त्त में कार्य करने से लाभ प्राप्ति[1] तथा कार्य की सम्पन्नता होती है।[2]

3.11 वेदाङ्ग ज्योतिष में वर्णित अन्य सूक्ष्म कालमान

वेदाङ्ग ज्योतिष के तीनों ही संस्करणों में मुहूर्त्तों से भी छोटे कालमानों तथा कला[3], नाडिका[4], आढक[5], द्रोण[6], कुडव[7], काष्ठा[8], अक्षर[9], निमेष[10], लव[11], त्रुटि[12], पल[13] का वर्णन किया गया है। इनमें से कुछ का तो आपस में सम्बन्ध है पर कुछ का सम्बन्ध स्पष्ट नहीं हो पाता। याजुष् ज्योतिष के अनुसार एक दिन में कुल 603 कलाएँ होती हैं।[14] दस तथा $^{1}/_{20}$ कलाओं की एक नाड़ी, तथा दो नाडियों का एक

---

1 करणे कार्यनिष्पत्तिः मुहूर्ते लाभमादिशेत।
— आथर्वण ज्यो॰; 82

2 मुहूर्तेन कृतं कर्म सिद्धयते नात्र संशयः।
दूरस्थस्य मुहूर्तस्य क्रिया च त्वरिता यदि।।
— वही; 86

3 कला दश च विंशा स्याद् द्वे मुहूर्तस्य नाडिके।
तत्रिंशद् द्युकलानां तु षट्शती त्र्यधिका भवेत्।।
— ऋक् ज्यो॰; 16

4 वही

5 नाडिके द्वे मुहूर्त्तस्तु पञ्चाशत्पलमाढकम्।
आढकात् कुम्भिका द्रोणः कुडवैर्वर्धते त्रिभिः।।
— वही; 17

6 वही

7 वही

8 ससप्तैकं भयुक् सोमः सूर्यो द्यूनि त्रयोदश।
नवमानि तु पञ्चाह्नः काष्ठा पञ्चाक्षरा भवेत्।।
— याजुष् ज्यो॰; 39

9 वही

10 द्वादशाक्षि निमेषस्तु लवो नामाभिधीयते।
लवस्त्रिंशत् कलाज्ञेया कलात्रिंशत् त्रुटि र्भवेत्।।
— आथर्वण ज्यो॰; 4

11 वही

12 वही

13 ऋक् ज्यो॰; 17

14 कला दश सविंशा स्याद् द्वे मुहूर्त्तस्य नाडिके।
तन्त्रिशत् द्युकलानां तु षट्शती त्र्यधिका भवेत्।।
— याजुष् ज्यो॰; 38

मुहूर्त होता है।[1] यह सम्बन्ध इस प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है–

1 दिन = 603 कलाएँ

10 + $^{1}/_{20}$ कलाएँ = 1 नाडिका

2 नाडिका = 1 मुहूर्त्त

इसी क्रम में कहा गया है कि आढक में पचास पल होते हैं।[2] यही गणना याजुष् ज्योतिष में भी है।[3] यहाँ और स्पष्ट रूप से कहा गया है कि पचास पल पानी के वजन के बराबर समय को आढक कहते हैं।[4] कुपन्ना शास्त्री महोदय का मत है कि एक द्रोण में चार आढक होते हैं।[5] नाडिका के विषय में कहा गया है कि एक द्रोण पानी में से 3 कुडव निकाल देने पर तथा शेष पानी को पुनः घटिका पात्र के छिद्र द्वारा बाहर निकलने में जितना समय लगता है वह नाड़िका है।[6] भास्कराचार्य ने कुडव, प्रस्थ, द्रोण तथा आढक के मध्य सम्बन्ध को स्पष्ट किया है उनके अनुसार[7]–

4 कुडव = 1 प्रस्थ

4 प्रस्थ = 1 आढक

4 आढक = 1 द्रोण

---

1 कला दश सविंशा स्याद् द्वे मुहूर्त्तस्य नाडिके।
तन्त्रिशत् द्युकलानां तु षट्शती त्र्यधिका भवेत्।।
— याजुष् ज्यो॰; 38

2 नाडिके द्वे मुहूर्त्तस्तु पञ्चाशत्पलमाढकम्।
आढकात् कुम्भिका द्रोणः कुडवैर्वर्धते त्रिभिः।।
— ऋक् ज्यो॰; 17

3 पलानि पञ्चाशदपां धृतानि तदाढकं द्रोणमतः प्रमेयम्।
त्रिभिर्विहीनं कुडवैस्तु कार्यं तन्नाडिकायास्तु भवेत् प्रमाणम्।।
— याजुष् ज्यो॰; 24

4 वही

5 Sastri, T.S. Kuppanna – ***Vedanga Jyotisa of Lagadha***, P. 137

6 याजुष् ज्यो॰; 24

7 द्रोणस्तु खार्याः खलु षोडशांशः स्यादाढको द्रोणचतुर्थभागः।
प्रस्थश्चतुर्थांश इहाढकस्य प्रस्थाङ्घ्रिराद्यैः कुडवः प्रदिष्टः।।
— लीलावती-8, पृ. 3

इसी तरह आथर्वण ज्योतिष में भी कुछ सूक्ष्म काल परिणामों पर विचार किया गया है। पलक झपकाने में लगने वाले समय को एक निमेष कहते हैं[1] और बारह बार पलक झपकाने में लगा समय 'लव' कहा जाता है।[2] ऐसे तीस लवों की एक 'कला' होती है।[3] तीस कलाओं की एक त्रुटि होती है।[4] तीस त्रुटियों का एक मुहूर्त्त होता है।[5] एक कला में 124 काष्ठा होती है अर्थात् 124 काष्ठा की एक कला होती है।[6] जबकि पाँच गुरू अक्षरों का उच्चारण काल का परिमाण एक काष्ठा होता है।[7]

स्पष्ट है कि आथर्वण ज्योतिष का यह काल विभाजन ऋक् तथा याजुष् ज्योतिष से किञ्चिद् सूक्ष्म ही सिद्ध होता है। आथर्वण ज्योतिष में वर्णित यह काल परिमाण इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

1 निमेष = पलक झपकने में लगा समय

12 निमेष = 1 लव

30 लव = 1 कला

---

1 आप्टे, वामन शिवराम– संस्कृत हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1993, पृ. 528

2 द्वादशाक्षि निमेषस्तु लवो नामाभिधीयते।
लवास्त्रिंशत् कलाज्ञेया कलात्रिंशत् त्रुटिर्भवेत्।।
— आथर्वण ज्यो॰; 14

3 वही

4 वही

5 त्रुटीनां तु भवेत् त्रिंशन्मुहूर्तस्य प्रयोजनम्।
द्वादशांगुलमुक्षेपं तस्य छाया प्रमाणतः।।
— वही; 8

6 पञ्चत्रिंशं शतं पौष्णमेकोनमयनान्यृषे।
पर्वणां स्याच्चतुष्पादी काष्ठानां चैव ताः कला।।
— याजुष् ज्यो॰; 30

7 पञ्चाह्नः काष्ठा पञ्चाक्षरा स्मृता।
— ऋक् ज्यो॰; 18

30 कला = 1 त्रुटि

30 त्रुटि = 1 मुहूर्त्त

विभिन्न वैदिक संहिताओं तथा वेदाङ्ग ज्योतिष के विभिन्न संस्करणों में उपलब्ध काल की विभिन्न इकाईयाँ तत्कालीन ऋषियों के ज्ञान की अतिश्यता को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। वेदाङ्ग ज्योतिष के इन ग्रन्थों में प्राचीन कालमानों के अतिरिक्त कई अन्य नवीन इकाईयों का भी उल्लेख किया गया है जहाँ वैदिक संहिताओं में काल की ये इकाईयाँ केवल समय की सूचक मात्र थी। वही वेदाङ्ग ज्योतिष के ग्रन्थों में ये कालमान समय के सूचक होने के साथ-साथ अपने शुभाशुभत्व सम्बन्धी गुणों को भी प्राप्त कर चुके थे। कहा जा सकता है कि वेदाङ्ग ज्योतिष के विभिन्न संस्करण ही फलित ज्योतिष के विकास में महत्त्वपूर्ण कारक सिद्ध हुये है।

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

वेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्र सम्बन्धी अवधारणा

वेदाङ्ग ज्योतिष के प्रतिपाद्य रूप में मुहूर्त्त, दिन, मास, ऋतु, वर्ष, चन्द्रादि का उदय, सावन, दिनपर्व आदि विषयों को सम्मिलित किया गया है।[1] ये समस्त कालावयव अपनी विशेषताओं के कारण काल निर्धारण की प्रक्रिया में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते है। शुभाशुभ कार्यों के आरम्भ करने के लिए ज्योतिष वेदाङ्ग के ग्रन्थों में करण, तिथि, नक्षत्र और मुहूर्त्त पर विचार करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है।[2] वैदिक ऋषियों का यह मत है कि जो व्यक्ति अपनी उन्नति चाहते है वे नक्षत्रों का शुभाशुभत्व जानकर ही कार्य आरम्भ करे।[3] यह सर्वविदित है कि ज्योतिष शास्त्र का मूल आधार पञ्चाङ्ग अर्थात् तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण ही है परन्तु वैदिक ऋषियों ने एक स्वर से नक्षत्र की श्रेष्ठता को स्वीकार किया है और इसे धर्म, अर्थ और काम को प्रदान करने वाला कहा गया है।[4] नक्षत्रों के इस स्वरूप का ज्ञाता इह

---

[1] इत्येतन्मासवर्षाणां मुहूर्त्तोदयपर्वणाम्।
दिनर्त्त्वयनमासानां व्याख्यानं लगधोऽब्रवीत।।
— याजुष् ज्यो॰; 43

[2] करणे कार्यनिष्पत्तिः मुहूर्त्ते लाभमादिशेत्।
चतुर्भिः कारयेत् कर्म सिद्धि हेतोर्विचक्षणः।।
— आथर्वण ज्यो॰; 82

[3] पृथक् पुरुषविज्ञेयं नक्षत्राणां शुभाशुभम्।
आत्म सम्पत् करं ज्ञेयमात्मानमृद्धिमिच्छताम्।।
— वही; 102

[4] एवं नक्षत्रयोगेषु त्रिषु कर्म समारभेत।
धर्मार्थ कर्मणामर्थे स्वकर्म फलमश्नुंते।।
— वही; 158

लोक तथा परलोक दोनों का ही सुख भोगने में सक्षम कहा गया है।[1]

वैदिक ऋषियों तथा वेदाङ्ग ज्योतिष में उपलब्ध ये तथ्य स्पष्ट करते है कि पञ्चाङ्ग के अन्य अवयवों से नक्षत्र श्रेष्ठ है। अतः नक्षत्रों की विस्तृत विवेचना अपरिहार्य सिद्ध होती है।

आकाशमण्डल में स्थित छोटे-छोटे प्रकाशपुञ्ज तारे कहे जाते है। इन तारों के परिचय के निमित्त सम्पूर्ण आकाशमण्डल को 27 भागों में विभाजित किया गया है। इन अलग-अलग भागों में स्थित कुछ प्रमुख तारे आपस में मिलकर घोड़े, शकट, हाथ आदि का निर्माण करते है। क्रान्तिवृत का 27 भागों में विभक्त यही स्वरूप नक्षत्र कहा जाता है। ज्योतिष शास्त्र के समस्त विचार तथा सिद्धान्त इन्हीं नक्षत्रों के यथार्थ तथा सम्यक् ज्ञान पर आश्रित है। तात्पर्य यह है कि नक्षत्रों के परिचय के बिना इस शास्त्र को समझना अत्यन्त दुष्कर कार्य है।

4.1 नक्षत्र शब्द की परिभाषा तथा व्युत्पत्ति

'नक्षत्र' शब्द ज्योतिष शास्त्र में वर्णित पञ्चाङ्ग का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अवयव है। 'नक्षत्र' शब्द √नक्ष् + अत्रन् से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है- तारा, तारक पुञ्ज, तारावली आदि।[2] 'नक्षत्र' शब्द को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि तारों के बीच पश्चिम से पूर्व की ओर खिसकता हुआ जिस मार्ग से सूर्य साल में चक्कर लगाता हुआ दीख पड़ता है, उसको क्रान्तिवृत्त कहते है।[3] इसी कान्तिवृत्त के आस-पास ही चन्द्रमा भी अपना चक्कर लगाता है, जो मध्यम मान से 29 दिन, 19

---

[1] सोमसूर्यस्तृचरितं लोकं लोके च सन्ततिम्।
सोमसूर्यस्तृचरितं विद्वान वेद विदश्नुते।।
— ऋक् ज्यो॰; 30

[2] जैन, उदयचन्द्र- बृहद् संस्कृत हिन्दी शब्दकोष, न्यू भारती बुक कॉर्पोरेशन, दिल्ली, भाग-2, प्रथम संस्करण-2006, पृ. 108

[3] शर्मा हरिदत्त- ज्योतिष विश्वकोश, सुबोध पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2000, पृ. 290

घड़ी, 18 पल, और 12 विपल में पूरा होता है।[1] इस हिस्से के 27वें भाग को नक्षत्र कहते है।[2] यह नक्षत्र तारों के समूह ही है तथा तारों के विषय में 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' में कहा गया है कि सर्वत्र जल रहने पर सृष्टि के आदि में जो तर गए, पार हो गए वे ही तारे है।[3] तारों, तारक पुञ्च तथा चन्द्रपथ में स्थित तारावली को भी नक्षत्र कहा गया है।[4] नक्षत्र के लिए इन परिभाषाओं के अतिरिक्त अन्य कई परिभाषा भी प्राप्त होती है। प्राचीन काल में सभी सितारों के लिए 'नक्षत्र' शब्द का प्रयोग होता था किन्तु धीरे-धीरे यह उन सितारों के लिए प्रयुक्त होने लगा जो चन्द्रमा के मार्ग में पड़ते है।[5]

महर्षियों ने आकाश-मण्डल के तारों को पूर्व-पश्चिम गति से सत्ताईस भागों में विभक्त किया है, तथा प्रति भाग का नाम 'नक्षत्र' रखा है। इन सत्ताईस नक्षत्रों की एक माला पृथ्वी के चारों ओर पूर्वापर पड़ी हुई है।[6] कई तारों के समुदाय को नक्षत्र कहते है तथा इन तारों को एक-दूसरे से युक्तिपूर्वक रेखा द्वारा मिला देने से अश्व, शिर, गाड़ी तथा सर्पादि का चित्र बन जाता है।[7] अर्थात् इस भूमण्डल के चारों ओर जो तारागण है, जिन्हें महर्षियों ने सत्ताईस नक्षत्रों के नामों से पुकारा है, उनके द्वारा आकाशमण्डल में ग्रहों की स्थिति का ठीक-ठीक बोध होता है।[8]

---

1 शर्मा हरिदत्त- ज्योतिष विश्वकोश, सुबोध पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2000, पृ. 290

2 वही

3 सलिलं वा इदमन्तरासीतं। यदतरन। तत्तारकाणां तारकत्वम्।

— तै॰ब्रा॰; 1-5-2-5

4 आप्टे, वामन शिवराम- संस्कृत-हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसीदास, पब्लिशर्स प्रा॰लि॰, दिल्ली, 1993, पृ. 505

5 दशोरा नंदलाल, ब्रह्माण्ड और ज्योतिष रहस्य, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, 1994, पृ. 117

6 सिंह, देवकीनन्दन- ज्योतिष-रत्नाकर, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2005, पृ. 13

7 वही

8 वही

जिनका क्षरण नहीं होता वे ही नक्षत्र है। ये आकाश मण्डल में सदैव एक प्रकार से ही स्थित रहते है। ये अश्विन्यादि नक्षत्र संख्या में कुल 27 है। भमण्डल में 27 नक्षत्र 360° अंश में फैले हुए है।[1]

तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी कहा गया है कि 'तारों के झुंड़ों से आकाश में किसी न किसी लौकिक पदार्थ के स्वरूप का आभास होता है। वे तारापुञ्ज ही सम्मिलित रूपों में नक्षत्र कहलाते है और उनका नामकरण उन्हीं लौकिक पदार्थों के आधार पर किया गया है।'[2]

ऋग्वेद के अनुसार वे लोक नक्षत्र है, जिनका कभी क्षय नहीं होता है।[3] इसी प्रकार यजुर्वेद नक्षत्रों को चन्द्रमा की अप्सराओं के रूप में प्रतिष्ठित करता है।[4]

निरुक्तकार महर्षि यास्क ने भी नक्षत्र शब्द का निर्वचन करते हुए लिखा है कि **'न क्षते गति कर्मणः'।** अर्थात् जिसकी गति का क्षत नहीं होता, अनन्त आकाश में जो असंख्य तारे है उनमें कुछ तारों के समूह से गाड़ी, छकड़ा, हाथ, बैल, सर्प, घोड़ा आदि जो आकृतियाँ बनती है वे ही प्रकाशपुञ्ज नक्षत्र कहलाते है।[5]

---

[1] न क्षरतीति नक्षत्रम्। तच्चाकाशे सदैवेकरूपतया तिष्ठन्तो विभान्ति। तानि सप्तविंशति संख्यकानि अश्विन्यादीनि भवन्ति। भमण्डले २७ नक्षत्राणि ३६०° अंशेषु (२१६०० कलासुवा) व्यापृतानि सन्ति।

— शर्मा, विनोद कुमार- ज्योतिर्विज्ञानमृतम्, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2004, पृ. 68

[2] यानि वा इमानि पृथिव्याश्चित्राणि। तानि नक्षत्राणि।

— तै॰ब्रा॰; 1-5-2

[3] ता हि क्षयं धारयेथे अनु घूनं दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः।
दृकहो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान् द्यां घासिनायो।।

— ऋ॰; 6-67-6

[4] पृथिवी च मऽइन्द्रश्व मेऽन्तरिक्षं च मऽइन्द्रश्च मे द्यौश्च
मऽइन्द्रश्च में समाश्च मऽइन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च मऽइन्द्रश्च
मे दिशश्च मऽइन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।

— यजु॰; 18-18

[5] ऋक्षाः स्तृभिरिति, नक्षत्राणाम्। नक्षत्राणि नक्षतेर्गति-कर्मणः।
नेमानि क्षत्राणि इति च ब्राह्मणम्। ऋक्षा उदीर्णानीव ख्यायन्ते। स्तृभिस्तीर्णानीव ख्यायन्ते।

— निरू॰; 3-4

यदि नक्षत्र शब्द का विग्रह 'नक्ष+त्र' किया जाए तो 'नक्ष' शब्द का अर्थ 'Approch' तथा 'त्र' का अर्थ 'Guard' है इस प्रकार नक्षत्र वे 28 देवता है जो कि हमें राक्षसी शक्तियों से संरक्षण देते है तथा हमारा सृष्टिपरक निर्देशन करते है।[1]

चमकने वाले तारामण्डलों का नाम नक्षत्र है अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान पर पृथ्वी के अयन (गमन) के कारण खिसकते प्रतीत होने वाले तारामण्डलों का नाम नक्षत्र है।[2]

आंग्ल भाषा में 'नक्षत्र' के लिए Constellation नामक शब्द का प्रयोग होता है। इस शब्द का अर्थ बताते हुए कहा गया है- आकाश में तारों का एक समूह जो किसी आकृत्ति का निर्माण करता है तथा जिसका अपना एक स्वतंत्र नाम होता है।[3]

चीनी ज्योतिष में नक्षत्र को Sieou (सिओ) तथा अरबी नजूमी नक्षत्रों को 'मनाजिल' कहते है।[4]

4.2 नक्षत्रों का विकास क्रम

वर्त्तमान परिदृश्य में भारतीय ज्योतिषशास्त्र अथवा खगोल शास्त्र में नक्षत्रों का जो विस्तृत स्वरूप प्राप्त होता है वह एक विकास-क्रम का ही परिणाम है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही आकाशमण्डल में ये उपस्थित थे परन्तु शनैः-शनैः ही इस नक्षत्र मण्डल के विषय में मानव सभ्यता को ज्ञान प्राप्त हुआ। वर्त्तमान समय में नक्षत्र से तात्पर्य

---

1 Nakshatra is a Sanskrit word, meaning of which as per one school of thought is 'NAKSHA' means to approach and 'TRA' means to guard. Thus is nutshell, each Nakshatra is the abode of house of 28 Gods delegated with the guiding the cosmic and solar evolutions,

– Subhakaran, K.T. – ***Nakshatra***, Sagar Publications, Delhi, P. 1

2 नक्षति शोभां गच्छति स्थानात् स्थानान्तरं, गच्छति वा। नक्ष गतौ अभिनक्षियणिवधिपतिभ्योऽत्रन।

– देव राजा राधाकान्त- शब्दकल्पद्रुम, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 1987, पृ. 814

3 शुक्ल दुर्गाप्रसाद-ज्योतिष कौमुदी, मेघ प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृ. 13

4 "A Group of stars that forms an imaginary pattern representing an object animal or person as seen from the earth."

– ***Oxford Dictionary***, Oxford University Press, New york, 2003, P. 179

चन्द्रमा के भ्रमण मार्ग में आनेवाले तारा समूहों से ही है।[1] परन्तु प्रारम्भ में वैदिक काल में ऐसा नहीं था, उस समय समस्त तारों के लिए ही नक्षत्र शब्द का प्रयोग होता था।[2] फिर भी ऋग्वेद में कुछ स्थान ऐसे अवश्य है जहाँ यह सङ्केत प्राप्त होते है कि 'नक्षत्र' शब्द चन्द्रमा के भ्रमण मार्ग में आने वाले तारासमूहों के लिए प्रयुक्त हुआ है।[3] इन मन्त्रों में कहा गया है- नक्षत्रों में सोम रखा है।[4] ऋग्वेद में नक्षत्रों के सत्ताईस संख्या में होने का भी उल्लेख है।[5] पर उन समस्त सत्ताईस नक्षत्रों के नाम का निर्देश नहीं प्राप्त होता है। हाँ इतना अवश्य है कि पुष्य (तिष्य)[6], चित्रा[7],

---

[1] शर्मा, हरिदत्त- ज्योतिष विश्वकोष, सुबोध पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2000, पृ. 290

[2] i) अप त्ये तावयो यथा नक्षत्र यन्त्यक्तुभिः। सूराय विश्वचक्षसे।

— ऋ०; 1-50-2

ii) अभि श्यावं न कृशनेमिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो धामपिंशन्।।

— वही; 10-68-11

[3] i) अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः।

— वही; 10-58-2

ii) सोमेनादिव्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः।।

— अथर्व०; 14-1-2

[4] वही

[5] i) आ रोदसी अपृणादोष मध्यं पञ्च देवॉ ऋतुशः सप्तसप्त।
चतुस्त्रिंशता पुरूधा वि चष्टे सरूपेण ज्योतिषा विव्रतेन।।

— ऋ०; 10-55-3

ii) देवप्रियस्य वेगवतोऽश्वस्य चतुस्त्रिंशत पार्श्वास्थीनि (प्रति) छुरिका प्रविशति, (हे विशंसितारः यूयम्) ज्ञानपूर्वकम् (अस्य) निश्छिद्राणि गात्राणि कृन्तत, प्रतिपर्व संश्रात्य विशंसत।

— वही; 1-162-18

[6] i) युष्मादत्तस्य मरूतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो ३ वयस्वतः।
न यो युच्छति तिष्यो३ यथा दिवो३स्मे शरन्त मरूतेः सहस्रिणम्।।

— वही; 5-54-13

ii) त्रिः सप्त सस्रा नघो महीरपो वनस्पतीन्पर्वतॉ अग्निमूतये।
कृशानुमस्तृन्तिष्यं सधस्थ आ रूद्रं रूद्रेषु रूद्रियं हवामहे।।

— वही; 10-64-8

[7] अस्थुरू चित्रा उपसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु।

— वही; 4-51-2

रेवती[1], मघा (अघा)[2] तथा फाल्गुनी (अर्जुनी)[3] नक्षत्रों का उल्लेख अवश्य मिल जाता है। इसी मत का समर्थन 'अथर्ववेद संहिता' में भी किया गया है।[4] ऋग्वेद संहिता में चन्द्रमा के भ्रमण मार्ग में आने वाले तथा इनसे भिन्न तारों के लिए एक ही शब्द का प्रयोग मिलता है परन्तु तैत्तिरीय संहिता[5] में इन दोनों ताराओं में भेद को स्पष्ट करने के क्रम में कहा गया है कि परमात्मा एक अश्व है क्योंकि शीघ्र चलता है उसे अश्व कहते है। उसका यजन अश्वमेध है। आकाश की सारी ज्योतियाँ और सब कालमान उस प्रजापति के अंग है। उषः काल उसका सिर है, सूर्य-नेत्र, चन्द्रमा-कान, वायु-प्राण, दिशाएँ-चरण, दिन और रात-निमेष, पक्ष-पर्व, ऋतु-मास, अन्य अङ्ग, वर्ष-आत्मा, नक्षत्र-रूप तथा तारे अस्थियाँ है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में तो स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'नक्षत्रों द्वारा आकाश मण्डल में भव्य आकृत्तियाँ बनती है।'[6] यही नक्षत्र शब्द की व्युत्पत्ति भी प्राप्त होती है, जिसमें कहा गया है कि- जो क्षत

---

[1] i) स्वस्ति पथ्ये रेवती।

— ऋ०; 5-51-14

ii) उपमास्वबृहती रेवतीरिषोधि स्तोत्रस्य पवमान नोगहि।

— वही; 9-72-9

[2] सूर्यायाः वहतुः प्रागात् सवितायामवासृजत्।
अघासु हन्यन्ते गावोर्जुन्योः पर्युह्यते।।

— वही; 10-58-13

[3] वही

[4] सूर्यायाः वहतुः प्रागात् सवितायमवासृजत्।
मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्यह्यते।।

— अथर्व०; 64-1-13

[5] यो वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरो वेद शीर्षण्वान्मेध्यो भवत्युषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणश्चन्द्रमाः श्रोत्रं दिशः पादा अवान्तरदिशः पर्शवोऽहोरात्रे निमेषोर्धमासाः पर्वाणि मासाः सन्धानान्यृतवोंऽगानि संवत्सर आत्मा रश्मयः केशा नक्षत्राणि रूप तारका अस्थीनि नभो मा सानि...।।

— तै०सं०; 7-5-25

[6] यो वै नक्षत्रियं प्रजापतिं वेद। उभयोरेनं लोकयोर्विदुः।
हस्त एवास्य हस्तः, चित्रा शिरो, निष्टया हृदयं, उरु विशाखे, प्रतिष्ठानुराधाः।

— तै०ब्रा०; 1-9-3

नहीं है वे ही नक्षत्र है।[1] ब्राह्मण ग्रन्थों में इन प्रमुख नक्षत्रों के अतिरिक्त सप्तर्षियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[2] तैत्तिरीय ब्राह्मण इन नक्षत्रों के देवताओं का स्पष्ट रूप से निरूपण करता है।[3] इसके अतिरिक्त तैत्तिरीय संहिता[4], काठक संहिता[5], वाजसनेयी

---

[1] प्र बाहुर्वा अग्रे क्षत्राण्यातेपु:। तेषामिन्द्र: क्षत्राण्यादत्त।
न वा इमानि क्षत्राण्यभूवन्निति। तन्ननक्षत्राणां नक्षत्रत्वम्।।
— तै॰ब्रा॰; 2-7-18-3

[2] i) उर्ध्व सप्तऋषीनुपतिपतिष्ठस्व।
— वही; 1-5-5
ii) सप्तर्षीनु ह स्म वै पुरर्क्षा इत्याचक्षते।
— शत॰ब्रा॰; 2-1-2-4

[3] अग्ने कृत्तिका। प्रजापते रोहिणी। सोमस्येन्वका। रूदस्य बाहू। आदित्यै पुनर्वसू। बृहस्पतेस्तिष्य:। सर्पाणामाश्रेषा:। पितृणां मघा:। अर्यम्ण: पूर्वेफाल्गुनी। भगस्योत्तरे। देवस्य सवितुर्हस्त:। इन्द्रस्य चित्रा। वार्योर्निष्ट्या। इन्द्राग्नियोर्विशाखे। मित्रस्यानुराधा। इन्द्रस्य रोहिणी। निर्ऋत्यै मुलबर्हणी। अपां पूर्वा अषाढा:। र्विश्वेषां देवानामुत्तरं। विष्णो: श्रोणा। वसूनां श्रविष्ठां। इन्द्रस्य शतभिषक्। अजस्यैकपाद: पूर्वे प्रोष्ठपदा:। अहेर्बुध्नियस्योत्तरे। पूष्णो रेवती। अश्वनोरश्वयुजौ। यमस्याभरणी।
— तै॰ब्रा॰; 1-5-1

[4] कृत्तिका नक्षत्रमग्निर्देवताग्नेरूचस्थ प्रजापतेर्धातु: सोमस्यर्चे त्वा रूचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा रोहिणी नक्षत्रं प्रजापतिर्देवता मृगशीर्षं नक्षत्र् सोमो देवतार्द्रानक्षत्र् रूद्रो देवता पुनर्वसूनक्षत्रमदितिर्देवता तिष्यो नक्षत्रं बृहस्पतिर्देवताश्रेषा नक्षत्रं सर्पा देवता मघा नक्षत्रं पितरो देवता फल्गुनी नक्षत्रमर्यमा देवता फल्गुनी नक्षत्रं भगो देवता हस्तो नक्षत्रं सवितादेवता चित्रानक्षत्रमिन्द्रो देवता स्वाती नक्षत्रं वायुर्देवता विशाखे नक्षत्रमिन्द्राग्नीदेवतानुराधा नक्षत्रं मित्रो देवता रोहिणी नक्षत्रमिन्द्रो देवता विचृतौ नक्षत्रं पितरो देवताषाढानक्षत्रमापो देवताषाढा नक्षत्रं विश्वेदेवा देवता श्रोणा नक्षत्रं विष्णुर्देवता श्रविष्ठा नक्षत्रं वसवो देवता शतभिषङ्नक्षत्रमिन्द्रो देवता प्रोष्ठपदानक्षत्रमजएकपाद्देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमहिर्बुध्नियो देवता रेवती नक्षत्रं पूषा देवताऽश्वयुजौ नक्षत्रमश्विनौ देवतापभरणीर्नक्षत्रं यमो देवता पूर्णापश्चाद्यत्ते देवा अदधु:।
— कृ॰यजु॰तै॰सं॰; 4-4-10

[5] अग्निर्देवता कृत्तिका नक्षत्रं प्रजापतिर्देवता रोहिणी नक्षत्रं मरूतो देवतेन्वका नक्षत्रं रूद्रो देवता बाहुर्नक्षत्रमदितिर्देवता पुनर्वसुर्नक्षत्रं बृहस्पतिर्देवता तिष्यो नक्षत्रं सर्पा देवताश्लेषा नक्षत्रं पितरो देवता मघा नक्षत्रं भगो देवता फल्गुनीर्नक्षत्रमर्यका देवत्तोत्तरा: फल्गुनीर्नक्षत्रॅ सविता देवता हस्तौ नक्षत्रं ष्वष्टा देवता चित्रा नक्षत्रं वायुर्देवता निष्टया नक्षत्रमिन्द्राग्नी देवता विशाखं नक्षत्रं मित्रो देवतानूराधा नक्षत्रमिन्द्रो देवता ज्येष्ठा नक्षत्रं निर्ऋतिर्देवता मूलं नक्षत्रमापो देवताषाढा नक्षत्रं विश्वे देवा देवत्तोत्तरा अषाढा नक्षत्रं विष्णुर्देवता श्वत्थो नक्षत्रं वसवो देवता श्रविष्ठा नक्षत्रं वरूणो देवता शतभिषङ् नक्षत्रमज एकपाद्देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमहिर्बुध्न्यो देवतोत्तरे प्रोष्ठपदा नक्षत्रं पूषा देवता रेवती नक्षत्रमश्विनौ देवता श्वयुजौ नक्षत्रं यमो देतापभरणीर्नक्षत्रमग्रे रूचस्थ प्रजापतेरसोमस्य धातुर्भूयासं प्रजनिषीय तेन ब्रह्मणा तेनच्छन्दसा तया देवतायाङ्गिरस्वद् ध्रुवास्सीदत्।
— काठ॰सं॰; 39-13-90

संहिता[1], शतपथ ब्राह्मण[2], शाङ्खायन आरण्यक[3] तथा शाखायन श्रौतसूत्र[4] में भी सत्ताईस नक्षत्रों का वर्णन मिलता है। जबकि मैत्रायणी संहिता[5] में अभिजित् नक्षत्र नामक अट्ठाईसवें नक्षत्र का भी उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण में तो विभिन्न नक्षत्रों में स्थित ताराओं की संख्या का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि अन्य नक्षत्रों में एक, दो, तीन या चार प्रमुख चमकीले तारे है लेकिन कृत्तिका नक्षत्र में इनसे भी अधिक देदीप्यमान तारे है।[6] ब्राह्मण ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मासों के नाम नक्षत्रों के आधार पर ही रखे गये है।[7] इसी तथ्य का समर्थन पाणिनीकृत अष्टाध्यायी

---

1 वा॰सं॰; 9-7

2 शत॰ब्रा॰; 10-5-4-5

3 शांखा॰आ॰; 2-16

4 शांखा॰श्रौ॰; 14-78

5 कृत्तिका नक्षत्र, मगिर्देवता, रोहिणी नक्षत्रं प्रजापतिर्देवते न्वगा नक्षत्रं, मरूतो देवता, बाहुर्नक्षत्र रूद्रो देवता, पुनर्वसुर्नक्षत्रं, मदितिर्देवता, तिष्यो नक्षत्रं, बृहस्पतिर्देवता, ऽऽश्लेषा नक्षत्र, सर्पा देवता, मघा नक्षत्रं, पितरो देवता फल्गुनीर्नक्षत्रं, भगो देवता, फल्गुनीर्नक्षत्र, मर्यमा देवता, हस्तो नक्षत्र, सविता देवता, चित्रा नक्षत्रं, त्वष्टा देवता, निष्टयं नक्षत्र, वायुर्देवता, विशाखं नक्षत्र, मिन्द्राग्नी देवता, ऽनुराधा नक्षत्रं, मित्रो देवता, ज्येष्ठा नक्षत्र, वरूणो देवता, मूलं नक्षत्रं, निर्ऋति देवता, ऽभिजिन्नक्षत्रं, ब्रह्मा देवता, श्रोणा नक्षत्र, विष्णुर्देवता, श्रविष्ठा नक्षत्र, वसवो देवता, शतभिषं नक्षत्र, मिन्द्रो देवता, पोष्ठपदा नक्षत्र, महिर्बुध्न्यो देवता, प्रोष्ठपदा नक्षत्र, मज एकपाद्देवता, रेवती नक्षत्रं पूषा देवता- ऽ श्वयुजा नक्षत्र, अश्विनौ देवता, भरणीर्नक्षत्र यमो देवता।

— मैत्रा॰सं॰; 2-13-20

6 एकं द्वे त्रीणि चत्वारि इति वा अन्यानि नक्षत्राणि।
अथैता एव भूयिष्ठा यत् कृत्तिका:।।

— शत॰ब्रा॰; 2-1-2-2

7 i) 'मुखं वा एतत् संवत्सरस्य यत् फल्गुन:'

— पञ्च॰ब्रा॰; 5-9-9

ii) तैषस्यामावास्याया एकाह उपरिष्टाद्दीक्षेरन् माघस्य वेत्याहु:।

— कौ॰ब्रा॰; 19-2-3

iii) योऽसौ वैशाखस्यामावास्या तस्यामादधीत...
... आत्मन्येवैतत् प्रजायां पशुषु प्रतितिष्ठति

— शत॰ब्रा॰; 11-1-1-7

में भी किया गया है।[1] तैत्तिरीय ब्राह्मण ने तो नक्षत्रों का सम्बन्ध ग्रहों से भी स्थापित करने का प्रयास किया है। इस सन्दर्भ में 'तिष्य' नक्षत्र को बृहस्पति ग्रह का प्रतिनिधि कहा गया है।[2] अथर्ववेद में तो कुल 28 नक्षत्रों के नाम उपलब्ध होते है।[3] आचार्य यास्क ने निरूक्त में भी नक्षत्रवाचक शब्दों के निर्वचन का सुन्दर प्रयास किया है।[4] स्पष्ट है कि वैदिक काल में नक्षत्र विद्या ने काफी सीमा तक समृद्धि प्राप्त कर ली थी। यही कारण है कि इन ग्रन्थों में नक्षत्रदर्श, गणक आदि शब्दों का भी प्रयोग होने लगा था।[5] वेदाङ्ग काल में भी नक्षत्र संबंधी ज्ञान की उपस्थिति का आभास प्राप्त होता है। महर्षि लगध प्रणीत वेदाङ्ग ज्योतिष में भी अत्यन्त सांकेतिक तथा वैज्ञानिक विधि

---

[1] i) नक्षत्रेण युक्त: काल:।

— अष्टा०; 4-2-3

ii) सास्मिन् पौर्णमासीति।

— वही; 4-2-21

[2] बृहस्पतेस्तिष्य:।

— तै०ब्रा०; 1-5 (1-2)

[3] चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि।
अष्टविशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भि सपर्यामि नाकम्।।
सुहवं मे कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिर: शमार्द्रा।
पुनर्वसू सुनृता चारू पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे।।
पुण्यं पूर्वाफल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति: सुखो मे अस्तु।
राधो विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्टं मूलम्।
अत्र पूर्वा रासन्तां मे अषाढा ऊर्जं ये द्युत्तर आ वहन्तु।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवण: श्रविष्ठा: कुर्वतां सुपुष्टिम्।।
आ मे महच्छतभिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु।।

— अथर्व०स०; 19-7-(1-5)

[4] मघमिति धननामधेयं महतेदीनकर्मण:।

— निरू०; 1-7

[5] i) प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शनम्।

— वा०सं०; 30-10, तै०ब्रा० 3-4-1

ii) यादसे गणकम्।

— वही; 30-20

द्वारा युक्तिपूर्वक नक्षत्रों के नामों का उल्लेख किया गया है।[1] इन नक्षत्रों के देवताओं का क्रमिक वर्णन भी आर्च[2] तथा याजुष् ज्योतिष[3] वेदाङ्ग की विशेषता है। आथर्वण ज्योतिष तो नक्षत्रों की महत्ता को विशेष रूप से स्वीकृत करता है।[4] इस वेदाङ्ग में नक्षत्रों का शुभाशुभत्व[5], उनका उत्तम-मध्यम तथा अधम वर्गों में वर्गीकरण[6], तथा जन्म, संपत्कर, विपत्कर, क्षेम्य, प्रत्वर, साधक, नैधन, मित्र और परमैत्र आदि संज्ञाएं[7]

---

[1] जौ द्रा गः रवे श्वे ही रो षाश्चिन्मूषक्ण्यः सूमाधाणः।
रे मृ घाः स्वा पो जः कृष्यो ह ज्ये ष्ठा इत्यृक्षा लिङ्गैः।।
— याजुष् ज्यो॰; 18

[2] अग्निः प्रजापतिः सोमो रूद्रोदितिबृहस्पतिः।
सर्पाश्च पितरश्चैव भगश्चैवार्यमपि च।।
सविता त्वष्टाऽथ वायुश्चेन्द्राग्नो मित्र एव च।
इन्द्रो निर्ऋतिरापो वै विश्वेदेवास्तथैव च।।
विष्णुर्वसवो वरूणोऽजएकपात् तथैव च।
अहिर्बुध्न्यस्तथा पूषाश्विनौ यम एव च।।
— ऋक् ज्यो॰; 25-27

[3] अग्निः प्रजापतिः सोमो रूद्रोऽदितिर्वृहस्पतिः।
सर्पाश्च पितरश्चैव भगश्चैवार्यमापि च।।
सविता त्वष्टाऽथ वायुश्चेन्द्राग्नी मित्र एव च।
इन्द्रो निर्ऋतिरापो वै विश्वेदेवास्तथैव च।।
विष्णुर्वसवो वरूणोऽज एकपात् तथैव च।
अहिर्बुध्न्यस्तथा पूषा अश्विनौ यम एव च।।
— याजुष् ज्यो॰; 32-34

[4] विदेश जाते विकले चपत्सौ सर्वाणि कार्याणि करोति पत्नी।
तिथिरेक गुणा प्रोक्ता नक्षत्रं च चतुर्गुणम्।।
— आथर्वण ज्यो॰; 90

[5] पृथक् पुरुषविज्ञेयं नक्षत्राणां शुभाशुभम्।
आत्म सम्पत् करं ज्ञेयमात्मानमृद्धिमिच्छताम्।।
— वही; 102

[6] नवानां त्रिक् वर्णानामाधाने जन्मकर्मणि।
अधमोत्तमवर्गेषु संवदन्तीह भागशः।।
— वही; 103

[7] जन्मसंपदविपत्क्षेम्यः प्रत्वरः साधकस्तथा।
नैधनो मित्र वर्गश्च परमो मैत्रएव तु।।
— वही; 104

नक्षत्र विद्या के क्षेत्र में विस्तार की सूचना देती है। आश्वलायन श्रौतसूत्र[1], आश्वलायन ग्रह्यसूत्र[2], पारस्कर गृह्यसूत्र[3] आदि में नक्षत्र विषयक प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। महाभारत अनुशासन पर्व में भी नक्षत्रों का नामाल्लेख हुआ है।[4] हस्त नक्षत्र के पाँच नक्षत्रों का भी वर्णन है।[5]

4.2.1 अश्विनी

अश्विनी भचक्र का प्रथम नक्षत्र है जो 0°–00' से प्रारम्भ होकर 13°–20' तक जाता है ग्रीक दर्शन में इसे Castor तथा Pullux कहते है। रोम में इनकी आकृत्ति घोड़ों के सिर के रूप में मानी जाने के कारण इन्हें Gemini कहते है। फारसी में इसे Pade-var कहकर बचाने वाला घोड़ा माना है। चीन में इसे Leu या Low कहा जाता

---

[1] i) उत्तरयोः प्रोष्ठपदयोः।

— आश्व॰श्रौ॰; 2-1-1

ii) श्रावण्यां पौर्णमास्यां श्रवणकर्म।

— वही; 2-1-1

[2] i) श्रावण्यां पौर्णमास्यां श्रवणकर्म।

— आश्व॰ग्रह्य॰; 2-1-1

ii) उत्तरैः प्रोष्ठपदैः।

— वही; 2-10-3

iii) ध्रुवमरून्धतीं सप्तर्षीनिति दृष्ट्वा वाचं विसृजेत्।

— वही; 1-7-22

[3] i) मार्गशीर्ष्यापौर्णमास्यामाग्रहायणीकर्म।

— पार॰ग्रह्य॰; 3-2

ii) मूलांशे प्रथमे पितुर्नेष्टो द्वितीये मातुस्तृतीये धनधान्यस्य चतुर्थे कुलशोकावहः स्वयं पुण्यभागी स्यात्।

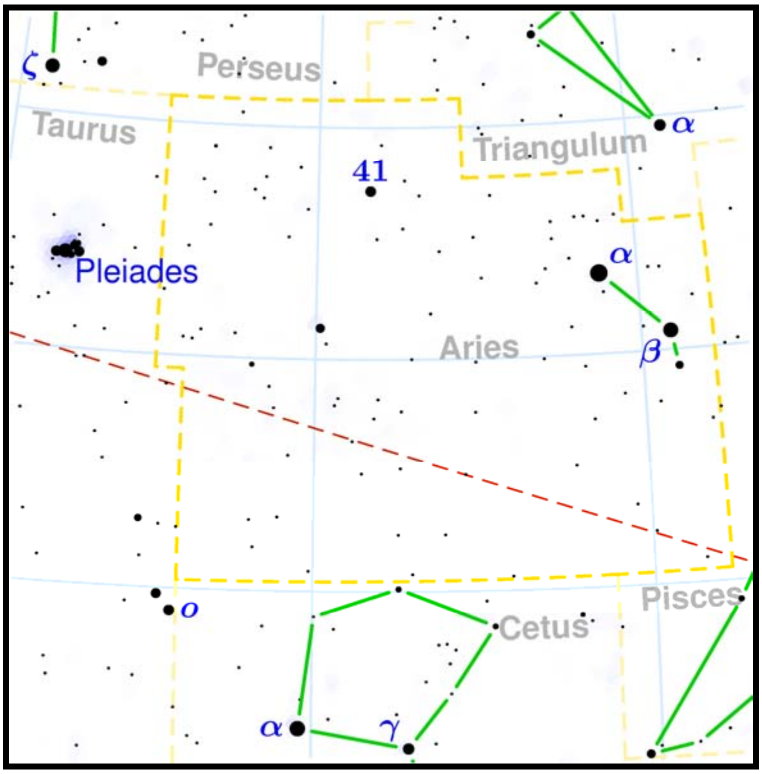
— वही; 1-21

[4] महा॰; अनुशासन पर्व, 64-69 अध्याय पर्यन्त

[5] पञ्चभि र्भ्रातृभिः पार्थैद्रोणः परिवृत्तौ बभौ।
पञ्चतारेण संयुक्तः सावित्रेणेव चन्द्रमाः।।

— महा॰; आदिपर्व, 135-30

है। लैटिन भाषा में इसे Arieter नक्षत्र, मलयालम में अस्वथी तथा तमिल में अश्विनी कहते है।[1]



अश्विनी[2]

अश्विनी नक्षत्र में तीन तारे प्रमुख है। यद्यपि सूक्ष्म दर्शक यन्त्रों द्वारा देखने पर नक्षत्र मण्डल में सैकड़ों तारे दिखते है, लेकिन प्रमुखता के आधार पर सर्वत्र तारा संख्या दी गयी है। उसके तीन तारों से मिलकर घोड़े के मुँह के समान आकृति उभरती है। इसीलिए इसे तुरगमुख सदृश कहा जाता है। इसकी तारा संख्या बहुमत से तीन मानी गयी है।[3]

---

1 ल०ज्यो०– व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 254

2 www.wikipedia.org

3 मिश्र, सुरेशचन्द्र– वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 38

इस नक्षत्र के देवता अश्विनौ है, जिनकी दो जोड़ी भुजायें है और यह सविता या सूर्यदेव का वाहन है। पौराणिक आख्यानुसार इसे देवताओं का चिकित्सक माना गया है।[1]

इस नक्षत्र का प्रतीक अश्व का सिर है। वर्ण वैश्य है। यह तमस् गुण प्रधान, पुरुष योनि है। इसका रक्त वर्ण है और देवलोक को संकेतित करता है। पाराशरदशापद्धति में इसका स्वामी केतु है।[2]

'मुहूर्त्त चिन्तामणि'[3] में अश्विनी नक्षत्र के साथ अन्य नक्षत्रों जैसे हस्त, पुष्प अभिजित एवं गुरूवार को क्षिप्र एवं लघु संज्ञक माना गया है। इस नक्षत्र में पण्य (दुकान बनवाना, दुकान करना, वस्तु बेचना आदि), रति (स्त्री के साथ सम्भोग) ज्ञान (सच्छास्त्रों का पठन-पाठन), भूषणनिर्माण, भूषणधारण, शिल्पकर्म सीखना, उसका व्यवसाय करना, गीत नृत्य आदि 64 कलाओं का सीखना आदि कार्य सम्पन्न होते है। तथा चर संज्ञक नक्षत्र में कहे गये कार्य करने चाहिए।

4.2.2 भरणी

दूसरा नक्षत्र भरणी है जो कि खचक्र में 13°-20' से लेकर 26°-40' तक है। इटली में इसका नाम Mosca, फ्रैन्च में Mouche तथा जर्मन में Fliege है। अरब मंजिल में इसे Al-Butain व चीनी भाषा में Oei या Wei कहते है। जिसका अर्थ मेढ़क का उदर है। मलयालम व तमिल भाषा में इसका नाम भरणी है।[4]

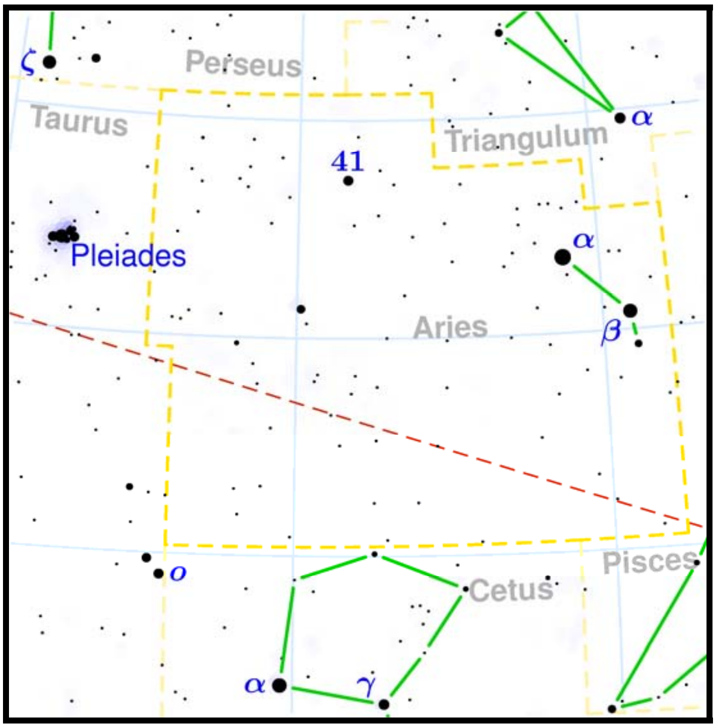
---

1 ल०ज्यो०- व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 255-56

2 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

3 हस्ताश्वि- पुष्याभिजितः क्षिपं लघु गुरूस्तथा।
तस्मिन् पण्यरतिज्ञानं भूषाशिल्पकलादिकम्।।
— मु०चि०; नक्षत्र प्रकरणम्, 6

4 ल०ज्यो०- व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 256



भरणी[1]

भरणी नक्षत्र में तीन तारे है जो स्त्री की योनि को इंगित करती है।[2] भरणी नक्षत्र का देवता 'यम' है। यम को इस मृत्यु लोक से जा चुके प्राणियों का स्वामी माना जाता है। यम के लिए वैदिक साहित्य में न्यायधीश, नियन्ता, संयमी, परमात्मा, वायु तथा सूर्यपुत्र वैवस्वत कहा गया है।[3]

इस नक्षत्र का प्रतीक स्त्री योनि, वर्ण-अवर जाति, गुण रजस, वर्ण रक्त के समान लाल है। इसका स्वामी शुक्र है।[4]

'मुहूर्त्त चिन्तामणि'[5] में भरणी नक्षत्र के साथ अन्य नक्षत्रों जैसे तीनों पूर्वा (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद), मघा ये 5 नक्षत्र और मंगलवार को उग्र और

---

1 www.wikipedia.org

2 मिश्र, सुरेशचन्द्र- वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 38

3 वै॰ज्यो॰- व्या॰ शास्त्री, गिरजाशङ्कर, पृ. 214

4 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

5 पूर्वात्रयं याम्यमघ उग्रं क्रूरं कुजस्तथा।
तस्मिन् घाताग्निशाठयानि विषशस्त्रादि सिद्ध्यति।।
— मु॰चि॰; नक्षत्र प्रकरणम्, 4

कूरसंज्ञक माना गया है। इनमें घातकर्म (किसी को मारना, धोखा देना), अग्निकार्य (पहले दिन भट्ठे में आग लगाना, चूल्हे में आग जलाना), शठता का कार्य (किसी को ठगना, चोरी करना) विष-प्रयोग (किसी को जहर देना, शंखिया चलाना सीखना, शस्त्र खरीदना, शस्त्र बनवाना, बन्दूक-पिस्तौल आदि का लाइसेन्स लेना) आदि कार्य सफल होते है। तथा दारूणसंज्ञक नक्षत्र में कहे कार्य करना चाहिए।

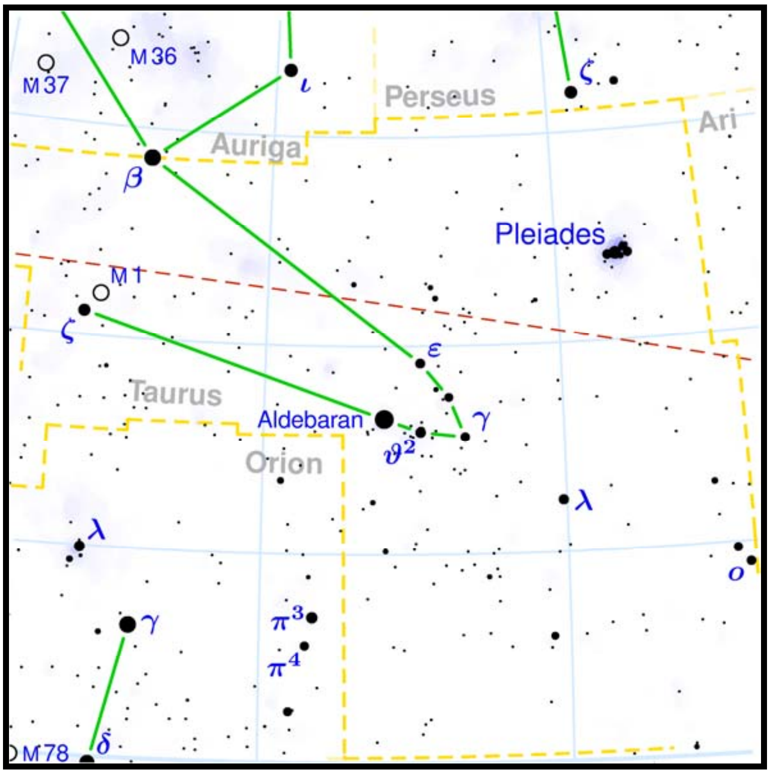
4.2.3 कृत्तिका

कृत्तिका भचक्र का तीसरा नक्षत्र है जो 26°–40' से प्रारम्भ होकर 40°–00' तक जाता है। फारसी में इसे Peren अथवा काव्यात्मक भाषा में Parur कहा जाता है। चीन में इन कृत्तिकाओं की पूजा लड़कियों, कन्याओं तथा युवती स्त्रियों द्वारा की जाती थी जिसे वे Seven Sisters of Industry के रूप में दिखते है। चीनी नक्षत्रों में इनका नाम Mao या Mau अथवा Maou है। बेबीलोन में इसकी संज्ञा Kimtu या Kimmatu तथा सीरिया में Kimā थी, जो कि एक पारिवारिक समूह को घोतित करता है। मलयालम में इसे कार्थिक तथा तमिल में Karthigai कहा जाता है।[1] R.H. Allen[2] के मतानुसार भारत में कार्तिक के महीने में अनेक प्रकाश पञ्जों से युक्त दीपावली पर्व मनाया जाता है। इसलिए इसे उन्होंने Great star festival कहकर, इसका अनुवाद Feast of Lamps से किया है।

---

[1] ल०ज्यो०- व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 255-257

[2] R.H. Allen- ***Star names and their meanings***, P. 393



कृत्तिका[1]

कृत्तिका नक्षत्र 6 तारों का समूह है जो क्षुर, खुरपा या फारस का आकार प्रकट करता है।[2] तैत्तिरीय ब्राह्मण[3] में कृत्तिका नक्षत्र के विषय में कहा गया है कि 'कृत्तिका नक्षत्र के यज्ञ में सात आहुतियाँ देनी चाहिए। अर्थात् अम्बा, दुला, नितत्नी, अभ्रयन्ती, मेघयन्ती, वर्षयन्ती, चुपुणिका इन सात तारों के नाम से कृत्तिका नक्षत्र में आहुति देनी चाहिए। इससे प्रतीत होता है कि कृत्तिका नक्षत्र में उस समय सात तारे मुख्य माने जाते थे।'

---

1 www.wikipedia.org

2 मिश्र, सुरेशचन्द्र- वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 38

3 अम्बायै स्वाहा दुलायै स्वाहा! नितत्न्यै स्वाहा भ्रयन्त्यै स्वाहा।
मेघयन्त्यै स्वाहा वर्षयन्त्यै स्वाहा! चुपुणीकायै स्वाहा।।
— तै॰ब्रा॰; 3-2-4

कृत्तिका नक्षत्र का अर्थ लौ है जो कि अग्नि के स्वरूप है।[1] इसलिये इस नक्षत्र का देवता अग्नि है। इस नक्षत्र का वर्ण ब्राह्मण है। यह रजस गुण प्रधान तथा स्त्री योनि है। इसका गण राक्षस तथा श्वेत है। इसका स्वामी सूर्य है।[2]

'मुहूर्त्त चिन्तामणि'[3] में कृत्तिका नक्षत्र के साथ विशाखा ये दो नक्षत्र और बुधवार इनकी मिश्र और साधारण संज्ञक माना गया है। इनमें अग्नि का कार्य (इञ्जन में भट्ठे में आग लगाना, औषधियों को पुट देना, अग्निहोत्र आदि) मिश्र कार्य (अन्य नक्षत्र में कहे गये कर्म), काम्य वृषोत्सर्ग आदि कार्य सिद्ध होते है। तथा उग्र संज्ञक नक्षत्र में कहे गये कार्य भी करने से शुभफल देते है।

4.2.4 रोहिणी

रोहिणी चतुर्थ नक्षत्र है जो कि 40°–00' से प्रारम्भ होकर 53°–20' तक है। रोहिणी शब्द का अर्थ लाल गाय है। ग्रीक में इसे Aldebaran कहा जाता है जिसका अर्थ अनुसरण करने वाला है। चीनी भाषा में Pi या Peih, प्राचीन चीनी में Pal कहा जाता है। मलयालम व तमिल में इसे रोहिणी कहा जाता है।[4]

---

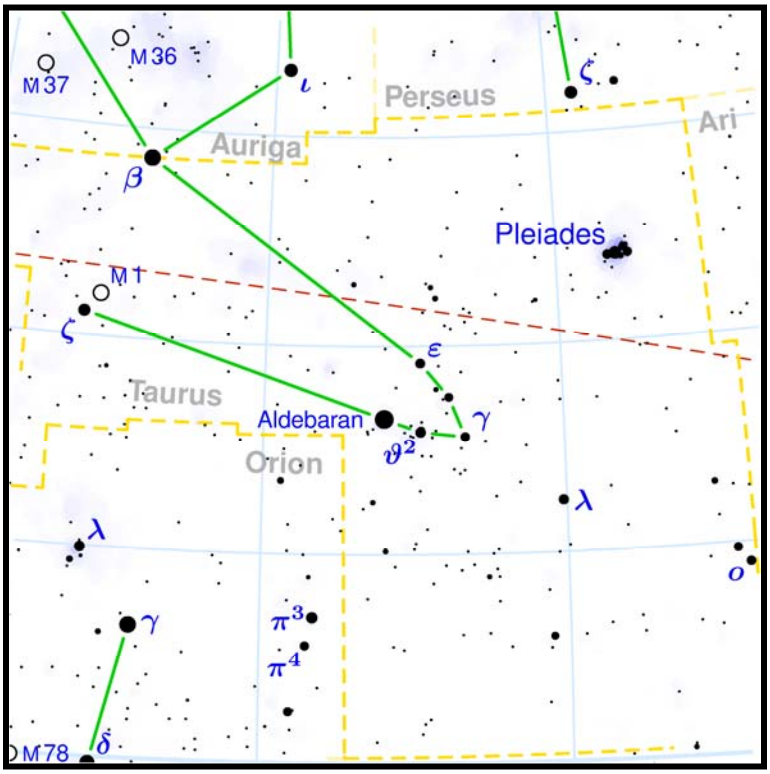
1 ल०ज्यो०– व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 260

2 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

3 विशाखाग्नेयभे सौम्यो मिश्रं साधारणं स्मृतम्।
तत्राग्निकार्यं मिश्रं च वृषोत्सर्गादि सिद्धयति।।

— मु०चि०; नक्षत्र प्रकरणम्, 5

4 ल०ज्यो०– व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 260



रोहिणी[1]

रोहिणी में पांच ताराएं है जिसकी आकृत्ति शकट या गाडी के रथ के समान दिखती है। इसीलिए रोहिणी योग के समय को संहिता ग्रन्थों में रोहिणी शकट भेदन के नाम से जाना जाता है।[2] ऐतरेय ब्राह्मण में एक कथा का वर्णन है कि प्रजापति ने अपनी कन्या से ही प्रेम करने का अकृत्य किया था। यह देख देवों ने प्रजापति को दण्ड देने के लिए अपनी शक्तियों को इकट्ठा किया। उस समवेत शक्ति का नाम व्याध या शिकारी रखा गया। जो आकाश में ऊपर भाग रही थी, ऐसी अपनी कन्या का पीछा करते हुए प्रजापति को उस व्याध ने तीर से बेध दिया। जो बेधा गया वह मृग था। जो कन्या थी वह रोहिणी, आरोहिणी कहलायी और बाण चलाने वाला व्याध्र

1 www.wikipedia.org

2 मिश्र, सुरेशचन्द्र- वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 39

कहलाया।[1]

रोहिणी नक्षत्र का देवता प्रजापति है। इस नक्षत्र का वर्ण शूद्र, गुण रजस, स्त्री योनि, तथा वर्ण श्वेत, गण मनुष्य है। इसका स्वामी चन्द्रमा है।[2]

'मुहूर्त्त चिन्तामणि'[3] में रोहिणी नक्षत्र के साथ तीनों उत्तरा और रविवार की स्थिर और ध्रुव संज्ञा कही गई है। इनमें स्थिर कार्य (जलाशयारम्भ, बीज बोना, गेहारम्भ, शान्तिकर्म, बगीचा लगाना आदि) सफल होते है। मृदु संज्ञक नक्षत्रों में कहे गये कार्य भी ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र में शुभफलदायक होते है।

4.2.5 मृगशीर्ष

नक्षत्र चक्र का पाँचवा नक्षत्र मृगशीर्ष है जो 43°–20' से 66°–40' तक है। मृगशीर्ष का अर्थ है 'हिरण का मुख' इसीलिए इसे वेदों में मृगशीर्ष कहा जाता है। ग्रीक में इसे Orionis कहा और इसे युद्ध का देवता माना। सीरिया में इसे Gabbārā तथा अरब मञ्जिल में Al-Jabbār कहा जाता है इन दोनों का अर्थ 'जिन्न' या 'राक्षस' है। प्राचीन भारत में इसका एक नाम इषस्त्रिकाण्डा भी था, जिसका अर्थ तीन

---

1 प्रजापतिर्वे स्वां दुहितरमभ्यध्यायद्दिवमित्यन्य आहुरूषसमित्यन्ये तामृश्यो भूत्वा रोहितं भूतामभ्यैत् तं देवा अपश्यन्नकृतं वै प्रजापतिः करोतीति ते तमैछन्य एनमारिष्यत्येतमन्योन्य स्मिन्नाविदंस्तेषां या एव घोरतमास्तन्व आसंस्ता एकधा समभरस्तां संभृता एष देवो भवत्तदस्यै तद्‌भतवन्नाम भवति वै स योस्यैतदेवन्नाम वेद तं देवा अब्रुवन्नयं वै प्रजापतिरकृतमकरिमं विध्येति स तथेत्यब्रवीत्स वै वो वरं वृणा इति वृणीष्वति स एतमेव वरमवृणीत पशूनामाधित्यं योस्यै तदेवं नाम वेद तमभ्यायत्याविध्यत्स विद्ध ऊर्ध्व उदप्रपत तमेतं मृगइत्याचक्षते पर उ एव मृगव्याधः स उ एव स या रोहित यो एवेषु स्त्रिकाण्डासो एवेषु त्रिकाण्डा तद्वा इदं प्रजापतेरेतत् सिक्तमधावत्तत् सरोभवत्।

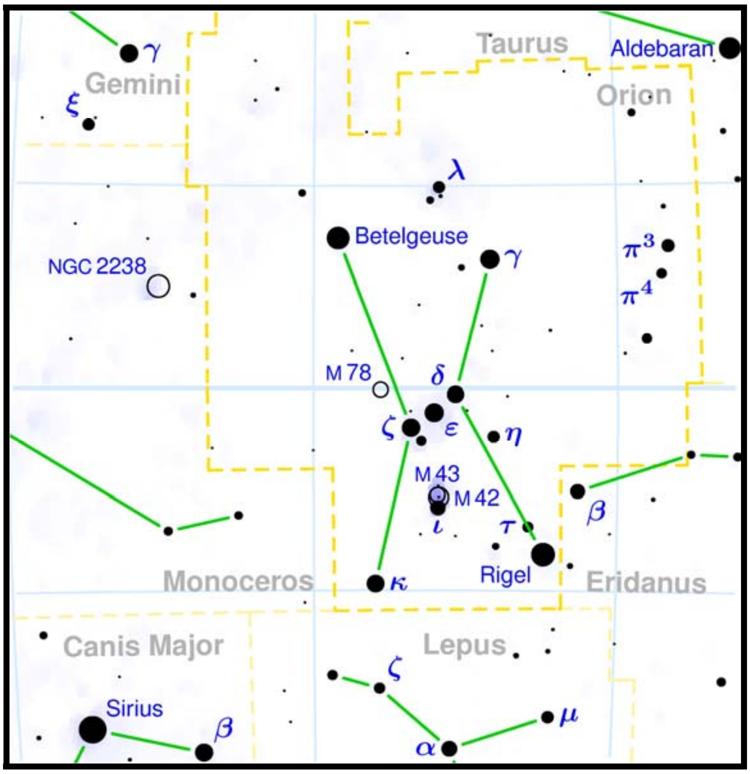
— ऐ०ब्रा०; 13–9

2 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

3 उत्तरात्रय– रोहिण्यो भास्करश्च ध्रुवं स्थिरम्।
तत्र स्थिरं बीजगेहशान्त्यारामादिसिद्धये।।

— मु०चि०; नक्षत्र प्रकरणम्, 2

जुड़े हुए तीर है, जिसको बाद में मृगशिरस संज्ञा दी गयी। अरबी में इसका नाम 'Al-Hak'ah है। मलयालम में इसे मागवीर्यम् तथा तमिल में मृगशिरिश् कहते है।[1]



मृगशीर्ष[2]

मृगशिरा नक्षत्र तीन तारों का समूह है। जिसका स्वरूप हिरण के सिर के समान है।[3] रोहिणी नक्षत्र की तरह ही मृगशिरा नक्षत्र के साथ अनेक कथाएँ जुड़ी हुई है जैसे पौराणिक आख्यान के अनुसार मृगशिरा को प्रजापति के रूप में माना गया है जिस कथा का वर्णन उपरोक्त रोहिणी नक्षत्र में है। वैदिक देवशास्त्र के अनुसार इस शास्त्र का स्वामी रोम है जिसने बृहस्पति गृह की पत्नी के साथ धोखे से सम्भोग किया जिससे बुध का जन्म हुआ।[4]

---

1 ल०ज्यो०– व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 262

2 www.wikipedia.org

3 मिश्र, सुरेशचन्द्र– वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 40

4 ल०ज्यो०– व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 261

इस नक्षत्र का देवता चन्द्रमा है। वर्ण भ्रत्य है। यह तामसिक गुण प्रधान, नपुंसक योनि तथा देवगण में आता है। इसका रंग रजत चित्र वर्ण है। इसका स्वामी मङ्गल है।[1]

'मुहूर्त्त चिन्तामणि'[2] में मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा और शुक्रवार को मृदु और मैत्र संज्ञक माना गया है। इनमें गीत सीखना, गीत गाना, वस्त्र बनाना, वस्त्र धारण करना, वस्त्र सिलवाना, खेलना, खेलने की शिक्षा ग्रहण करना, मित्रों का कार्य-सम्पादन, मित्रता करना, भूषण निर्माण एवं धारण करना उत्तम होता है।

4.2.6 आर्द्रा

नक्षत्र चक्र में छठा नक्षत्र आर्द्रा है। जो 66°–40' से आरम्भ्य होकर 80°–00' तक है। आर्द्रा शब्द का अर्थ नमी (Moist) है। चीनी भाषा में इसे Tsan कहा जाता है। एक अरबी कथा सुहेल के प्रसङ्ग में इसका नाम Al-Adhāra तथा Al-Zara भी मिलता है। मलयालम में इसे थिरूवत्थिरा तथा तमिल में थिरूवत्थिराई कहते है।[3] तैत्तिरीय ब्राह्मण में इस नक्षत्र के लिए द्विवचनान्त 'बाहू' शब्द का प्रयोग हुआ है।[4]

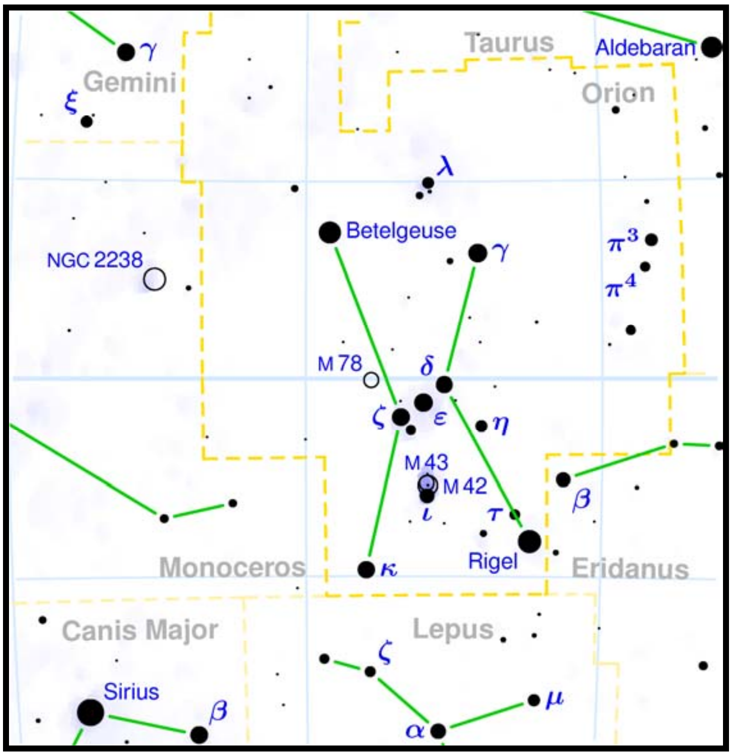
---

1 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

2 मृगान्त्यचित्रामित्रर्क्षं मृदु मैत्रं भृगुस्तथा।
तत्र गीताम्बरक्रीडा मित्रकार्यं विभूषणम्।।
— मु०चि०; नक्षत्र प्रकरणम्, 6

3 ल०ज्यो०– व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 263

4 रूदस्य बाहू। मृगयवः परस्ताद्विक्षारोऽवस्तात्।
— तै०ब्रा०; 1–5–1–1



आर्द्रा[1]

आर्द्रा नक्षत्र में एक तारा है जो मणि या रत्न के समान दिखाई देता है।[2] आर्द्रा नक्षत्र का स्वामी रूद्र (शिव) है आर्द्रा नक्षत्र में ही प्रथम वर्षा होती है तथा उससे पृथ्वी के आर्द्र होने पर संसार के प्राणी सुखी होते है। आर्द्रा में वर्षा होने पर पुनः अन्न की प्राप्ति होती है।[3]

इस नक्षत्र का वर्ण अवर है। यह तमस् गुण प्रधान तथा स्त्री योनि है। इसका रंग हरित है तथा यह मनुष्य गण में आता है। राहु इसका स्वामी है।[4]

'मुहूर्त्त चिन्तामणि'[5] में आर्द्रा के साथ मूल, ज्येष्ठा, आश्लेषा और शनिवार की तीक्ष्ण और दारूण संज्ञा होती है। इनमें अभिचार कर्म (मारण, मोहन, उच्चाटन आदि

---

1 www.wikipedia.org

2 मिश्र, सुरेशचन्द्र- वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 40

3 वै॰ज्यो॰- शास्त्री, गिरजाशङ्कर, पृ. 217

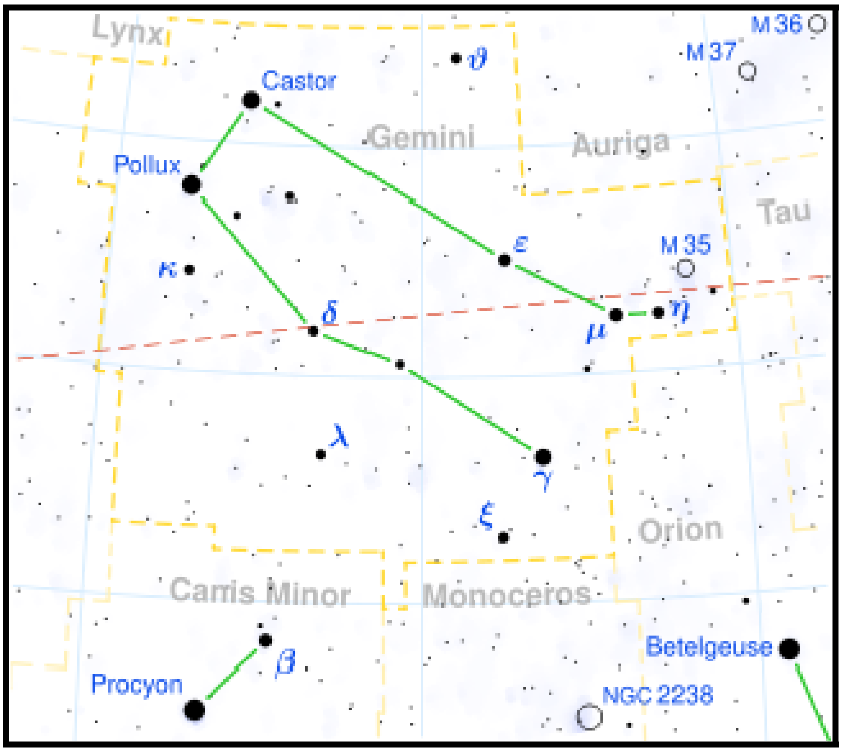
4 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

5 मूलेन्द्राद्रोहिभं सौरिस्तीक्ष्णं दारूणसंज्ञकम्।
तत्राभिचारघातोग्रभेदाः पशुमादिकम्।।
— मु॰चि॰; नक्षत्र प्रकरणम्, 7

तामस तान्त्रिक प्रयोग), घातकर्म उग्र (भयङ्कर) कर्म, भेद (किसी में झगड़ा लगाना, किसी की चुगली करना), पशु दमन (पशुओं को शिक्षा देना, सांडों को बन्ध्य कराना, नाक छेदना) आदि कार्य सिद्ध होते है।

4.2.7 पुनर्वसु

भचक्र का सप्तम नक्षत्र पुनर्वसु है जो कि 80°–00' से प्रारम्भ होकर 93°–23' तक है। पुनर का अर्थ दुबारा तथा वसु का अर्थ अच्छा और चमकदार है।[1] पुनर्वसु शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में भी प्राप्त होता है।[2] अरब मञ्जिल में इसका नाम Al-Dhirā है इसका अर्थ शेर का पञ्जा है। चीनी भाषा में इसे Tsing कहा जाता है, जिसका अर्थ कुआँ या गड्ढा है। प्राचीन चीनी में इसका नाम Tiam था। मलयालम में इसे पुनर्थम् तथा तमिल में पुनर् पुष्यम् कहा जाता है। इस नक्षत्र का देवता अदिति है।



पुनर्वसु[3]

---

1 ल०ज्यो०– व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 263

2 अग्नीषोमा पुनर्वसु। अस्मे धारयतं रयिम्।
– ऋ०; 10–19–1

3 www.wikipedia.org

शाकल्य और खण्ड–कटक के अनुसार इनमें दो तारे है। पुनर्वसु नक्षत्र चार तारों का समूह है[1] जो घर के प्रवेश द्वार या तोरण की आकृति बनाता है।[2]

पुनर्वसु का प्रतीक धनुष है जो कि पाँच नक्षत्रों का समूह है जो घर की तरह दिखायी देता है। इसका वर्ण वैश्य है। यह सत्व गुण प्रधान, पुरुष योनि तथा रंग सिक्का (Lead colour) है। इसका गण देव है तथा इसका स्वामी ग्रह बृहस्पति है।[3] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि'[4] में पुनर्वसु, स्वाती, श्रवण से तीन (श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा) ये 5 नक्षत्र और सोमवार इन सभी की चल और चर संज्ञा कही गई है। इनमें हाथी (घोड़ा, मोटर, साईकिल) आदि यानों पर चढ़ना और बगीचे में यात्रा करना आदि कार्य शुभ होते है तथा लघुसंज्ञक नक्षत्र में कहे गये कार्य भी करने चाहिए।

4.2.8 पुष्य

नक्षत्र चक्र का आठवाँ नक्षत्र पुष्य है जो कि 93°–20' से 206°–40' तक जाता है। पुष्य का एक अर्थ पुष्प और दूसरा तिष्य भी है इसे पुष्यमी भी कहा जाता है। मलयालम में इसे पूय्यम तथा तमिल में पुष्यम् कहा जाता है। अरब मञ्जिल में इसे Al-Nathrah कहा जाता है जिसका अर्थ शेर के नाखूनों का रिक्त–स्थान है। चीन में इसे Kwei कहा जाता है जिसका अर्थ भूत, प्रेत, पिशाच या छाया है। प्राचीन चीन में इसे Kut कहा जाता था, जिसका अर्थ बादलों के समान है।[5]

---

1 ल॰ज्यो॰– व्या॰ पुनीता शर्मा, पृ. 263

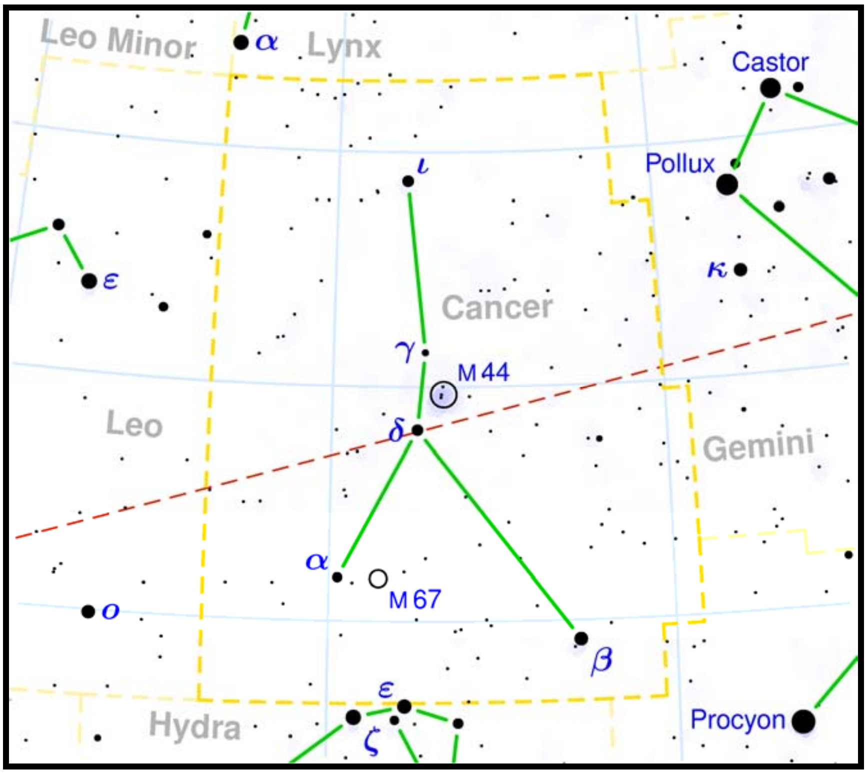
2 मिश्र, सुरेशचन्द्र– वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 40

3 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

4 स्वात्यादित्ये श्रुतेस्त्रीणि चन्द्रश्चापि चरं चलम्।
तस्मिन् गजादिकारोहो वाटिकागमनादिकम्।।

— मु॰चि॰; नक्षत्र प्रकरणम्, 3

5 ल॰ज्यो॰– व्या॰ पुनीता शर्मा, पृ. 263–64



पुष्य[1]

पुष्य नक्षत्र तीन तारों का समूह है जो एक सीध में स्थित तारों से बाण का आकार प्रदर्शित करते है।[2]

इस नक्षत्र का देवता बृहस्पति है इनका वर्ण क्षत्रिय, गुण तमस, पुरुष योनि, देव गण और रंग कृष्ण मिश्रित है। इसका स्वामी शनि है।[3] मुहूर्त्त चिन्तामणि में पुष्य नक्षत्र को क्षिप्र/लघु संज्ञक बताया गया है उपरोक्त अश्विनी नक्षत्र में इसका वर्णन है।

4.2.9 आश्लेषा

आश्लेषा नक्षत्र भचक्र का नवाँ नक्षत्र है जो कि 106°–40' से 120°–00' तक है। आश्लेषा शब्द का अर्थ है आलिङ्गन करना है। आश्लेषा नक्षत्र को फ्रैन्च में

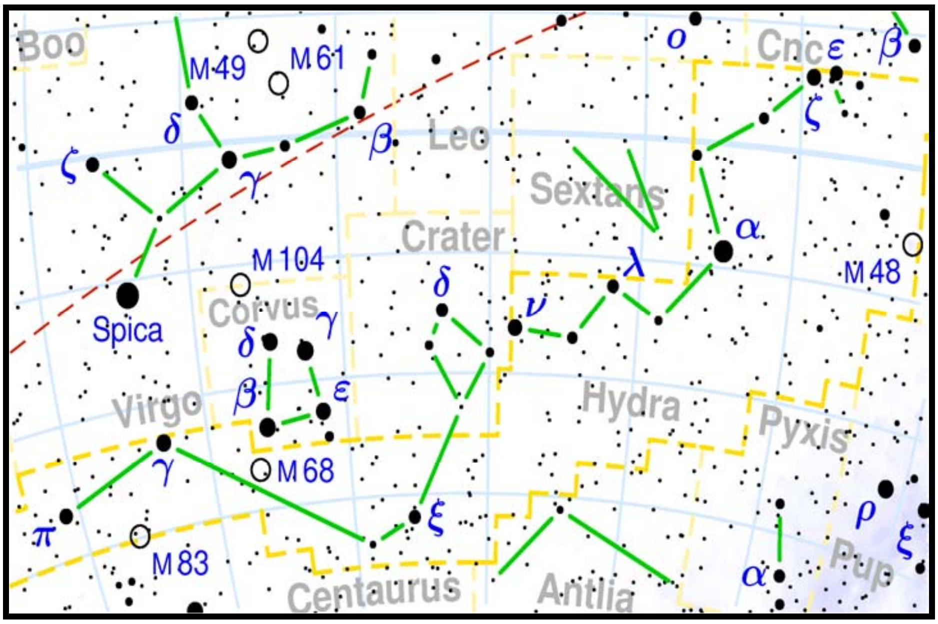
---

1 www.wikipedia.org

2 मिश्र, सुरेशचन्द्र- वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 41

3 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

Hydre, जर्मन में Grosse Wasserschlange तथा इतालवी भाषा में Idra कहते है। मूल अफ्रीकी भाषा में Nepa अर्थात् भूमि पर घूमने वाला कर्कट तथा Nepas बिच्छू के लिए प्रयुक्त होने वाला शब्द इस नक्षत्र के लिए प्रयुक्त हुए होगे। चीनी भाषा में इनका नाम Lieu, जिसका अर्थ बेत की शाखा है तथा कई स्थलों पर Liu- वृत्तीय पुष्पों का हार, के रूप में मिलता है। प्राचीन चीनी भाषा में इसका एक नाम Tah है। यह सात तारों का समूह है जो कि लाल पक्षी की ग्रीवा के समान है। अरब मञ्जिल में इसका नाम Al–H'ail जिसका अर्थ शेर का आकृतिनुमा है। मलयालम में इसे आजिल्लयम् तथा तमिल में आश्लेषा कहते है।[1]



आश्लेषा[2]

इसमें 6 तारे इस तरह प्रधान है जो व्रत या चक्र या पहिए की आकृति उभारते है। वराह ने पांच तारा कही है।[3] आश्लेषा नक्षत्र का प्रतीक सर्प, देवता नाग तथा वर्ण

---

1 ल०ज्यो०- व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 264-65

2 www.wikipedia.org

3 मिश्र, सुरेशचन्द्र- वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 41

अवर है यह सत्व गुण प्रधान, स्त्री योनि तथा इसका गण राक्षस है। इसका वर्ण कृष्ण मिश्रित रक्त है। इसका स्वामी बुध है।[1]

तैत्तिरीय ब्राह्मण[2] का कथन है कि 'अश्लील नामवाले नक्षत्र में न यज्ञ का आरम्भ करे और न ही इस नक्षत्र में यज्ञ समाप्त करे क्योंकि यह पाप नक्षत्र है 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में इसे तीक्ष्ण/दारूण संज्ञक बताया गया है जिसका वर्णन पहले ही आर्द्रा नक्षत्र में कर दिया है।'

4.2.10 मघा

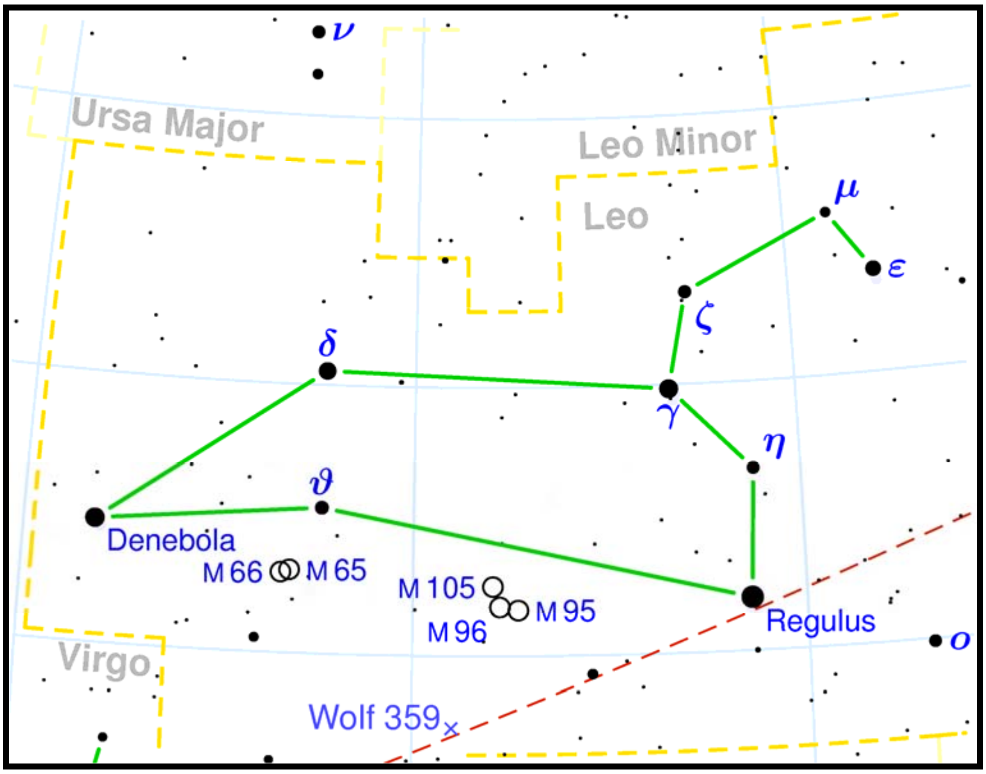
120°–00' से 133°–20' तक आने वाला नक्षत्र चक्र का दसवाँ नक्षत्र मघा है। मघा का अर्थ शक्तिशाली, बलशाली, समर्थ और शासन अर्थ में है। Sogdiana में मघ का अर्थ महान है। फारसी में इसे Miyan, जिसका अर्थ केन्द्र है, तुरानियन में Masu जिसका अर्थ हीरो या नायक है। अंग्रेज ज्योतिषियों ने इस नक्षत्र में उत्पन्न होने वाले को धन, शक्ति, बल और सामर्थ्य से युक्त माना है। इसे सिंह का हृदय माना गया। चीनी में इसका नाम Sing है मलयालम और तमिल में इसे मखम् कहा जाता है।[3]

---

1 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

2 अश्लीलनामश्चित्रे नावस्येत्र यजेत।
यथा पापाहे कुरूते तादृगेव तत्।।
— तै०ब्रा०; 1–5–2

3 ल०ज्यो०– व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 256–66



मघा[1]

मघा नक्षत्र के तारों के समूह के विषय में विद्वानों में मतभेद है। मघा में पांच-छः तारे प्रमुख है। इनसे अपेक्षाकृत कम चौड़ाई वाले मकान का सामने वाला भाग प्रकट होता है।[2] प्राचीन फारसी शासन में इन्हें शासन के चार शाही तारे माना गया तथा इन्हें स्वर्ग के चार संरक्षक की संज्ञा दी गयी। ये चार तारे चार दिशाओं को सूचित करते है। उत्तर दिशा के तारे का नाम Hastorang, दक्षिण दिशा का Venant, पूर्व दिशा का Tascheter तथा पश्चिम का Satevis कहा जाता है ये आकाश के चार वृत है जो कि स्वर्ग के चार चरण है।[3]

इस नक्षत्र के देवता पितर अर्थात् पूर्वज है जो कि मृत्यु के उपरान्त इस लोक को छोड़ गये है। इसका प्रतीक पालकी और वर्ण शूद्र है। यह तमस गुण प्रधान, स्त्री

---

1 www.wikipedia.org

2 मिश्र, सुरेशचन्द्र- वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 41

3 ल०ज्यो०- व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 266

योनि तथा इसका गण राक्षस है। इसका रंग नवनीत के समान श्वेत है। इसका स्वामी केतु है।[1] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में इसे उग्र/क्रूर संज्ञक बताया गया है। जिसका वर्णन पहले ही भरणी नक्षत्र में कर दिया गया है।

यजुर्वेद में मघा शब्द का अर्थ विद्या, विज्ञान, ऐश्वर्य, बल एवं इन्द्र है। इन्द्र का एक नाम मघवा भी है। वेदों में मघा को देव नक्षत्र माना है जिसके स्वामी पितर है और ये देवयान से आते है।[2] मघा शब्द का प्रयोग ऋग्वेद संहिता में भी अनेक बार प्राप्त होता है।[5(i)] ऋग्वेद के 'उषस' सूक्त इस सन्दर्भ में विशेष रूप से द्रष्टव्य है।[3(ii)]

4.2.11 पूर्वा फाल्गुनी

27 नक्षत्रों में से 11वाँ नक्षत्र पूर्वाफाल्गुनी है जो कि 133°–22' से 146°–40' तक जाता है। कुछ विद्वानों ने फाल्गुनी नक्षत्र मानकर इसके दो भाग पूर्वा और उत्तरा माने है जिनमें से एक का अर्थ अंजीर का वृक्ष तथा दोनों मिलकर शय्या या बैठने के लिए चार पायों वाले सिंहासन की आकृति बनाते है। अरबी में इसे Al-Jabhah कहा है जिसका अर्थ मस्तक है। इनमें से पूर्वाफाल्गुनी को Al-Zubrah- the mane तथा उत्तरा फाल्गुनी को Al-sarfah- the turn कहा है। ग्रीक में इसे Leonis, चीनी भाषा में Shang Seang कहा जाता है, जिसका अर्थ राज्य का कोई बड़ा मन्त्री है। मलयालम और तमिल में इसे पूर्णम् कहा जाता है।[4]

---

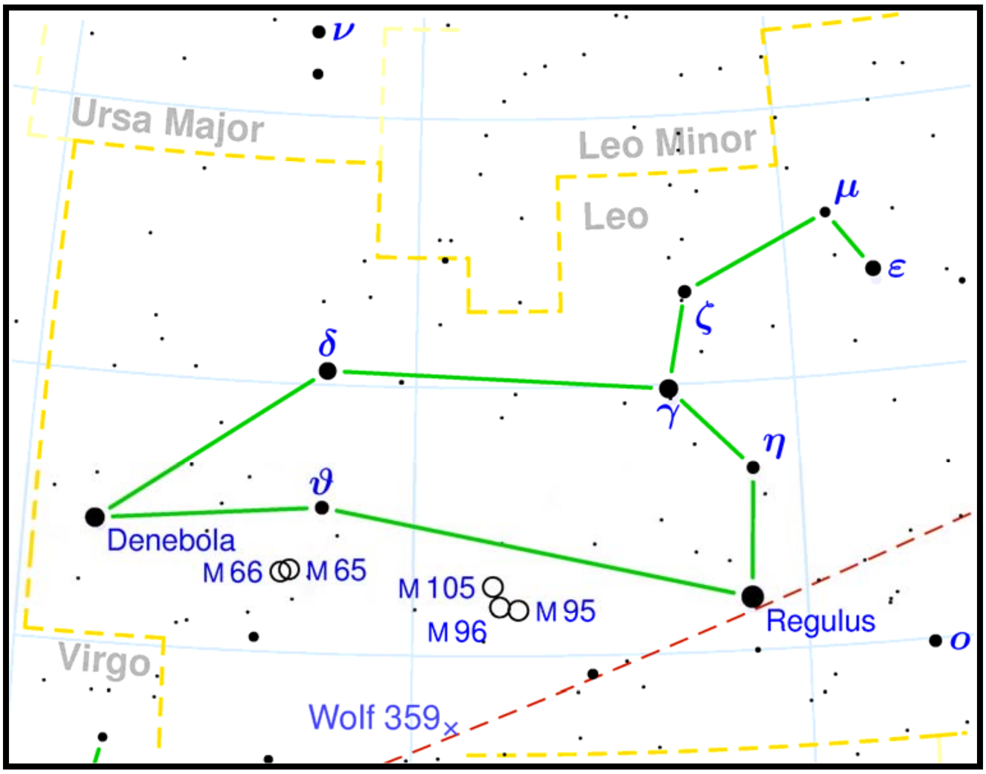
1 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

2 आ यन्तु: न पितर: सोम्यसोऽग्निष्वात्ता: पथिभिर्देवयानै:।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि बुवन्तु ते अवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्।।
— यजु॰, सु॰भा॰; 19–58

3 i) वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रा मघा राय इशे वसूनाम्।
— ऋ॰; 7–75–5

ii) उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनुप्रभूता।।
— वही; 7–77–3

4 ल॰ज्यो॰– व्या॰ पुनीता शर्मा, पृ. 266



पूर्वा फाल्गुनी[1]

पूर्वा फाल्गुनी में दो तारे है, जिनकी स्थिति ऐसी है, मानो किसी पार्क में पत्थर की बिना पीठ वाली बेंच हो इसीलिए इसे मंच के समान कहा है।[2]

वैदिक साहित्य में पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र का देवता भग है। **'फल्गुनी नक्षत्रं भगो देवता'** जिसका अर्थ- भजनीय, परमात्मा, विद्वान, ऐश्वर्य तथा सूर्य है[3] जो कि सूर्य की माता अदिति के 12 पुत्रों में से है। इसका वर्ण ब्राह्मण, स्त्री योनि, रजस गुण प्रधान तथा मनुष्य गण है। इसका रङ्ग हल्का भूरा है। इसका स्वामी शुक्र है।[4] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में इसे उग्र/क्रूर संज्ञक बताया गया है। जिसका वर्णन पहले ही भरणी नक्षत्र में कर दिया गया है।

---

1 www.wikipedia.org

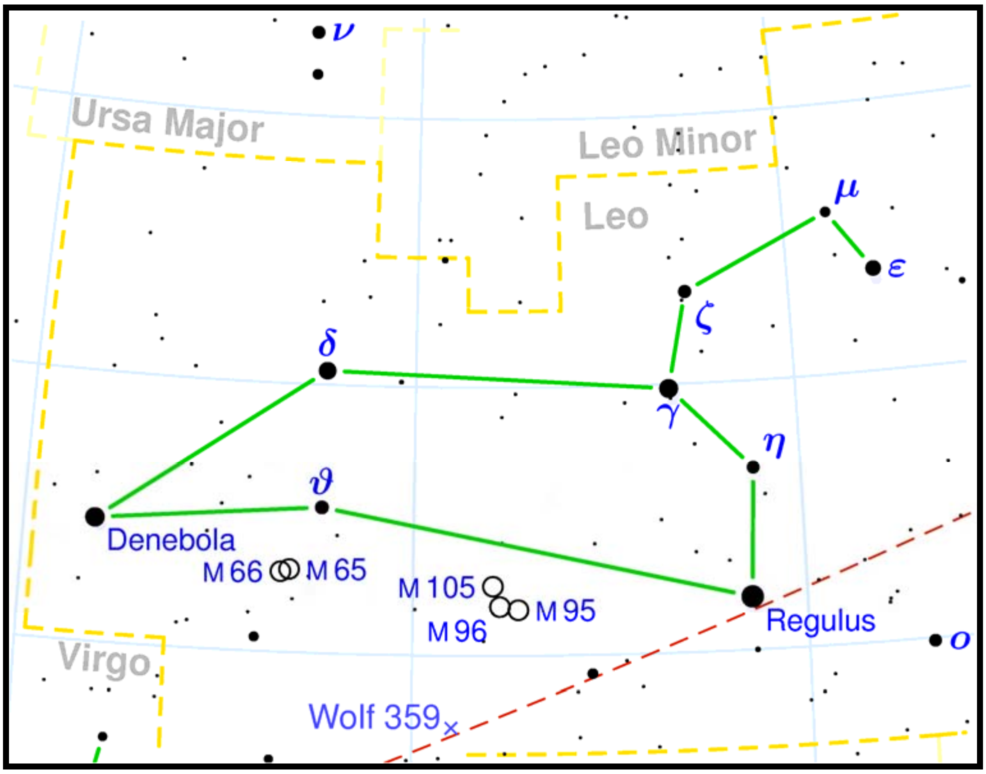
2 मिश्र, सुरेशचन्द्र- वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 42

3 वै०ज्यो०- व्या० शास्त्री, गिरजाशङ्कर, पृ. 219

4 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

4.2.12 उत्तरा फाल्गुनी

नक्षत्र चक्र में 12वाँ नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी है। यह खचक्र के 146°–40' से 160°–00' तक है। अलबरूनी के अनुसार इस नक्षत्र का सम्बन्ध मौसम के सङ्केत से है। इसके उदय होने पर उष्णता तथा अस्त होने पर शीतता समाप्त हो जाती है। बेबीलोन खगोलविद्या में इसे 17वाँ नक्षत्र मानकर इसका नाम Zibbat A माना है जिसका अर्थ शेर की पूँछ है। फारसी में इसे Avdem कहा जाता है जो कि पूँछ के अर्थ में है। अरब मञ्जिल में इसे Al-Sūrfah कहा जाता है, जिसका अर्थ परिवर्तन या मोड़ है। मलयालम में इसे उथ्थरम् तथा तमिल में उथीरम् कहते है।[1]



उत्तरा फाल्गुनी[2]

---

1 ल॰ज्यो॰– व्या॰ पुनीता शर्मा, पृ. 267

2 www.wikipedia.org

उत्तरा फाल्गुनी में चार तारे इस तरह स्थित है जो देखने से सिरहाने व पाय के तानों से युक्त आजकल के डबल बैड का स्वरूप प्रदर्शित करते है। इसी से इसे ग्रन्थों में शय्या के समान कहा है इस प्रकार उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में तारे की संख्या के विषय में मतभेद है लेकिन स्वरूप सब एक जैसा ही बताते है।[1] यह दो तारों का समूह है जो कि चारपाई के दो पायों के समान लगता है।[2]

उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र का देवता अर्यमा है। ऋग्वेद में अर्यमा का अर्थ न्यायकारी है जो सूर्य का पर्याय है अर्यमा बारह आदित्यों में से एक है यह सूर्य की माता अदिति के पुत्र थे।[3]

इसका प्रतीक एक छोटी चारपाई है इसका वर्ण क्षत्रिय, रजस गुण, स्त्री योनि तथा मनुष्य गण है। इसका रङ्ग चमकदार नीला है। इसका स्वामी सूर्य है।[4] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में इसे ध्रुव/स्थिर संज्ञक बताया गया है। जिसका वर्णन पहले ही रोहिणी नक्षत्र में कर दिया गया है।

4.2.13 हस्त

नक्षत्र चक्र में 13वाँ नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी है। यह रवचक्र के 60°–00' से 173°–20' तक है। हस्त शब्द का अर्थ 'हाथ' है। मलयालम में इसे अत्थम् तथा तमिल में इसे हस्थम् कहा जाता है। अरब मञ्जिल में इसे Al-Auma कहा जिसका अर्थ भौंकता हुआ कुत्ता है। ग्रीक में इसे Corvi तथा चीनी में Chin कहा जाता है।

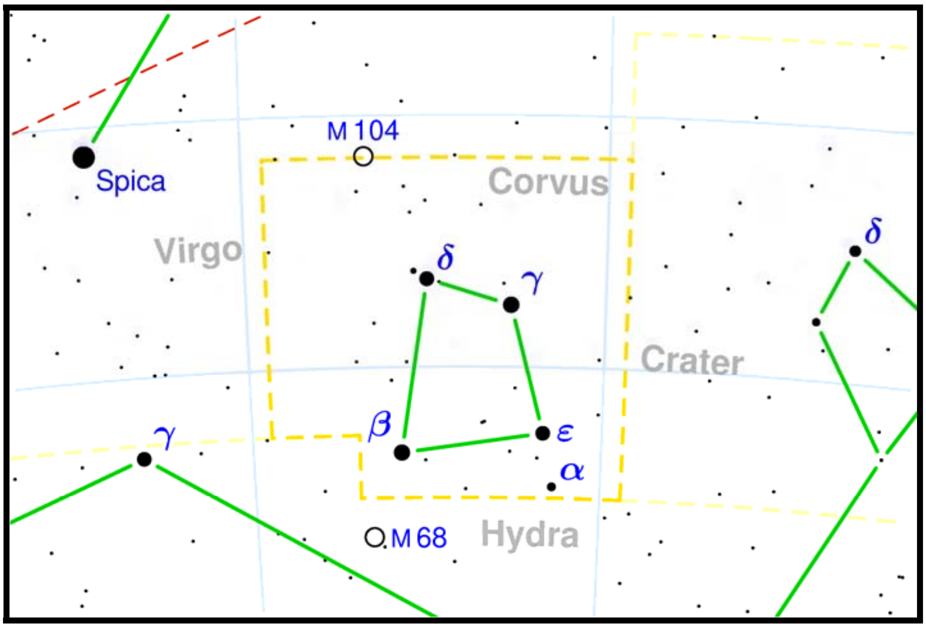
---

1 मिश्र, सुरेशचन्द्र- वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 42

2 ल०ज्यो०– व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 267

3 वै०ज्यो०– व्या० शास्त्री गिरजाशङ्कार, पृ. 220

4 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16



हस्त[1]

'विष्णु पुराण' के अनुसार दक्षन्ध की पुत्री अदिति का विवाह कश्यप ऋषि से हुआ, जिससे उसके 12 पुत्र हुए जो कि द्वादश आदित्य कहलाये। अदिति के इन्हीं 12 पुत्रों में से सूर्य एक है। एक अन्य पौराणिक आख्यान भी मिलता है कि देवताओं के अधिपति तथा वर्षा के भी स्वामी इन्द्र ने स्वर्ग को पृथ्वी से अलग कर दिया तभी से पृथ्वी की पृथक सत्ता मानी जाने लगी। तब पृथ्वी की नाभि से सूर्य उत्पन्न हुआ और उसने तीनों लोकों को पृथक्-पृथक् कर दिया जो स्वर्ग पृथ्वी तथा उनके मध्य का भाग अन्तरिक्ष या आकाश बने।[2]

हस्त नक्षत्र पाँच तारों का समूह है। हस्त नक्षत्र में पांच तारों से फैली हुई हथेली की आकृति बनती है। इसके स्वरूप के आधार पर ही इसे हस्त नक्षत्र कहते है।[3]

---

1 www.wikipedia.org

2 ल०ज्यो०- व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 267-68

3 मिश्र, सुरेशचन्द्र- वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 42

हस्त नक्षत्र का देवता सूर्य है। **'हस्तो नक्षत्रं सविता देवता'**[1] इस नक्षत्र का प्रतीक हाथ है। इसका वर्ण वैश्य, गुण रजस, योनि-पुरुष, तथा देव-गण है। इसका रङ्ग गहरा हरा है। इसका स्वामी चन्द्र है।[2] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में इसे क्षिप्र/लघु संज्ञक बताया गया है। उपरोक्त नक्षत्र में इसका वर्णन है।

4.2.14 चित्रा

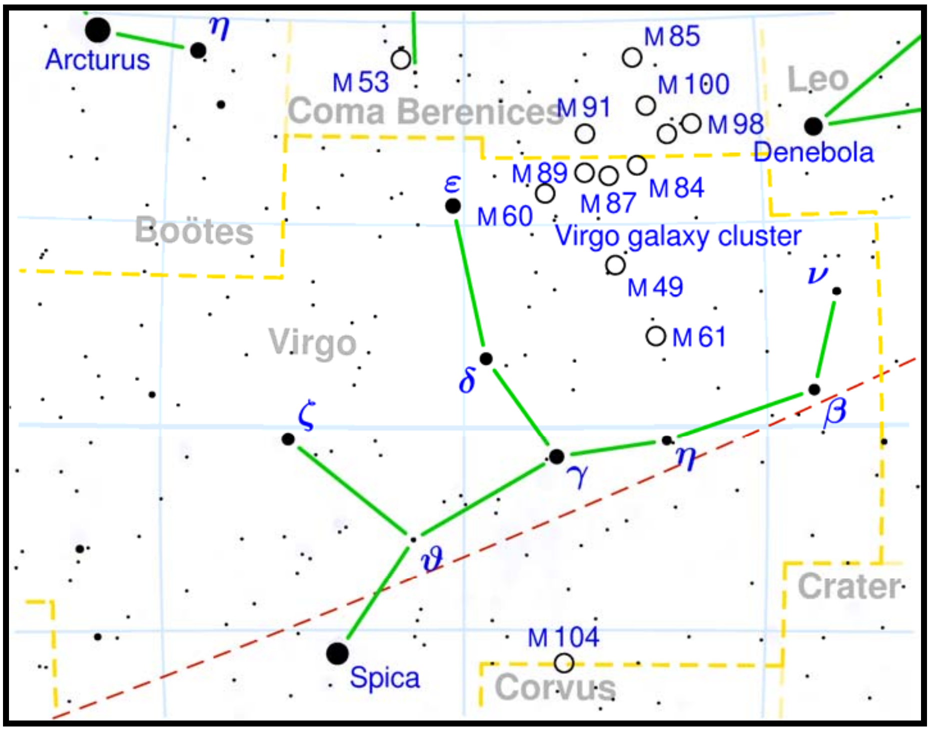
भचक्र में 173°–20' से आरम्भ होकर 186°–40' तक 14वाँ नक्षत्र चित्रा है। चित्रा शब्द का अर्थ चमत्कार है। अरब में इसे 12वीं मंजिल कहकर इसका नामकरण Al-Simāk किया गया। हिब्रू में इसे Shibhāieth, सीरिया में Shebbelta, फारसी में Chūshe तुर्की में Salkim कहा जाता है। इन सभी का अर्थ समान रूप से गेहूँ की बाली है। फारसी में इसका नाम Spur, अवेस्ता में Cparegha है जिसका अर्थ Spica है, जो बिन्दु अर्थ को सूचित करता है। चीन में इसे Kio, Spike के अर्थ में तथा Keok- वसन्त ऋतु का विशेष तारा, कहा जाता है। एजिप्ट में इसे बीन को धारण करने वाला मानकर इसका नाम Repā रखा है। Greek में इसे Virginis या Spica कहा जाता है। मलयालम में इसे चिथ्रा तथा तमिल में चिथ्रई कहते है।[3]

---

1 वै॰ज्यो॰- व्या॰ शास्त्री गिरजाशङ्कर, पृ. 220

2 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

3 ल॰ज्यो॰- व्या॰ पुनीता शर्मा, पृ. 268



चित्रा[1]

यह एक प्रधान तारे वाला नक्षत्र है। इसकी आकृति चमकते हुए मोती के समान दिखायी देती है।[2] चित्रा नक्षत्र 27 नक्षत्रों के मध्य का नक्षत्र है। खगोल में प्राचीन चित्रों में चित्रा नक्षत्र का आकार लम्बे कानों वाला उलूक (उल्लू) पक्षी जैसा बनाया हुआ मिलता है। यही कारण है कि वेदों में इन्द्र के लिए वृद्धश्रवाः अर्थात् लम्बे कानो वाला कहा गया है।[3]

इस नक्षत्र का देवता त्वष्टा विश्वकर्मा है। यह नक्षत्र मुक्ता के समान चमकदार है। इसका वर्ण-भृत्य, गुण-तमस्, स्त्री-योनि, गण-राक्षस, तथा रङ्ग कृष्ण या काला है। इसका स्वामी मङ्गल है।[4] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में चित्रा को मृदु/मैत्र संज्ञक बताया गया है। जिसका वर्णन पहले ही मृगशिरा नक्षत्र में कर दिया गया है।

---

1 www.wikipedia.org

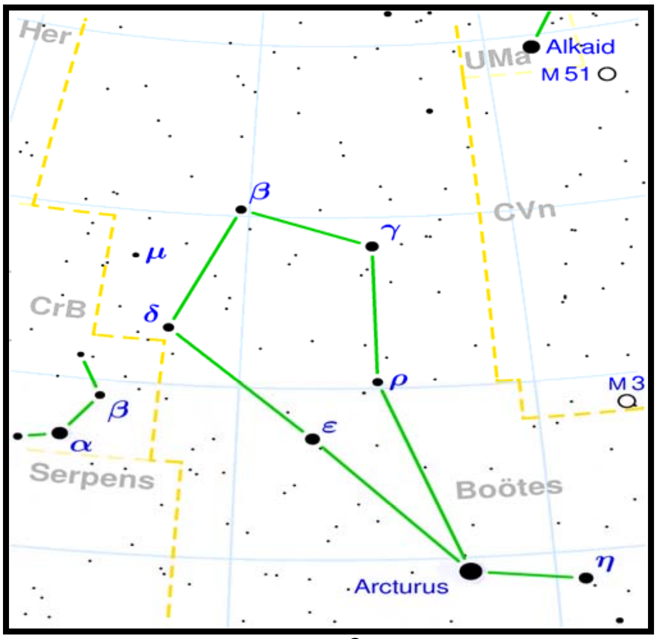
2 मिश्र, सुरेशचन्द्र- वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 42

3 वै०ज्यो०- व्या० शास्त्री, गिरजाशङ्कर, पृ. 221

4 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

4.2.15 स्वाती

रवचक्र का 15वाँ नक्षत्र स्वाती है जो कि 186°–40' से आरम्भ होकर 200°–00' तक है। स्वाती शब्द का अर्थ तलवार है। चीन में इसे Ta kio अर्थात् महाशृङ्ग कहा जाता है। ग्रीक में इसकी संज्ञा Arcturus तथा Bootes, अरब मंजिल में Al-Simāk है जिसे भाला पकड़े घुड़सवार की टांग के रूप में माना जाता है। ग्रीक-पर्शियन सारणी में इसे Javelin-bearer माना है जिससे इसका शस्त्र सम्बन्धी विचार मिलता है। Bayer ने इसका नाम Gladius अर्थात् व्याध के हाथ में पकड़ी तलवार, Kolanza-व्याध के हाथ में पकड़ा चमकीला भाला तथा Pugio अर्थात् व्याध के हाथ में पकड़ा हुआ दाँतदार अस्त्र माना है। 1556 में एक अंग्रेजी लेखक Rebert Recorde ने खगोल विद्या पर ग्रन्थ लिखते हुए इसे ज्ञान का गढ़ माना है। यह नक्षत्र इतना अधिक चमकीला है कि Smyth के अनुसार इसे दिन के समय भी बिना टेलिस्कोप के देखा जा सकता है। Schmidt के अनुसार सूर्यास्त के 24 मिनट पहले इसे नंगी आँखों से आकाश में देखा जा सकता है। जर्मन इसे Arctur तथा इतावली और स्पेनिश में इसे Arturo कहा जाता है। मलयालम में इसे छोथी तथा तमिल में स्वाथी कहते है।



स्वाती[1]

---

[1] www.wikipedia.org

तैत्तिरीय ब्राह्मण में स्वाती को 'निष्ठ्य' कहा गया है, जिसका अर्थ जातिच्युत है। इसकी इस संज्ञा का कारण सम्भवत: इस नक्षत्र की स्थिति से है जो कि राशिचक्र के एकदम उत्तर की ओर है[1] 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' में कहा गया है कि स्वाती नक्षत्र में विवाहिता कन्या पति को इतनी प्रिय हो जाती है कि पुन: लौटकर पिता के घर नहीं जाती।[2]

हस्त नक्षत्र के समान स्वाति नक्षत्र में भी एक ही प्रधान तारा है। जिसका स्वरूप फैले हुए अंडाकार मूंगे के समान है।[3] इस नक्षत्र का देवता वायु है। इसका प्रतीक मूंगा है। यह तमस् गुण प्रधान, स्त्री योनि, तथा देव गण है। इसका रंग काला है। इसका स्वामी राहु है।[4] 'मुहूर्त चिन्तामणि' में स्वाती को चर/चल संज्ञक बताया गया है। जिसका वर्णन उपरोक्त पुनर्वसु नक्षत्र में कर दिया गया है।

4.2.16 विशाखा

भचक्र में 200°–00' से 213°–20' तक 16वाँ नक्षत्र विशाखा है। अरब मंजिल में इसे Az-Zubanan कहा है जिसका अर्थ बिच्छू का दोहरा दंश है ग्रीक में इसे Librae तथा चीनी भाषा में इसका नाम Ti है।

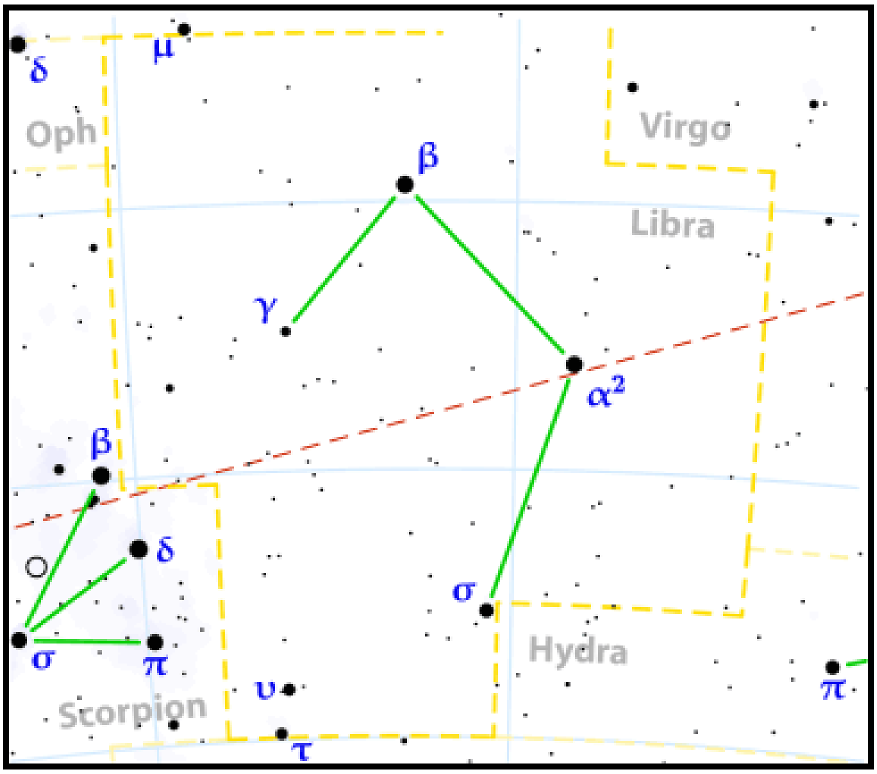
---

1 ल०ज्यो०– व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 269

2 वै०ज्यो०– व्या० शास्त्री, गिरजाशङ्कर, पृ. 221

3 मिश्र, सुरेशचन्द्र– वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 43

4 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16



विशाखा[1]

शाकल्य और खण्ड कटक ने विशाखा को दो तारों वाला नक्षत्र कहा है जबकि बाद के खगोलविदों ने इसे चार तारों के समूह वाला कुम्भकार के चाक के समान माना है।[2] वैदिक नक्षत्र ज्योतिष में तारों की संख्या चार मानी गयी है जो दरवाजे पर टांगे जाने वाले वन्दनवार (तोरण) की तरह दिखते है। इसीलिए इसे कही पर तोरण के समान और कही पर बहिर्द्वार सदृश कहा गया है।[3]

"विशाखे नक्षत्रमिन्द्राग्नी" अर्थात् वैदिक साहित्य में विशाखा नक्षत्र के दो प्रधान देवता है इन्द्र और अग्नि इसी कारण इसे द्वीश दो स्वामियों वाला कहा गया

1 www.wikipedia.org
2 ल॰ज्यो॰– व्या॰ पुनीता शर्मा, पृ. 269–71
3 मिश्र, सुरेशचन्द्र– वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 43

है।[1] इन्द्र प्राणियों के शरीर निर्माण कला में निष्णात है। अनेकधा इसे वृषभ कहा है जो सौ किलो का भी भेदन कर देने वाला या नाशक है। वह प्राणियों को जीवन प्रदान करने वाला प्राण का सञ्चार है। अग्नि शब्द का अर्थ आग है। मलयालम में इसे विशाखम् तथा तमिल में विसाकम् कहा है इसकी संरचना कुम्भकार के चाक के समान है जो तीन तारों से बनी है।[2] इस नक्षत्र का प्रतीक कुम्भकार का चाक है। इसकी जाति अन्त्य है। यह सत्त्व गुण प्रधान, स्त्री योनि तथा राक्षस गण है। इसका रङ्ग सुनहरा माना गया है। इसका स्वामी बृहस्पति है।[3] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में विशाखा को मिश्र/ साधारण संज्ञक बताया गया है। उपरोक्त कृत्तिका नक्षत्र में जिसका वर्णन है।

4.2.17 अनुराधा

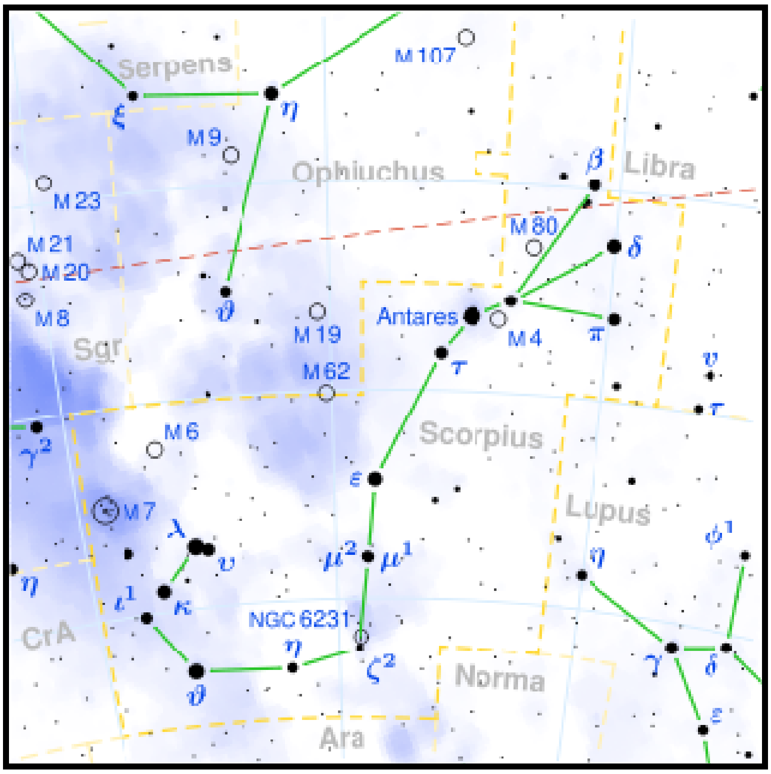
खचक्र का 17वाँ नक्षत्र अनुराधा है जो कि 213°–20' से 226°–40' तक है। अनुराधा का अर्थ सफलता है। Riccioli ने इसे Aakrab Schemali कहा है। अरब में इसका नाम Iclil है। चीनी भाषा में इसे Fang कहा है जिसका अर्थ कक्ष या कमरा है। प्राचीन चीन में इसे Fong कहा जाता है। चीन में इसका एक अन्य नाम Tiensze है, जिसका अर्थ चार घोड़ो वाला स्वर्ग का रथ है। यह अश्वों को पालने व व्यापार करने वालों के लिए पूज्य था। मलयालम में इसे अनिझम तथा तमिल में अनुषम् कहा जाता है। अनुराधा का अर्थ शमनकारी तथा सफल है।

---

1 वै०ज्यो०– व्या० शास्त्री, गिरजाशङ्कर, पृ. 221

2 ल०ज्यो०– व्या० शास्त्री, गिरजाशङ्कर, पृ. 271

3 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16



अनुराधा[1]

शाकल्य के अनुसार यह तीन तारों का समूह है जबकि कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार एक योगतारा और मिला देने से यह चार तारों का समूह बन जाता है। जो कि कभी खिले हुए कमल के समान तथा कभी छाते के समान दिखायी देते है।[2] वैदिक नक्षत्र ज्योतिष में इसे चार तारों के रूप में स्थित किया है जो लड़ी में जड़ी मणियाँ सी प्रतीत होती है।[3]

"अनुराधा नक्षत्रं मित्रो देवता" अनुराधा नक्षत्र का देवता मित्र है। यह नक्षत्र राधा (विशाखा) नक्षत्र के पश्चात् आता है इसलिए इसे अनुराधा कहते है।[4] अनुराधा नक्षत्र का प्रतीक कमल है। इसकी जाति शूद्र है। यह तमस गुण प्रधान, पुरुष योनि तथा देवगण है। इसका रङ्ग मिश्रित वभ्रु (Reddish brown) है। इसका स्वामी शनि

---

1 www.wikipedia.org

2 ल॰ज्यो॰– व्या॰ पुनीता शर्मा, पृ. 270

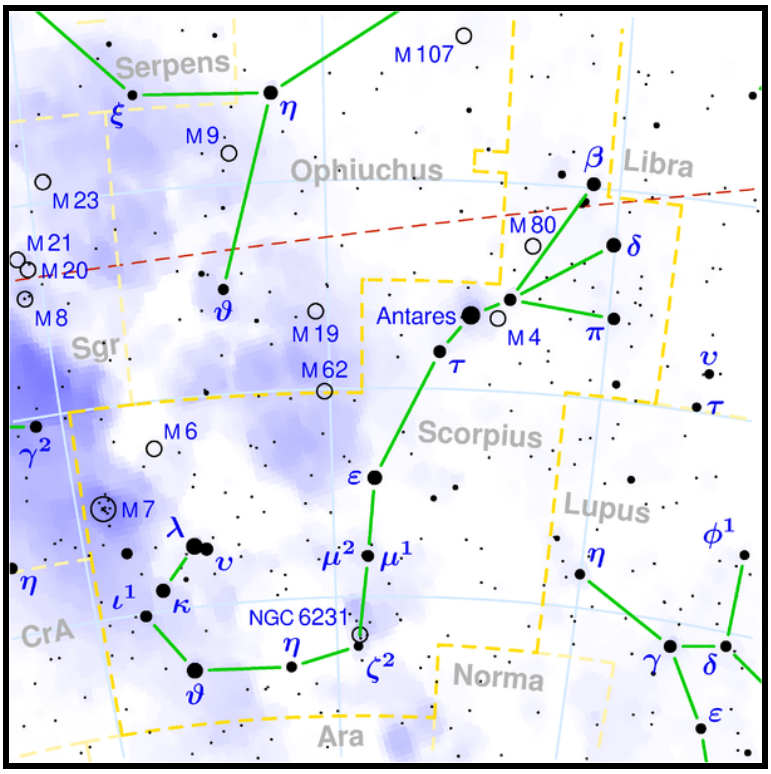
3 मिश्र, सुरेशचन्द्र– वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 43

4 वै॰ज्यो॰– व्या॰ शास्त्री, गिरजाशङ्कर, पृ. 22

है।[1] 'मुहूर्त चिन्तामणि' में अनुराधा को मृदु/मैत्र संज्ञक बताया गया है उपरोक्त मृगशिरा नक्षत्र में इसका वर्णन है।

4.2.18 ज्येष्ठा

नक्षत्र चक्र में 226°–40' से 240°–00' तक ज्येष्ठा नक्षत्र है जो कि संख्या में 18वां है। ज्येष्ठा शब्द का अर्थ पुराना (काल में बड़ा) तथा सबसे बड़ा (स्थिति व कालगत ज्यैष्ठ्य) है। अरब में इसे Cor Scorpil संज्ञा प्रदान की है। चीनी भाषा में इसे Sin तथा प्राचीन चीनी भाषा में इसे Sam कहा जाता था। फारस में चार शाही सितारों में से इसे एक माना जाता था जो कि स्वर्ग के रक्षक थे। Dupis ने इसे Gel अर्थात् रक्तवर्ण, Sogdian ने Maghan Sadwis अर्थात् सिन्दूर रङ्ग का एक महान तारा कहा। मलयालम में इसे थ्रिक्केटा तथा तमिल में केत्तई संज्ञायित किया जाता है।



ज्येष्ठा[2]

---

[1] Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

[2] www.wikipedia.org

यह तीन तारों का समूह है जो कि एक सरल व सीधी रेखा के रूप में एक पेण्डल या कान के कुण्डल सा प्रतीत होता है।[1] **'ज्येष्ठा नक्षत्रमिन्द्रो देवता'** अर्थात् ज्येष्ठा नक्षत्र का स्वामी इन्द्र देवता है। इन्द्र देवताओं में ज्येष्ठ है इसीलिए उनके नक्षत्र को ज्येष्ठ कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि ज्येष्ठा नक्षत्र इन्द्र की प्रिया है। देवासुर संग्राम में इन्द्र ने इसी नक्षत्र में असुरराज वृत्र को मारा था। इन्द्र का निवास स्थान अमरावती है।[2]

ज्येष्ठा नक्षत्र का प्रतीक कुण्डल है। इसकी जाति भृत्य (सेवा करने वाले) है। यह सत्त्व गुण प्रधान, स्त्री योनि तथा दानव गण है। इसका रङ्ग किञ्चित् पीत मिश्रित श्वेत ही है। इसका स्वामी ग्रह बुध है।[3] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में ज्येष्ठा नक्षत्र को तीक्ष्ण/दारूण संज्ञक बताया गया है जिसका वर्णन उपरोक्त आर्द्रा नक्षत्र में वर्णित है।

4.2.19 मूल

रवचक्र का 18वाँ नक्षत्र मूल है जिसका अर्थ जड़ है। 140°–00' से 243°–20' तक मूल नक्षत्र है। मूल का एक अन्य नाम 'विचर्तौ' भी है। मलयालम और तमिल में इसे मूलम् कहा जाता है। अरब मंजिल ने इसे दुर्भाग्यपूर्ण नक्षत्र माना है और इसका नाम Al-Shaulah किया है। कोप्टिक एजिप्ट में इसका नाम Minamref है जिसका अर्थ रस्सी या डोरी है। चीनी भाषा में इसका नाम Wei तथा प्राचीन चीन में Mi या Vi था।[4]

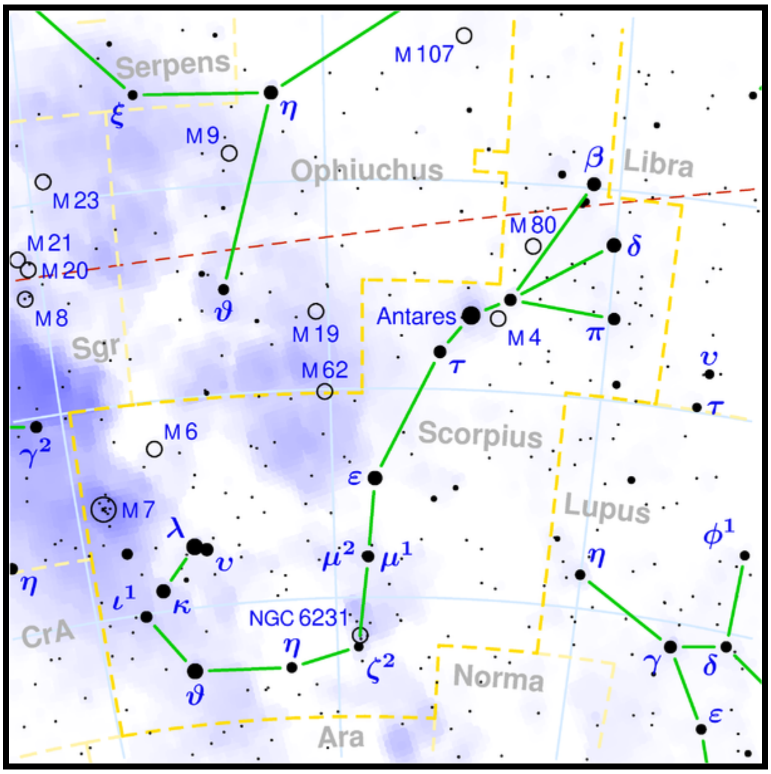
---

1 ल०ज्यो०– व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 271

2 वै०ज्यो०– व्या० शास्त्री, गिरजाशङ्कर, पृ. 222

3 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

4 ल०ज्यो०– व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 272



मूल[1]

मूल नक्षत्र में 11 तारे हैं जो देखने में शेर की पूँछ के समान दिखायी देता है।[2] खण्ड कटक ने इसमें दो तारों की गणना की है। शाकल्य के मतानुसार मूल नक्षत्र में नौ तारे है।[3] इस प्रकार मूल नक्षत्र में तारे की संख्या के विषय में मतभेद है लेकिन स्वरूप सब एक जैसा बताते है।

मूल नक्षत्र का देवता निर्ऋति है। इसका प्रतीक शेर की पूँछ है इसकी जाति अन्त्य कसाई है। गुण तमस, योनि नपुंसक तथा गण राक्षस है। इसका रङ्ग भूरा मिश्रित पीला है। पाराशर दशा पद्धति में इसका स्वामी ग्रह केतु है।[4] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में मूल नक्षत्र को तीक्ष्ण संज्ञक बताया गया है। जिसका वर्णन आर्द्रा नक्षत्र में पहले ही कर दिया है।

---

1 www.wikipedia.org

2 मिश्र, सुरेशचन्द्र- वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 44

3 ल॰ज्यो॰- व्या॰ पुनीता शर्मा, पृ. 272

4 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

मूल, ज्येष्ठा, श्लेषा, मघा, रेवती, अश्विनी ये 6 नक्षत्र गण्डमूल नक्षत्र कहलाते है। इन नक्षत्रों में जातक का जन्म होने पर प्रायः अशुभ होता है।[1] इनमें से ज्येष्ठा एवं मूल नक्षत्र को अभूक्त मूल तथा शेष चार नक्षत्र गण्डान्त कहलाते है। अभूक्त मूल नक्षत्र उत्पन्न जातक कुल का नाशक होता है[2] इनका सबसे बड़ा प्रमाण गोस्वामी तुलसीदास है।

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म होते ही माता-पिता ने उनका त्याग कर दिया। एक दासी चुनिया ने इनका पालन पोषण किया परन्तु नक्षत्र के प्रभाव से माता-पिता तथा दासी (चुनिया) तीनों ही स्वर्ग सिधार गए। अतः लोग गोस्वामी तुलसीदास को अभागा समझकर छूना तो दूर मुख देखना भी अपशकुन समझते है।[3]

4.2.20 पूर्वाषाढा

पूर्वाषाढा नक्षत्र, नक्षत्र चक्र का 20वाँ नक्षत्र है। जो 243°–20' से आरम्भ होकर 266°–40' तक जाता है। पूर्व शब्द का अर्थ पहला या गणना में प्रथम तथा आषाढ़ का अर्थ 'अधीन न होना', 'वंश में न रहना है।'[4] वैदिक साहित्य में ब्रह्मचारी के पवित्र पलाश दण्ड को आषाढ़ कहा गया है।[5] मलयालम और तमिल में इसे

---

1 मिश्र, सुरेशचन्द्र- वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 64

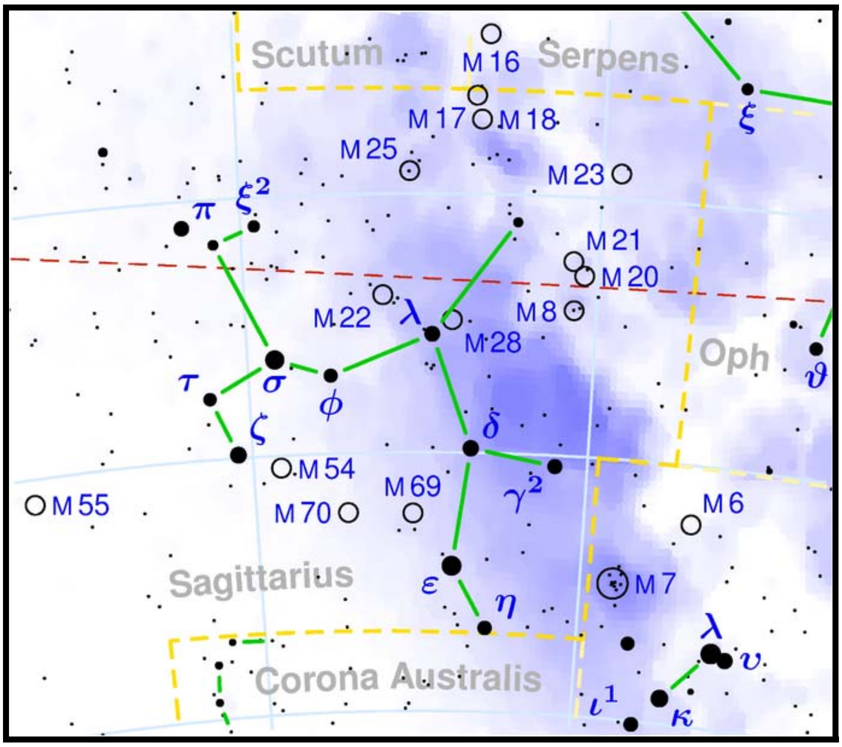
2 वै॰ज्यो॰- व्या॰ शास्त्री, गिरजाशङ्कर, पृ. 224

3 दुखहु दुःखित मोहि हेरे।
तनु जन्यो तज्यो कुटिल कीट ज्यो माता पिता हूँ।।
मातु पिता जग जाइ तज्यो विधिहुँ न लिखी कुछ भाल भलाई।
नीच निरादर भाजन कादर, कूकर टूकन लागि ललाई।
राम सुभाउ सुन्यो तुलसी प्रभु सो कह्यो वारक पेट खलाई।
स्वारथ को परमारथ को रघुनाथु सो साहेब खोरि न लाई।।
— कवितावली; उत्तरकाण्ड, 57
पातन पीन, कुदारिद दीन मलीन धरै कथरी करवा है,
लोकु कहै विधिहुँ न लिख्यो सपनेहुँ नहि अपरे वर वाहै।।
— वही; 56

4 ल॰ज्यो॰- व्या॰ पुनीता शर्मा, पृ. 272

5 वै॰ज्यो॰- व्या॰ शास्त्री, गिरजाशङ्कर, पृ. 226

पूराढम कहा गया है। पश्चिमी अरब में इसका नाम Al-Naām al Wārid (पूर्वाषाढा व उत्तराषाढा) तथा पूर्वी अरब में Al-Na'ām al ṣādirah है। उन्होंने इसका सम्बन्ध पशुओं का झुण्ड, ऊँटो आदि के साथ स्थापित किया है। ग्रीक ने इसे Sagittari तथा चीन ने इसका नाम Ki अर्थात् 'चलनी' दिया। प्राचीन चीन में इसे Kit कहा जाता था जो कि पूर्वाषाढा व उत्तराषाढा का संयुक्त नाम था।



पूर्वाषाढा[1]

पूर्वाषाढा चार तारों का नक्षत्र है जो आकृत्ति में हाथी के बाहर निकले हुए दाँत के समान है।[2] वैदिक नक्षत्र ज्योतिष में तारों की संख्या दो मानी गयी है जो क्रोध में चिघाड़ते हुए हाथी के ऊपर उठे हुए दाँत के समान है।[3] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि'[4] में भी वैदिक नक्षत्र ज्योतिष के समान तारों की संख्या दो मानी गयी है।

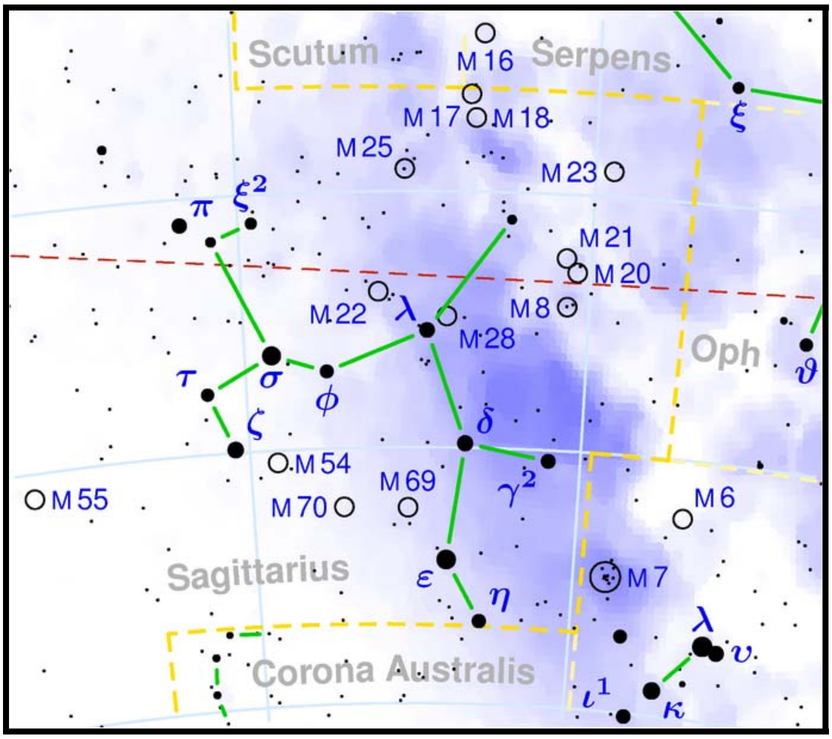
---

1 www.wikipedia.org
2 ल०ज्यो०– व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 272
3 मिश्र, सुरेशचन्द्र– वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 45
4 त्रित्र्यङ्गपञ्चाग्निकुवेदवह्नय: शरेषुनेत्राश्विशरेन्दुभूकृता:।
वेदाग्निरूद्राश्वियमाग्निवह्नयोब्धय: शतं द्विद्विरदा भतारका:।।
— मु०चि०; नक्षत्र प्रकरणम्, 58

पूर्वाषाढा नक्षत्र का प्रतीक गजदंत है। इसकी जाति ब्राह्मण है, गुण रजस, स्त्री योनि तथा मनुष्य गण है। इसका रङ्ग काला है। इसका स्वामी ग्रह शुक्र है। इसका देवता जल है।[1] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में इसे उग्र/क्रूर संज्ञक बताया गया है उपरोक्त भरणी नक्षत्र में इसका वर्णन कर दिया गया है।

4.2.21 उत्तराषाढा

उत्तराषाढा भचक्र का 21वाँ नक्षत्र है जो 266°–40' से प्रारम्भ होकर 280°–00' तक है उत्तर का अर्थ है Latter बाद में या परवर्ती और आषाढ का अर्थ है वंश में न रहना। मलयालम और तमिल में इसे उथिरढम् कहा गया है। अरब ने इसे 19वीं मंजिल मानकर इसका नाम Al Baldah किया। जिसका अर्थ शहर या जिला है। अलबरूनी ने पूर्वाषाढा व उत्तराषाढा नक्षत्र को the head of the sagittarius and his two locks कहा है। पूर्वाषाढा व उत्तराषाढा नक्षत्र के बीच का अन्तर, दोनों भृकुटियों के मध्य अन्तर जितना है। प्राचीन चीन में इसे Dev कहा जाता है।



उत्तराषाढा[2]

---

1 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

2 www.wikipedia.org

उत्तराषाढा चार नक्षत्रों का समूह है जो कि शय्या के समान दिखता है।[1] वैदिक नक्षत्र ज्योतिष[2] में तारों की संख्या दो मानी गयी है। जिसकी आकृत्ति पलंग या चौकी के सदृश है। 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में भी तारों की संख्या दो मानी गयी है। जिसका वर्णन इससे पूर्व के नक्षत्र में कर दिया गया है। इस प्रकार तारे की संख्या के विषय में मतभेद है पर स्वरूप एक सा ही है।

इस प्रकार प्रतीक एक छोटी चारपाई है। जिसकी जाति क्षत्रिय, गुण रजस, स्त्री योनि तथा मानव गण है। इसका रङ्ग ताम्बे जैसा है। इसका स्वामी ग्रह सूर्य है।[3] इसका देवता विश्वेदेवा है। **"आषाढा नक्षत्रं विश्वेदेवा देवता"** ऋषियों ने समस्त देवों के समूह को विश्वेदेवा कहा है।[4] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में इसे ध्रुव/स्थिर संज्ञक माना गया है। जिसका वर्णन रोहिणी नक्षत्र में पहले ही कर दिया है।

4.2.22 श्रवण

22वाँ नक्षत्र श्रवण है जो 280°–00' से प्रारम्भ होकर 293°–20' तक जाता है, श्रवण शब्द का अर्थ 'सुनना' है। मलयालम में इसे थिरूवोनम तथा तमिल में श्रवणम कहा जाता है। फारसी में इसे Muru अर्थात् पक्षी कहा गया है। चीनी में इसका नाम Ho Coo है जिसका अर्थ नदी व ड्रम है।

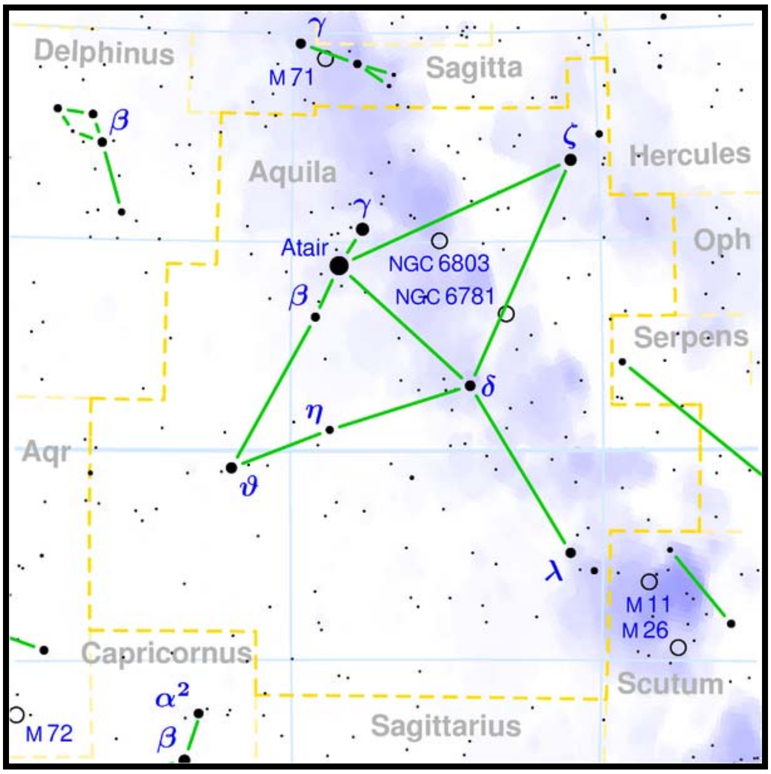
---

1 ल॰ज्यो॰– व्या॰ पुनीता शर्मा, पृ. 272

2 मिश्र, सुरेशचन्द्र– वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 45

3 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

4 वै॰ज्यो॰– व्या॰ शास्त्री, गिरजाशङ्कर, पृ. 227



श्रवण[1]

श्रवण नक्षत्र में तीन तारे है जो कि तीर की तरह दिखायी देते है और कभी-कभी उनकी आकृत्ति मनुष्य के कान के सदृश्य है।[2] तीन तारों वाला यह नक्षत्र समूह विष्णु के वामनावतार में तीन पग जमीन मांगने के लिए चले गए तीन कदम है। वैदिक काल में यह गरूढ के रूप में पहचाना जाता था।[3] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि'[4] में भी इसका स्वरूप वामन है।

---

1 www.wikipedia.org

2 ल०ज्यो०- व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 272-74

3 मिश्र, सुरेशचन्द्र- वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 46

4 तोरणं बलिनिभं च कुण्डलं सिंहपुच्छगजदन्तमञ्चका:।
त्र्यास्रि च त्रिचरणाभमर्दलो वृत्तमञ्चयमलाभमर्दला:।।
— मु०चि०; नक्षत्र प्रकरणम्, 60

श्रवण नक्षत्र का देवता भगवान विष्णु है। वैदिक देवशास्त्र के अनुसार त्रिदेवों में से भगवान विष्णु एक है जो जगत पालन कर्त्ता है।[1] इसकी जाति अवर तम है। इसका गुण रजस, पुरुष योनि तथा देव गण है। इसका हल्का नीला रङ्ग है। इसका स्वामी ग्रह चन्द्रमा है। 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में इसे चर/चल संज्ञक माना गया है। जिसका वर्णन पुनर्वसु नक्षत्र में है।

4.2.23 धनिष्ठा

नक्षत्र चक्र में 293°–20' से 306°–40' तक 23वाँ नक्षत्र धनिष्ठा है। यह संख्या में 23वाँ नक्षत्र है।[2] धनिष्ठा नक्षत्र के लिए वेदाङ्ग ज्योतिष में 'श्रविष्ठा' शब्द का प्रयोग हुआ है।[3] श्रविष्ठा शब्द का अर्थ 'अत्यधिक बलशाली है।' धनिष्ठा नक्षत्र को फ्रांसीसी में dauphin, इतावली में delfino, जर्मनी में delphin, ग्रीक में delphini, लैटिन में delphis या delphin कहा जाता है। अलबरूनी ने इसका अरबी नाम Al-kaud किया, जिसका अर्थ है सवारी वाला ऊँट। मलयालम और तमिल में इसका नाम अवित्तम है।[4]

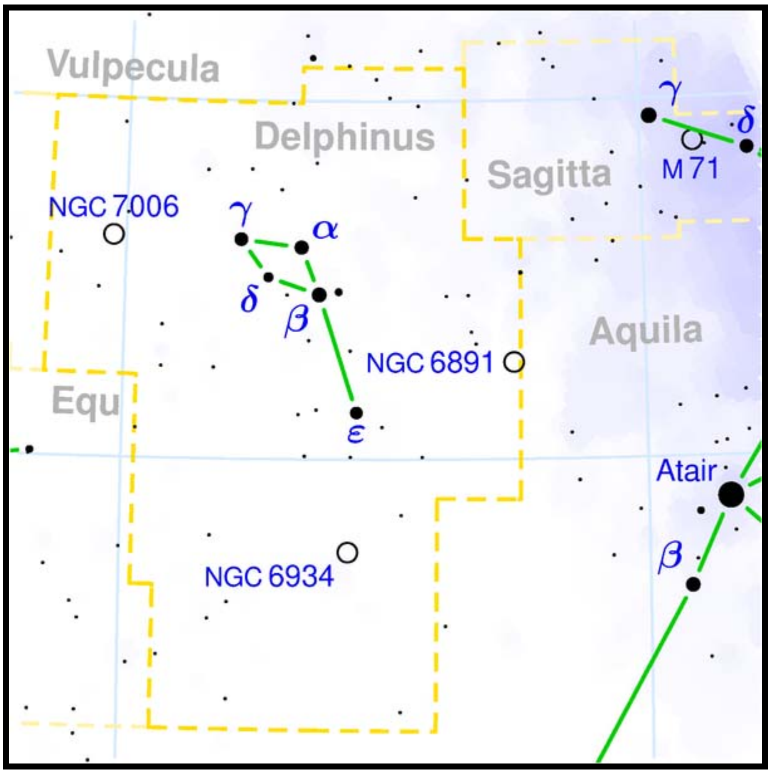
---

1 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

2 ल॰ज्यो॰– व्या॰ पुनीता शर्मा, पृ. 274

3 प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्दमसावुदक!
– ऋक् ज्यो॰; 6

4 ल॰ज्यो॰– व्या॰ पुनीता शर्मा, पृ. 274



धनिष्ठा[1]

चार तारों वाला यह मण्डल मृंदग के रूप में पहचाना जाता है। मतान्तर से इसमें 114 ताराओं का समूह व सात पंक्तियां है। प्रधानतया चार तारे ही अधिक महत्त्वपूर्ण है।[2] तैत्तिरीय ब्राह्मण में इस नक्षत्र का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग बहुवचनान्त हुआ है तथा चार तारों के अस्तित्व की सूचना दी गई है।[3] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में भी तारों की संख्या 4 मानी गयी है जिसका वर्णन पूर्वाषाढा नक्षत्र में उद्धृत है।

इसके देवता अष्टवसु है। इस नक्षत्र का प्रतीक एक सङ्गीत वाद्य मृंदग है। इसकी जाति भृत्य, गुण तमस, स्त्री योनि तथा गण राक्षस है। इसका रङ्ग रजतमय धूम

---

1 www.wikipedia.org

2 मिश्र, सुरेशचन्द्र- वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 46

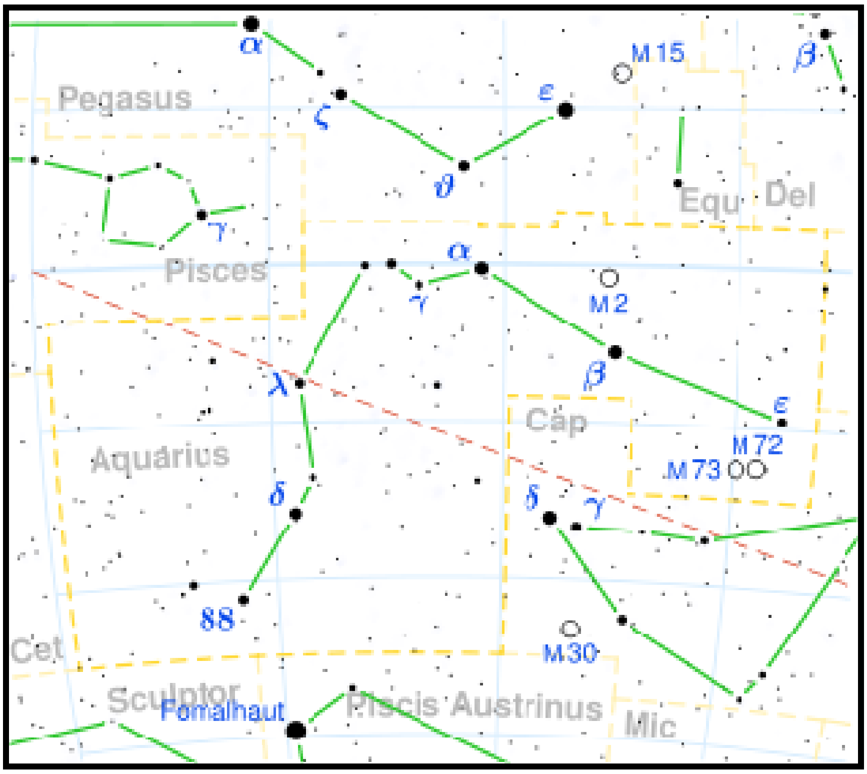
3 चतस्रो देवीरजराः श्रविष्ठाः।

— तै०ब्रा०; 3-1-2-6

है। इसका स्वामी ग्रह भौम है।[1] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में इसे चल/चर संज्ञक बताया गया है। जिसका वर्णन पुनर्वसु नक्षत्र में पहले ही कर दिया गया है।

4.2.24 शतभिषा

24वाँ नक्षत्र शतभिषा है, जो 306°–40' से प्रारम्भ होकर 320°–40' तक जाता है। कई स्थानों पर इसका नाम शतभिषज, कही शतभिचत् तथा कही–कही पर शतभिशत मिलता है। भिषज का अर्थ वैद्य है, तथा शत का अर्थ सौ इसलिए संख्या के आधार पर नामकरण किया गया है। मलयालम में इसे छत्थ्यम तथा तमिल में सथ्यम कहा जाता है अरब मंजिल में इसका नाम Al-sád al mulk किया है। ग्रीक में इसे Aquaril कहते है।



शतभिषा[2]

[1] Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

[2] www.wikipedia.org

खण्डकटक में शतभिषा को एक तारे वाला कहा गया है।[1] वैदिक नक्षत्र ज्योतिष में तारों की संख्या 100 मानी गयी है। जिसकी आकृति एक गोलाकार झुंड है।[2] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में भी तारों की संख्या 100 है। पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में जिसका वर्णन है।

इस नक्षत्र का देवता वरूण है जो कि वर्षा का देवता है। जब अकाल या सूखा पड़ता है तब इसी देवता की पूजा की जाती है। यह औषधियों का भी देवता है।[3] इस नक्षत्र का प्रतीक सौ पुष्प है। इसकी जाति अन्त्य-बोधक है। इसका गुण तमस, योनि-नपुंसक तथा गण राक्षस है। इसका रङ्ग Aquamarine है तथा स्वामी ग्रह राहु है।[4] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में इसे चर/चल संज्ञक बताया गया है। जिसका वर्णन पहले ही पुनर्वसु नक्षत्र में कर दिया है।

4.2.25 पूर्वाभाद्रपद

नक्षत्र चक्र में 25वाँ नक्षत्र पूर्वाभाद्रपद है जो 320°–00' से 333°–20' तक है पूर्व शब्द का अर्थ 'पहले', भद्र का 'सुन्दर' तथा पद का अर्थ 'पैर' है। इस नक्षत्र का एक अन्य नाम प्रोष्ठपाद भी है। मलयालम में इसे पूरूरूत्तथी तथा तमिल में पूरत्तथी कहा है। अलबरूनी ने इसे Al-Fargh al Awwal कहा है, जिसका अर्थ प्रथम, ऊँचा और फौवारा है। फारसी में इसे Miyan कहा जाता है। ग्रीक में इसे Pegasi तथा चीन में इसकी संज्ञा ying she या Shin है जिसका अर्थ है घर।[5]

---

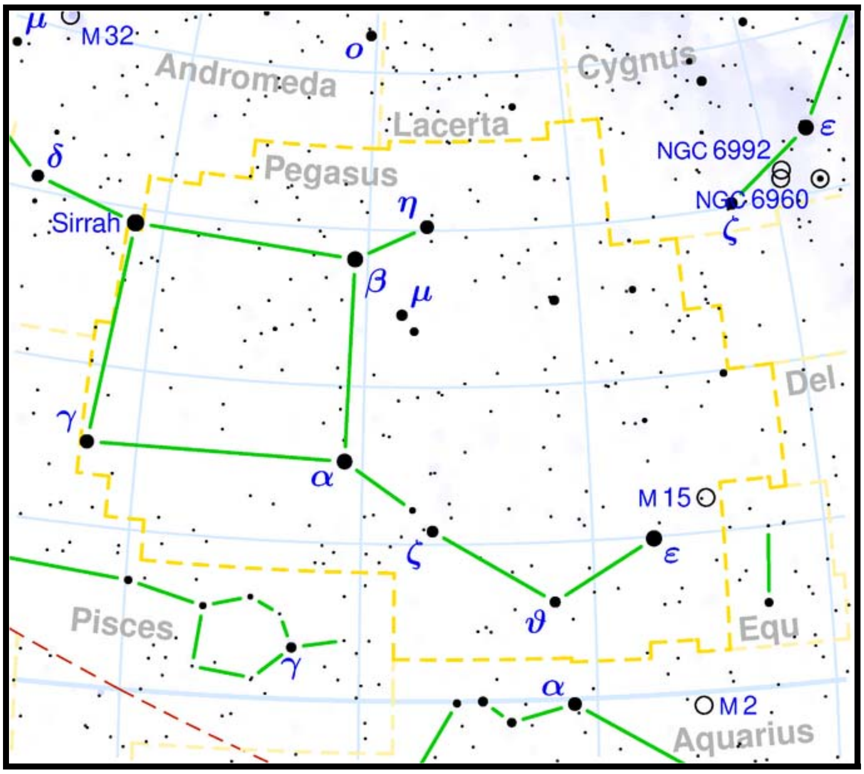
1 ल०ज्यो०- व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 275

2 मिश्र, सुरेशचन्द्र- वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 46

3 ल०ज्यो०- व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 275

4 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

5 ल०ज्यो०- व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 276



पूर्वाभाद्रपद[1]

दो तारों वाला यह मण्डल दो जुड़वा बच्चों की तरह दिखता है इसी से इसे यमल सदृश कहा है।[2] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में तारों की संख्या दो मानी है जिसका स्वरूप मंच की तरह है। जिसका वर्णन पूर्वाषाढा नक्षत्र में है। लगध ज्योतिष[3] में तारों की संख्या दो है पर आकृति तलवार की भाँति है। इस प्रकार पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में स्वरूप सब भिन्न-भिन्न बताते है पर संख्या के विषय में सब एक है।

इस नक्षत्र का देवता अजैकपाद् है। जो कि भगवान शिव या रूद्र का एक रूप है। इसकी जाति ब्राह्मण, गुण-सत्त्व, पुरूष योनि तथा गण मनुष्य है इसका रङ्ग रजतमय धूम्र (Silver grey) है। तथा स्वामी ग्रह बृहस्पति है।[4] पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र को

---

1 www.wikipedia.org

2 मिश्र, सुरेशचन्द्र- वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 47

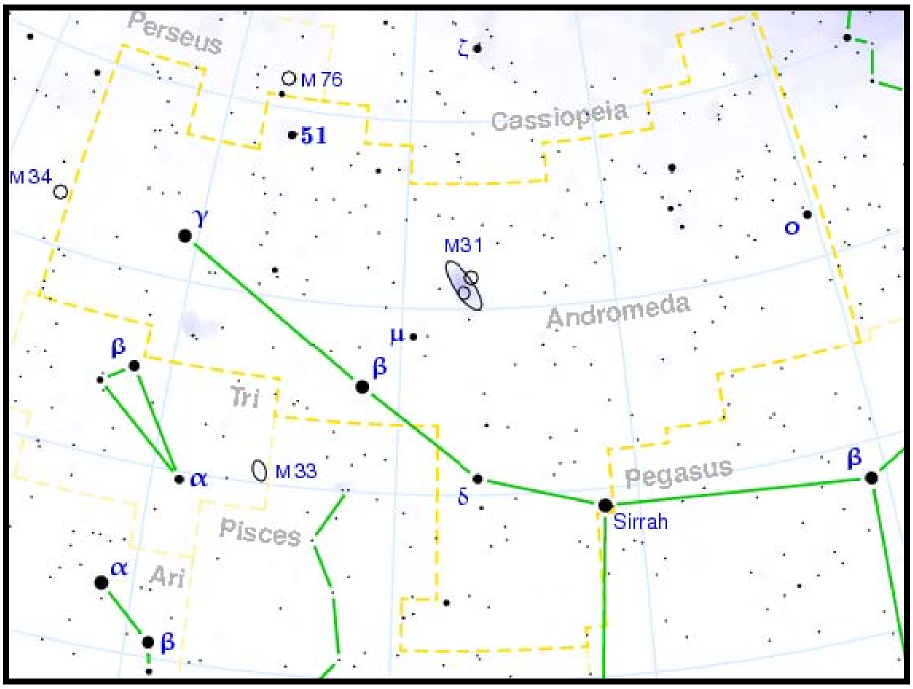
3 ल०ज्यो०- व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 276

4 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

पोष्ठपाद् भी कहते है जिसका अर्थ है जिसके चरण (पाद) विशेष प्रौढ़ (पुष्ट) हो। ऋग्वेद में प्रोष्ठ का अर्थ शुभ कहा गया है।[1] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र को उग्र/क्रूर संज्ञक बताया गया है जिसका वर्णन पहले ही भरणी नक्षत्र में वर्णित है।

4.2.26 उत्तराभाद्रपद

उत्तराभाद्रपद नक्षत्र 333°–20' से 346°–40' तक है। यह 26वाँ नक्षत्र है। उत्तर का अर्थ 'बाद में', भद्र का अर्थ 'शुभ' या 'कल्याणकारी' तथा पद का अर्थ 'पैर' है। इस प्रकार उत्तराभाद्रपद का अर्थ हुआ- सुन्दर बांया पैर। मलयालम में इस नक्षत्र को उत्तथरथी तथा तमिल में उथरत्तीथी कहा जाता है। ग्रीक में इसे Pegasis तथा चीनी में Pi या Peih कहा जाता है।[2]



उत्तराभाद्रपद[3]

---

1 प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरी:।
स्त्रियो: या पुष्यगन्धास्ता: सर्वा: स्वापयामसि।।
— ऋ०; 7–55–8

2 ल०ज्यो०– व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 277

3 www.wikipedia.org

इसमें 2 तारे चौकी का आकार प्रदर्शित करते है। इसीलिए इसका स्वरूप पलंग या चौकी के समान है।[1] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में भी तारों की संख्या दो मानी है पर आकृत्ति यमल के सदृश जिसका वर्णन ऊपर के नक्षत्रों पर है।

उत्तराभाद्रपद नक्षत्र आध्यात्मिक स्तर पर उन्नति व सफलता का द्योतक है। इसका देवता अहिर्बुध्न्य है जिसका अर्थ भूमि पर चलने वाला सर्प है[2], इस नक्षत्र का प्रतीक एक जोड़ा है। इसकी जाति क्षत्रिय, गुण तमस्, पुरुष योनि तथा मनुष्य गण है। इसका रङ्ग बैंगनी है तथा शनि स्वामी ग्रह है।[3] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में इसे ध्रुव/स्थिर संज्ञक माना गया है। जिसका वर्णन रोहिणी नक्षत्र में है।

4.2.27 रेवती

रेवती 27वाँ अन्तिम नक्षत्र है जो 346°–40' से प्रारम्भ होकर 360°–00' तक है।[4] रेवती शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के नवम मण्डल में हुआ है।[5] रेवती शब्द का अर्थ धनी या विपुलता है। मलयालम व तमिल दोनों में इसे रेवती ही कहा जाता है ग्रीक में इसे Piscium तथा चीन में इसका नाम Koei तथा Kwei है।[6]

---

1 मिश्र, सुरेशचन्द्र- वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 47

2 ल०ज्यो०– व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 277

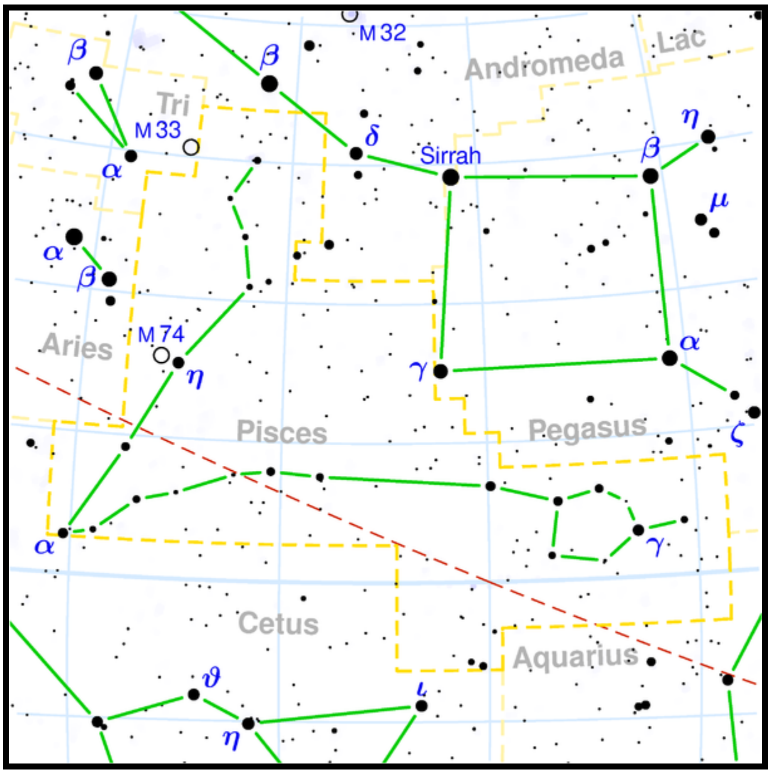
3 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

4 ल०ज्यो०– व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 277

5 उपमास्वबृहती रेवतीरिषोधि स्तोत्रस्य पवमान नोगहि।

— ऋ०; 9–72–9

6 ल०ज्यो०– व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 277



रेवती[1]

यह 32 तारों का समूह है जो कि मृंदग के समान आकृत्ति बनाता है। इसी कारण इसे मुरजसदृश कहा गया है।[2] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में भी रेवती नक्षत्र में तारों की संख्या 32 बताई गयी है जिसकी आकृत्ति मृदंग के समान है। उपरोक्त नक्षत्र में जिसका वर्णन है।

रेवती नक्षत्र में तीन तारें है जो मछली की आकृत्ति बनाते है। अतः इसका प्रतीक मछली है। जाति शूद्र, गुण सत्व, स्त्री योनि तथा देव गण है। इसका रङ्ग भूरा है। इसका स्वामी ग्रह बुध है।[3] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में इसे मृदु/मैत्र संज्ञक बताया गया है जिसका वर्णन मृगशिरा नक्षत्र में है।

---

1 www.wikipedia.org

2 मिश्र, सुरेशचन्द्र- वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 47

3 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

4.2.28 अभिजित्

ज्योतिष के विद्वानों ने नक्षत्र चक्र में 27 नक्षत्रों की गणना की है परन्तु कई आचार्यों ने 28वाँ नक्षत्र अभिजित को भी स्वीकार किया है[1] तथा अभिजित नक्षत्र की स्थिति उत्तराषाढा नक्षत्र के बाद मानते है। जो 273°–40' से आरम्भ होकर 280°–47' तक है। मलयालम व तमिल में इस नक्षत्र को अभिजित् कहा जाता है। अरब मंजिल में इसे Wega कहा गया है। लैटिन लेखकों ने इसका नाम Lyra, कहा है। बेबीलोन में इस तारे को Tir-anna अर्थात् स्वर्ग का जीवन कहा। चीनी नक्षत्रों में इसका नाम Chin Neu है जिसका अर्थ धागों को बुनती हुई मुग्धा कन्या या बहिन है।[2]

अभिजित् नक्षत्र में तीन तारे है जो त्रिभुज की आकृत्ति का निर्माण करते है।[3] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में भी नक्षत्रों की संख्या 3 मानी गयी है जिसका स्वरूप त्रिभुज के समान है जिसका वर्णन उपरोक्त नक्षत्र में है।

इस नक्षत्र का देवता ब्रह्मा है, जो समूचे ब्रह्माण्ड का पिता है। वह सभी जन्य पदार्थों का जनक है।[4] इसकी जाति वैश्य, गुण–तमस तथा गण देव है। इसका रङ्ग भूरा मिश्रित पीला है। इसका स्वामी ग्रह सूर्य है।[5] 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' में इसे क्षिप्र/लघु संज्ञक बताया गया है। उपरोक्त अश्विनी नक्षत्र में इसका वर्णन पहले ही कर दिया है।

---

1 ब्राह्मणे या अष्टाविंशो नक्षत्राणाम्।

— तै०ब्रा०; 1–5–3–4

2 ल०ज्यो०– व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 277–78

3 मिश्र, सुरेशचन्द्र– वैदिक नक्षत्र ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006, पृ. 45

4 ल०ज्यो०– व्या० पुनीता शर्मा, पृ. 278

5 Shubhakaran, K.T.- ***Nakshatra***, Sagar Publications, New Delhi, 2004, P. 7-16

4.3 वेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्र-विचार

वेदाङ्ग ज्योतिष के तीनों संस्करण अर्थात् ऋक्, याजुष् तथा आथर्वण में नक्षत्र-विषयक प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। इन वेदाङ्ग ग्रन्थों में नक्षत्रों के नाम[1], उनसे सम्बन्धित देवताओं के सङ्केत[2], सम्वत्सर के आरम्भ तथा अयन के आरम्भ में नक्षत्रों का निर्देश[3], नक्षत्रों का शुभाशुभत्व[4], वर्गीकरण[5] तथा इन नक्षत्रों में करने योग्य कार्यों[6] से सम्बन्धित तथ्यों का समावेश है। अतः आवश्यक है कि इन ग्रन्थों में प्राप्त नक्षत्र-विषयक सामग्री पर पृथक्-पृथक् विचार किया जाय।

---

[1] जौ द्रा गः खे श्वे ही रो षाश्चिन्मूषकृण्यः सूमाधाणः।
रो मृ (म्रे) घाः स्वापो जः कृष्यो ह ज्ये ष्ठा इत्यृक्षा लिङ्गैः।।
— ऋक् ज्यो॰; 14

[2] अग्निः प्रजापतिः सोमो रुद्रोऽदितिर्बृहस्पतिः।
सर्पाश्च पितरश्चैव भगश्चैवार्यमापि च।।
सविता त्वष्टाऽथ वायुश्चेन्द्राग्नी मित्र एव च।
इन्द्रो निर्ऋतिरापो वै विश्वेदेवास्तथैव च।।
विष्णुर्वसवो वरुणोऽज एकपात् तथैव च।
अहिर्बुध्न्यस्तथा पूषा अश्विनौ यम एव च।।
— याजुष् ज्यो॰; 32-34

[3] प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्धे दक्षिणाऽर्कस्य माघश्रावण्योः सदा।।
— ऋक् ज्यो॰; 6

[4] उग्राण्यार्द्रा च चित्रा च विशाखा श्रवणोऽश्वयुक्।
क्रूराणि तु मघा स्वाती ज्येष्ठां मूलं यमस्य यत्।।
— याजुष् ज्यो॰; 36

[5] साधकं तु चतुर्विंशं षष्ठं पञ्चदशं च यत्।
नैधनं पञ्चविंशं तु षोडश सप्तमं तथा।।
मैत्रे सप्तदशं विद्यात् षडविंशतिश्चाष्टमम।
सप्तविंशपरं मैत्रं नवमष्टादशं च यत्।।
— आथर्वण ज्यो॰; 108-109

[6] याजुष् ज्यो॰; 36

4.3.1 ऋक्-ज्योतिष

'ऋक् ज्योतिष' ज्योतिष वेदाङ्ग का सर्वप्रथम ग्रन्थ है। इसमें 27 नक्षत्रों के नाम अत्यन्त वैज्ञानिक तथा सूत्रात्मक रूप में उपलब्ध होते है।[1] अश्विनी, आर्द्रा, पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, आश्लेषा, चित्रा, मूल, शतभिषक, भरणी, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, अनुराधा, श्रवण, रेवती, मृगशिरा, मघा, स्वाती, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, कृत्तिका, पुष्य, हस्त, ज्येष्ठा, धनिष्ठा आदि का नामोल्लेख है।[2] नक्षत्रों का नामोल्लेख करने वाला यह सूत्र यद्यपि दो पंक्तियों का है तथापि इसमें समस्त नक्षत्र एक विशेष क्रम में इंगित किए गए है। इस श्लोक में कोई नक्षत्र किस स्थान में आता है इसे गिनकर तुरंत जाना जा सकता है जब सूर्य उस नक्षत्र में रहता है तो पूर्णिमा या अमावस्या के क्षण नक्षत्र के आदि बिन्दु से सूर्य कितना हटा रहता है।[3] इन 27 नक्षत्रों के लिए प्रयुक्त शब्दों के चयन में वैज्ञानिकता और प्रौढता के दर्शन होते है। ये 27 अक्षर इस प्रकार चुने गए है कि उनसे बिना किसी प्रकार की दुविधा के सत्ताईसों नक्षत्रों का पता चल जाता है। इस श्लोक में ऋषि ने नक्षत्र सूचक अक्षर नक्षत्र के नाम का आदि, मध्य या अंत वाले अक्षर को प्रयोग में लाया है। जहाँ ऐसा करने पर भ्रम होने का डर था या जहाँ एक ही नाम के दो नक्षत्र थे, वहाँ नक्षत्र के देवता के नाम के अक्षर को चुन लिया गया है।[4] एक अन्य श्लोक में कहा गया है कि चन्द्रमा और सूर्य धनिष्ठा नक्षत्र में एकत्र होते है तो उस समय युग, माघमास, तथा शुक्ल पक्ष का प्रारम्भ होता है।[5] अयन विचार के क्रम

---

1 जौ द्रा गः खे श्वे ही रो षाश्चिन्मूषक्ण्यः सूमाधाणः।
रो मृ (म्रे) घाः स्वापो जः कृष्यो ह ज्ये ष्ठा इत्यृक्षा लिङ्गैः।।
— ऋक् ज्यो०; 14

2 वही

3 गोरख प्रसाद– भारतीय ज्योतिष का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2004, पृ. 43

4 वही

5 स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदादियुगं माघस्तपः शुक्लोऽयनं ह्युदक्।।
— ऋक् ज्यो०; 5

में भी विभिन्न नक्षत्रों को आधार माना गया है और कहा गया है कि युगादि के आरंभ में सूर्य व चन्द्रमा उत्तर की ओर तथा आश्लेषा के आधे में दक्षिण की ओर मुड़ते है।[1] अयनारम्भ में नक्षत्रों की स्थिति का भी बड़े ही प्रभावोत्पादक रूप में निरुपण प्राप्त होता है। इस सन्दर्भ में कहा गया है कि वसु, त्वष्टा, भव, अज, मित्र, सर्प, अश्विनी, जल धाता और ब्रह्मा जिन-जिन नक्षत्रों के स्वामी है अयनारम्भ में चन्द्रमा उन-उन नक्षत्रों में रहता है।[2] स्पष्ट है कि ऋषि का तात्पर्य धनिष्ठा, चित्रा, आर्द्रा, पूर्वाभाद्रपद, अनुराधा, आश्लेषा, अश्वयुज, पूर्वाषाढा, उत्तराफाल्गुनी और रोहिणी नक्षत्रों से है क्योंकि उपरोक्त देवता इन्हीं नक्षत्रों के स्वामी है।[3] सत्ताईसों नक्षत्र के स्वामियों का निरूपण यहाँ मिलता है।[4] यद्यपि इस ग्रन्थ में नक्षत्र तथा उनके देवताओं का नामोल्लेख साथ-साथ नहीं हुआ है फिर भी स्पष्ट है कि देवताओं का आरंभ कृत्तिका नक्षत्र के देवता अग्नि से ही हुआ है।[5] ऋक् ज्योतिष के अनुसार नक्षत्र तथा उनके देवताओं[6] को निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

---

1 प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्धे दक्षिणाऽर्कस्य माघश्रावणयोः सदा।।
— ऋक् ज्यो॰; 6

2 वसुस्त्वष्टाभवोऽजश्च मित्रः सर्पोऽश्विनौ जलम्।
अर्यमा कोऽयनाद्याः स्युरर्धपञ्चमभस्त्वृतुः।।
— वही; 9

3 अग्निः प्रजापतिः सोमो रूद्रोऽदितिबृहस्पती।
सर्पाश्च पितश्चैव भगश्चैवार्यमाऽपि च।।
सविता त्वष्टाऽथ वायुश्चेन्द्राग्नी मित्र एव च।
इन्द्रो निर्ऋतिरापो वै विश्वेदेवास्तथैव च।।
विष्णुर्वसवो वरुणोऽज एकपात् तथैव च।
अर्हिर्बुध्न्यस्तथा पूषा अश्विनौ यम एव च।।
— वही; 25-27

4 वही

5 ल॰ज्यो॰, व्या॰ पुनीता शर्मा, पृ. 245

6 ऋक् ज्यो॰; 25-27

नक्षत्र	देवता	नक्षत्र	देवता
कृत्तिका	अग्नि	अनुराधा	मित्र
रोहिणी	प्रजापति	ज्येष्ठा	इन्द्र
मृगशीर्ष	सोम	मूल	निर्ऋति
आर्द्रा	रूद्र	पूर्वाषाढा	आपः
पुनर्वसु	अदिति	उत्तराषाढा	विश्वेदेवा
पुष्य	बृहस्पति	श्रवण	विष्णु
आश्लेषा	सर्प	धनिष्ठा	वसु
मघा	पितर	शतभिषा	वरूण
पूर्वा फाल्गुनी	भग	पूर्वाभाद्रपद	अज एकपाद्
उत्तरा फाल्गुनी	अर्यमा	उत्तराभाद्रपद	अहिर्बुध्न्य
हस्त	सविता	रेवती	पूषा
चित्रा	त्वष्टा	अश्विनी	अश्विनौ
स्वाती	वायु	भरणी	यम
विशाखा	इन्द्राग्नी		

नक्षत्र तथा उनके देवताओं के नामोल्लेख के बाद इनके महत्व का भी वर्णन किया गया है। नक्षत्र-देवता का प्रयोजन प्रस्तुत करते हुए लगधाचार्य कहते है कि

यज्ञकर्मों में यजमान का नाम नक्षत्र के आधार पर रखा जाना चाहिए।[1] अभिप्राय यह है कि जिस नक्षत्र में व्यक्ति का जन्म हुआ हो उस नक्षत्र के देवता बोधक शब्द से ही उस यजमान का भी नाम हो। वैदिक ऋषि का इस कर्म का उद्देश्य यह है कि वे यजमान तथा उसके नक्षत्र देवता के मध्य अभेद स्थापित करना चाहते थे। ऋक्-ज्योतिष में कालों के निर्धारण के लिए नक्षत्रों को ही आधार माना गया है।

4.3.2 याजुष् ज्योतिष

वेदाङ्ग ज्योतिष के इस संस्करण में ऋक् ज्योतिष की तुलना में नक्षत्र विषयक सामग्री अधिक मात्रा में उपलब्ध होती है। प्रतीत होता है कि ज्योतिष वेदाङ्ग के इस ग्रन्थ के प्रणयन तक नक्षत्र विद्या के क्षेत्र में कुछ अधिक प्रगति हो चुकी थी। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही ग्रन्थ रचना का उद्देश्य स्थापित करते हुए कहा गया है कि वेद तथा यज्ञ दोनों ही काल पर आश्रित है और इस शास्त्र का उद्देश्य कालविधान ही है। जहाँ तक नक्षत्र विषयक सामग्री का विषय है इस वेदाङ्ग में समस्त 27 नक्षत्रों अर्थात् अश्विनी, आर्द्रा, पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, आश्लेषा, चित्रा, मूल, शतभिषक्, भरणी, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, अनुराधा, श्रवण, रेवती, मृगशिरा, मघा, स्वाती, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, कृत्तिका, पुष्य, हस्त, ज्येष्ठा तथा धनिष्ठा नक्षत्र का इसी क्रम से उल्लेख किया गया है।[2] ऋक् ज्योतिष में भी इन्हीं नक्षत्रों का इसी क्रम से विवरण प्राप्त होता है।[3] नक्षत्रों के देवताओं के निर्धारण में भी

---

[1] नक्षत्रदेवता एता एताभिर्यज्ञकर्मणि।
यजमानस्य शास्त्रज्ञैर्नाम नक्षत्रजं स्मृतम्।।
— ऋक् ज्यो॰; 28

[2] जौ द्रा गः खे श्वे ही रो षाश्चिन्मूषक्ण्यः सूमाधाणः।
रे मृ (म्रे) घाः स्वा पो जः कृष्यो ह ज्ये ष्ठा इत्यृक्षा लिङ्गैः।।
— याजुष् ज्यो॰; 18

[3] ऋक् ज्यो॰; 14

ऋक् ज्योतिष में वर्णित व्यवस्था का ही अनुकरण किया गया है।[1] अभिप्राय यह है कि नक्षत्र देवताओं के निरूपण का आरम्भ कृत्तिका नक्षत्र से किया गया है।[2] यहाँ केवल नक्षत्रों के देवताओं का ही उल्लेख है, नक्षत्रों का नामोल्लेख साथ-साथ नहीं हुआ है। नक्षत्र देवताओं के प्रस्तुतीकरण के साथ ही साथ प्रयोजन भी बताया गया है और कहा गया है कि चूंकि यज्ञ कर्म में पुरोहित लोग यजमान का नक्षत्र से उत्पन्न नाम कहते है अतः इसका ज्ञान भी आवश्यक है।[3] नक्षत्र सम्बन्धी विश्लेषण की प्रक्रिया में याजुष् ज्योतिष का ऋक् ज्योतिष से एक वैशिष्ट्य यह है कि इसमें कुछ नक्षत्रों का शुभ तथा कुछ को अशुभ कहा गया है।[4] इन नक्षत्रों में कुछ को शुभ कर्म के लिए वर्णित तथा कुछ को प्रशस्त माना गया है।[5] इस सन्दर्भ में आर्द्रा, चित्रा, विशाखा, श्रवण तथा अश्विनी को उग्र जबकि मघा, स्वाती, ज्येष्ठा, मूल तथा भरणी को क्रूर नक्षत्र की श्रेणी में रखा गया है।[6] याजुष् ज्योतिष की इसी परम्परा का अनुसरण परवर्त्ती दैवज्ञों ने भी अपने मुहूर्त्त ग्रन्थों में किया है।[7] पञ्चवर्षात्मक युग के

---

1 अग्निः प्रजापति सोमो रूद्रोऽदितिर्वृहस्पतिः।
सर्पाश्च पितरश्चैव भगश्वैचार्यमापि च।।
सविता त्वष्टाऽथ वायुश्चेन्द्राग्नी मित्र एव च।
इन्द्रो निर्ऋतिरापो वै विश्वेदेवास्तथैव च।।
विष्णुर्वसवो वरूणोऽज एकपात् तथैव च।
अहिर्बुध्न्यस्तथा पूषा अश्विनौ यम एव च।।
— याजुष् ज्यो॰; 32-34

2 वही; 32

3 नक्षत्रदेवता एता एताभिर्यज्ञकर्मणि।
यजमानस्य शास्त्रज्ञैर्नाम नक्षत्रजं स्मृतम्।।
— वही; 35

4 उग्राण्यार्द्रा च चित्रा च विशाखा श्रवणोऽश्वयुक्।
क्रूराणि तु मघा स्वाती ज्येष्ठा मूलं यमस्य यत्।।
— वही; 36

5 वही

6 वही

7 पूर्वात्रयं याम्यमघे उग्रं क्रूर कुजस्तथा।
मु॰चि॰; 4

काल की गणना का प्रारम्भ कहां से हो इस विषय में भी नक्षत्रों की महत्ता को स्थापित किया गया है। ऋषि ने स्पष्ट रूप से कहा है कि जब चन्द्रमा व सूर्य एक साथ 'वासव' अर्थात् धनिष्ठा नक्षत्र में आकाश में एक साथ दृष्टिगत होते है ठीक उसी समय युग, माघ मास, तपस् ऋतु, शुक्ल पक्ष और उत्तरायण का प्रारम्भ होता है।[1] याजुष् ज्योतिष के कई श्लोक तत्कालीन मनीषियों के मध्य अयन सम्बन्धी ज्ञान की भी सूचना देते है।[2] अयन विषयक ज्ञान की प्रौढ़ता को सिद्ध करने के लिए कुछ श्लोक काफी समर्थ सिद्ध होते है।[3] इनमें कहा गया है कि श्रविष्ठा अर्थात् धनिष्ठा के आरम्भ में सूर्य और चन्द्रमा उत्तर की ओर मुड़ते हैं और आश्लेषा के आधे में दक्षिण की ओर मुड़ते है।[4] सूर्य माघ और श्रावण मास में ही सदैव क्रमशः उत्तरायण तथा दक्षिणायन होते है।[5] अयनारम्भ में नक्षत्रों की स्थिति को भी स्पष्ट किया गया है।[6] इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि धनिष्ठा, चित्रा, आर्द्रा, पूर्वाभाद्रपद, अनुराधा, आश्लेषा अश्विनी, पूर्वाषाढा, उत्तराफाल्गुनी तथा रोहिणी नक्षत्र क्रमशः पञ्चसम्वत्सरमय युगाब्द में अयनों के चान्द्र नक्षत्र होते है, जबकि एक ऋतु में 4½

[1] स्वराक्रमेतेसामार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदादियुगं माघस्तपः शुक्लोऽयनंह्युदक्।।
— याजुष् ज्यो॰; 6

[2] प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्दमसावुदक्।
सर्पार्धे दक्षिणाऽर्कस्तु माघश्रावणयोः सदा।।
— वही; 7

[3] वही

[4] वही

[5] वही

[6] वसुस्त्वष्टाभवोऽजश्च मित्रः सर्पोऽश्विनौ जलम्।
धाता कश्चायनाद्याः स्युरर्धपञ्चमभस्त्वृतुः।।
— वही; 10

सूर्य नक्षत्र होते है।[1] इस स्थिति को निम्नलिखित तालिका का आश्रय लेकर स्पष्ट किया जा सकता है-

संवत्सर		संवत्सर	परिवत्सर	इदावत्सर	अनुवत्सर	इद्वत्सर
उत्तरायण का आरम्भ	तिथि	माघ शुक्ल प्रतिपदा	माघ शुक्ल त्रयोदशी	माघ शुक्ल दशमी	माघ शुक्ल सप्तमी	माघ कृष्ण चतुर्थी
	सूर्य नक्षत्र	धनिष्ठा	धनिष्ठा	धनिष्ठा	धनिष्ठा	धनिष्ठा
	चान्द्र नक्षत्र	धनिष्ठा	आर्द्रा	अनुराधा	अश्विनी	उत्तरा फाल्गुनी
दक्षिणायन का आरम्भ	तिथि	श्रावण शुक्ल सप्तमी	श्रावण कृष्ण चतुर्थी	श्रावण शुक्ल प्रतिपदा	श्रावण शुक्ल त्रयोदशी	श्रावण कृष्ण दशमी
	सूर्य नक्षत्र	आश्लेषार्ध	आश्लेषार्ध	आश्लेषार्ध	आश्लेषार्ध	आश्लेषार्ध
	चान्द्र नक्षत्र	चित्रा	पूर्वाभाद्रपद	आश्लेषा	पूर्वाषाढा	रोहिणी

[1] वसुस्त्वष्टाभवोऽजश्च मित्रः सर्पोऽश्विनौ जलम्।
धाता कश्चायनाद्याः स्युरर्धपञ्चमभस्त्वृतुः।।
— याजुष् ज्यो॰; 10

'याजुष् ज्योतिष' चान्द्र नक्षत्र के आनयन के विषय में भी नियम का प्रस्तुतीकरण करता है।[1] इस विषय में महर्षि लगध का कथन है कि किसी भी पर्व में चन्द्र नक्षत्र के आनयन के लिए आवश्यक यह है कि वर्त्तमान संवत्सर संख्या को बारह से गुणा किया जाय, उसके बाद मास में दो से गुणा कर इसे पक्ष में बदल कर इसमें ग्यारह से गुणा करने पर चन्द्रमा के नक्षत्र का अंश निकल जाता है।[2] यहाँ ध्यान रखने योग्य बात यह होती है कि यदि चान्द्र पक्ष शुक्ल पक्ष में आ रहा हो तो पहले के आए नक्षत्रों को घटाकर शेष वास्तविक चन्द्र नक्षत्र के अंशों को प्राप्त किया जा सकता है।[3] सूर्य नक्षत्र के ज्ञान के लिए भी गत पर्व संख्या में ग्यारह का गुणा कर, उसमें 9 से गुणा कर तिथि संख्या का जोड़ देना चाहिए, तदुपरान्त प्राप्त योगफल में 124 का भाग देने के बाद लब्धि में गतपर्व संख्या जोड़ देने पर इष्ट तिथि के अन्त में वर्त्तमान सूर्य नक्षत्र प्राप्त होता है।[4] याजुष् ज्योतिष के रचना काल के समय अन्य मासों (सावन, चान्द्र तथा सौर) के अतिरिक्त नक्षत्र मास भी प्रचलन में था।[5] एक युग में नाक्षत्र मास की संख्या 67, जबकि चान्द्रमास 62 तथा सावन मास 61 माने जाते थे।[6] चन्द्रमा एक युग में प्रत्येक नक्षत्र पर कुल 67 बार आता है जबकि सूर्य प्रत्येक नक्षत्र में

---

1 भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वारशकोद्गताः।
एकादशगुणश्चेन्दोः शुक्लेऽर्ध चैन्दवा यदि।।
— याजुष् ज्यो॰; 15

2 वही

3 वही

4 एकादशभिरभ्यस्य पर्वाणि नवभिस्तिथिम्।
युगलब्धं सपर्वस्या द्वर्त्तमानार्कभ क्रमात्।।
— वही; 25

5 सावनेन्दुस्तृमासानां षष्टिः सैकद्विसप्तिका।
द्यु त्रिंशत्सावनस्याब्दः सूर्यस्तृणां सपर्ययः।।
— वही; 31

6 वही

$13^{5}/_{9}$ दिन तक रहता है।[1] याजुष् ज्योतिष में प्राप्त उपरोक्त नक्षत्र विषयक ज्ञान यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि याजुष् ज्योतिष के रचनाकाल तक आते-आते नक्षत्र ज्ञान में काफी प्रगति हो चुकी थी। इस काल के ऋषियों का ज्ञान 'ऋक् ज्योतिष' की रचनाकाल की अपेक्षा अधिक विकसित था। नक्षत्र का ज्ञान पाने वाला इस लोक तथा परलोक में श्रेष्ठता को प्राप्त करने वाला कहा जाता था।[2]

4.3.3 आथर्वण ज्योतिष

आथर्वण ज्योतिष में नक्षत्र विषयक परिचर्चा काफी अधिक है। इसमें प्राप्त सामग्री नक्षत्र विद्या के ज्ञान की अधिकता तथा प्रौढ़ता को सिद्ध करता है। नक्षत्रों का ज्ञान उसके नामकरण, देवताओं के नाम, शुभाशुभ के वर्गीकरण से आगे बढ़ चुका था। इस ग्रन्थ में नक्षत्रों को आत्मरक्षा करने में समर्थ कहा गया है।[3] निन्दित नक्षत्रों में यात्रा के विधान का निषेध विषयक स्पष्ट निर्देश भी प्राप्त होता है।[4] यद्यपि यह ग्रन्थ शुभ नक्षत्रों में कर्मों को प्रारम्भ करने[5] तथा अशुभ नक्षत्रों में कार्यों के संपादन का

---

1 ससप्तैकं भयुक् सोमः सूर्यो द्यूनि त्रयोदश।
नवमानि तु पञ्चान्हः काष्ठा पञ्चाक्षरा भवेत्।।
— याजुष् ज्यो॰; 39

2 सोमसूर्यस्तृचरितं विद्वान् वेद विदश्नुते।
सोमसूर्यस्तृचरितं लोकं लोके च सन्ततिम्।।
— वही; 44

3 बंधुपक्षक्षयं सूर्यो भयं सोमस्तथैव च।
आत्मरक्षांतु नक्षत्रं तिथिः स्यादर्थ साधकी।।
— आथर्वण ज्यो॰; 81

4 ऋतुक्षये चन्द्रमसः च पक्षक्षये ज्योतिषि संग्रहे च।
नक्षत्रवर्गेषु विगर्हितेषु यात्राविधानं न विदन्ति तज्ज्ञाः।।
— वही; 78

5 करणे कार्यनिष्पत्तिः मुहूर्त्ते लाभमादिशेत्।
चतुर्भिः कारयेत् कर्म सिद्धि हेतोर्विचक्षणः।।
— वही, 82

निषेध करते है[1], फिर भी ग्रन्थ सामञ्जस्य का भी प्रतिपादन करता है। इस विषय में ग्रन्थकार का कथन है कि तिथि, नक्षत्र, करण और लग्न हमेशा शुभ नहीं होते अतः शुभ नक्षत्रों के दूर होने पर तिथि, करण और मुहूर्त्त के शुभत्व को भी आधार माना जा सकता है।[2] परन्तु नक्षत्र को इन सबमें श्रेष्ठ माना गया है और कहा गया है कि नक्षत्र का शुभत्व तिथि से चौगुणा होता है।[3] ग्रन्थ में बार-बार इस तथ्य की स्थापना की गई है कि नक्षत्रों का ज्ञान अति आवश्यक है तथा जो व्यक्ति अपनी उन्नति चाहते है वे अवश्य ही नक्षत्रों का शुभत्व और अशुभत्व जान ले।[4] आथर्वण ज्योतिष में प्राप्त प्रत्येक सिद्धान्त को ग्रन्थकार महर्षि भृगु प्रोक्त कहते है।[5] नक्षत्रों का विभाजन उत्तम, मध्यम और अधम वर्गों में किया गया है[6], इन नक्षत्रों की संज्ञाएँ जन्म,

---

[1] ऋतुक्षये चन्द्रमसः च पक्षक्षये ज्योतिषि संग्रहे च।
नक्षत्रवर्गेषु विगर्हितेषु यात्राविधानं न विदन्ति तज्ज्ञाः।।
— आथर्वण ज्यो॰; 78

[2] तिथि नक्षत्रकरणं मुहूर्त्तो नेति नित्यशः।
नक्षत्रस्य हि दूरत्वात्त्रिभिः कर्म समारभेत्।।
नक्षत्रेण करणेन मुहूर्तेनेति नित्यशः।
नक्षत्रस्य च दूरत्वाद् द्वाभ्यां कर्म समारभेत्।।
— वही; 83-84

[3] विदेश जाते विकले चपत्सौ सर्वाणि कार्याणि करोति पत्नी।
तिथिरेक गुणा प्रोक्ता नक्षत्रं च चतुर्गुणम्।।
— वही; 90

[4] पृथक पुरुषविज्ञेयं नक्षत्राणां शुभाशुभम्।
आत्म सम्पत् करंज्ञेयमात्मानमृद्धिमिच्छताम्।।
— वही; 102

[5] आत्म कर्म गुणं श्रेष्ठं पुरुषं पुरुषं प्रति।
अल्पग्रन्थं महार्थं च प्रवक्ष्यामि भृगोर्मतम्।।
— वही; 101

[6] नवानां त्रिक्वर्णानामाधाने जन्मकर्मणि।
अधमोत्तमवर्गेषु संवदन्तीह भागशः।।
— वही; 103

संपत्कर, विपत्कर, क्षेम्य, प्रत्वर, साधक, नैधन, मित्र और परम मैत्र मानी गई है।[1] इन संज्ञाओं का विश्लेषण करते हुए कहा गया है कि जन्म नक्षत्र से दसवां नक्षत्र कर्म संज्ञक है[2] तथा उन्नीसवाँ नक्षत्र गर्भाधान संज्ञक है।[3] इसी तरह जन्म नक्षत्र से दूसरा, ग्यारहवाँ और बीसवाँ नक्षत्र संपत्कर गण का और धन लाभ कराने वाला कहा गया है।[4] जबकि तीसरा, बारहवाँ और इक्कीसवाँ विपत्कर समूह का नक्षत्र है।[5] चौथा तेरहवाँ और बाईसवाँ नक्षत्र क्षेम्य गण का होता है[6] तथा पाँचवा, चौदहवाँ और तेईसवाँ नक्षत्र प्रत्वर गण का माना गया है।[7] इस वेदाङ्ग के ऋषि जन्म नक्षत्र से छठे, पन्द्रहवे और चौबीसवे नक्षत्र को साधक गण का[8] और सातवे, सोलहवे और पञ्चीसवे नक्षत्र को नैधन गण का मानते है।[9] इसी तरह अठारहवाँ, सत्रहवाँ और छब्बीसवां नक्षत्र, मैत्रगण का[10] और नवाँ, अठारहवाँ और सत्ताईसवाँ नक्षत्र परम मैत्रगण का कहा गया

---

1 जन्मसंपद्विपत्क्षेम्यः प्रत्वरः साधकस्तथा।
नैधनो मित्रवर्गश्च परमो मैत्रएवतु।।
— आथर्वण ज्यो०; 104

2 दशमं जन्म नक्षत्रात् कर्मनक्षत्रमुच्यते।
एकोनविंशतिचैव गर्भाधानकमुच्यते।।
— वही; 105

3 वही

4 द्वितीयमेकादशम् विंशतिः सम्पत्करो गणः।
तृतीयमेकविंश तु द्वादशं तु विपत्करम्।।
— वही; 106

5 वही

6 क्षेम्यं चतुर्थं द्वाविंशभवेद्यच्च त्रयोदशम्।
प्रत्वरं पञ्चमं विद्यात्त्रयोविंशं चतुर्दशम्।।
— वही; 107

7 वही

8 साधकं तु चतुर्विंशं षष्ठं पञ्चदशं च यत्।
नैधन पञ्चविंशं तु षोडशं सप्तमं तथा।।
— वही; 108

9 वही

10 मैत्रे सप्तदशं विद्यात् षड्विंशतिश्चाष्टमम्।
सप्तविंशपरं मैत्रं नवमष्टादशं च यत्।।
— वही; 109

है।[1] इन नक्षत्रों के वर्गीकरण के बाद ऋषि का कथन है कि नौ नक्षत्र वर्गों में प्रथम, तृतीय, पञ्चम तथा सप्तम नक्षत्र वर्ग में शुभ कर्म त्याज्य होते है जबकि शेष नक्षत्रों में शुभकर्म किए जा सकते है।[2] प्रत्येक नक्षत्र वर्ग में किए जाने वाले तथा वर्णित कार्यों की एक बृहद् सूची भी प्राप्त होती है। आधान संज्ञक गण के नक्षत्रों में, जन्म नक्षत्र में, नैधन तथा प्रत्वर गण के नक्षत्रों में यात्रा का निषेध किया गया है और कहा गया है कि ऐसा करने पर प्राणों का संकट होता है, साथ ही साथ ये नक्षत्र गण क्षौर कर्म के लिए भी प्रशस्त नहीं है।[3] इन नक्षत्रों में ग्रह निर्माण, शान्ति, स्वरस्तेन और माङ्गलिक कार्य भी वर्ज्य है अन्यथा प्रवास और विवाद जैसे अशुभ फलों की प्राप्ति हो सकती है।[4] ये नक्षत्र बाल बनवाने, विवाह, औषधि सम्बन्धी कार्य, यात्रा और सेना की योजना करने में भी वर्ज्य है।[5] 'सम्पत्कर' संज्ञक नक्षत्र गण विद्यारम्भ, तपस्या, दान, मार्जन औषधि सेवन और नौकरों के पालन के लिए शुभ कहा गया है।[6]

---

[1] मैत्रे सप्तदशं विद्यात् षड्विंशतिश्चाष्टमम्।
सप्तविंशपरं मैत्रं नवमष्टादशं च यत्।।

— आथर्वण ज्यो॰; 109

[2] नव नक्षत्रके वर्गे प्रथमं तृतीयं तु वर्जयेत्।
पञ्चमं सप्तमं चैव शेषैः कार्याणि कारयेत्।।

— वही; 110

[3] आधाने जन्म नक्षत्रे नैधने प्रत्वरेषु च।
प्रवासे प्राण संदेहः क्षुरः कर्मच वर्जयेत्।।

— वही; 112

[4] पराजयं प्रवासं च विवादं ग्रहकर्मच।
वर्जयेन्मङ्गलं कार्यं शान्तिस्वस्त्ययनानिच।।

— वही; 113

[5] क्षौरं विवाहं भैषज्यं यात्रा सेना न योजयेत्।
सर्वमंगलकार्येषु त्रिषु कर्म विवर्जयेत्।।

— वही; 114

[6] विद्यारम्भं तपोदानं मार्जनं भेषजक्रिया।
भरणं च सुभृत्यानां कुर्यात्सम्पत्करे गणे।।

— वही; 115

'विपत्कर' नक्षत्र समूह झूठ और अधर्म से युक्त शत्रुओं के नाश हेतु आभिचारिक कर्म के लिए प्रशस्त है।[1] 'क्षेम्य' संज्ञक नक्षत्र गण यात्रा, सुरक्षा योग्य धन को सुरक्षित करने हेतु, वाहनों को पुष्ट करने तथा धनों को योजनाओं में लगाने के लिए शुभ होता है।[2] आथर्वण ज्योतिष में प्रत्वर संज्ञक नक्षत्र समूह में शुभ कर्म तथा किला आदि भवनों में प्रवेश का निषेध है।[3] साधक संज्ञक नक्षत्र असाध्य से असाध्य कार्यों को भी सिद्ध करने वाला, प्रयोजनों को सिद्ध करने वाला होता है तथा इन नक्षत्रों में भी कोई भी कार्य करने से कभी संकट उत्पन्न नहीं होता है।[4] नैधन संज्ञक नक्षत्रों में यात्रा का निषेध, शत्रुओं से रक्षा तथा सोच समझकर ही किसी पर विश्वास करना चाहिए।[5] मैत्र संज्ञक नक्षत्र शुभ माने गए है और इनमें विवाह, गौना, चूड़ासंस्कार, उपनयन आदि शुभ कर्म प्रशस्त कहे गए है[6] जबकि परम मैत्र संज्ञक नक्षत्रों में

---

1 अनृतधर्मसंयुक्तं शत्रूणां चाभिचारिकम्।
विपत्करेगणे कुर्यात् प्रहरे का दहीति च।।
— आथर्वण ज्यो॰; 116

2 क्षेम्येऽध्वानं प्रपद्येत गोप्यार्थाश्चात्र गोपयेत्।
वाहनानि च पोषे तु बहुशोऽर्थाश्च योजयेत्।।
— वही; 117

3 प्रत्वरे तु न कर्त्तव्याः सर्वारम्भाः कदाचन।
दुर्गं च न प्रवेष्टत्यं न च चानर्थान्समश्नुते।।
— वही; 118

4 असाध्यान्यपि कार्याणि साधयेत्साधके गणे।
सर्वार्थास्तस्य सिध्यन्ति न चानर्थान्समश्नुते।।
— वही; 119

5 नेधने तु न गन्तत्यं येषु जाताश्च शत्रवः।
तेभ्योरक्षेत् चात्मानमत्यन्तं च न विश्वसेत्।।
— वही; 120

6 मैत्रेविवाहानुद् वाहांश्चूड़ोपनयनानि च।
कुर्यात्परममैत्रेतुयतस्तम्भ मनात्मकम्।।
— वही; 121

अस्थिर या चर कार्य किए जा सकते है।[1] इसके अतिरिक्त परम मैत्र नक्षत्र इच्छा पूर्ण करने वाला, प्रयोजनों को जल्दी सिद्ध करने वाला भी होता है।[2] इस ग्रंथ का कथन है कि आधान संज्ञा वाले नक्षत्रों में शुभ कार्य नष्ट होते है, जन्म संज्ञावाले नक्षत्रों में शुभ कार्य करने पर निश्चित ही रोगों का प्रकोप होता है तथा दशम के हत होने पर कभी भी कार्य सिद्ध नहीं होते।[3] सम्पत्कर गण वाले नक्षत्रों के हत होने पर शुभ कार्य प्रारम्भ करने से हानि तथा विपत्कर गण के नक्षत्रों के हत होने पर कार्य करने से वृद्धि होती है।[4] क्षेम्य संज्ञक नक्षत्र के हत होने पर यात्रा नहीं करनी चाहिए और साधक गण के नक्षत्रों के हत होने पर शुभ कार्य करने से बचना चाहिए।[5]

प्रत्वर गण के नक्षत्रों में विध्नों के नष्ट होने पर बड़े रोग का विनाश होता है[6] तथा नैधन संज्ञक नक्षत्रों में बाधाओं के नष्ट होने पर महान शत्रुवध होता है।[7] मैत्र संज्ञक गण के नक्षत्रों के हत होने पर मित्र पहले के समान नहीं रह पाता[8] तथा

---

1 मैत्रेविवाहानुद् वाहांश्चूड़ोपनयनानि च।
कुर्यात्परममैत्रेतुयतस्तम्भ मनात्मकम्।।
— आथर्वण ज्यो॰; 121

2 परं परम मैत्रेतु नरो यद्यदभिलषेत्।
प्राप्नुयादर्थसिद्ध्यन्ति क्षिप्रमेव न संशयः।।
— वही; 122

3 आधाने विद्रवन्त्यर्थाः त्याधयो जन्मनि ध्रुवम्।
न च सिध्यन्ति कार्याणि कदाचिद् दशमेहते।।
— वही; 124

4 सम्पत्करे हते हानिर्वृद्धिश्चैव विपत्करे।
क्षेम्ये हतेन प्रवसेत् साधकेऽर्थान्न साधयेत्।।
— वही; 125

5 वही

6 प्रत्वरे तु हते विध्नान् महारोगं प्रणानशम्।
नैधनेन हते विध्नान् महानरिवधो भवेत्।।
— वही; 126

7 वही

8 मित्रवर्गाश्च मैत्रे तु न भवन्ति यथा पुरा।
हते परममैत्रे तु मनोनित्यं न तुष्यति।।
— वही; 127

परममैत्र गण के नक्षत्र का हत होना नित्य ही मन को संतुष्टि प्रदान नहीं कर पाता।[1] अंत में ऋषि ने विशेष रूप से प्रत्येक गण में कहे गए नक्षत्रों के हत होने पर कार्यों का निषेध किया है।[2] ग्रन्थ में बारम्बार शुभ नक्षत्रों में ही कार्यों के निष्पादन पर बल दिया गया है[3] और यह भी कहा गया है कि उपवास, गोदान तथा महात्माओं को तृप्त करके इस मृत्युलोक में मनुष्य नक्षत्रों से उत्पन्न अशुभ फलों को शान्त कर सकते है।[4] इन ग्रह-नक्षत्रों के अपमान का भी निषेध इस ग्रन्थ की विशेषता है।[5] इस प्रकार स्पष्ट है कि आथर्वण ज्योतिष में फलित ज्योतिष के सूत्र प्राप्त होते है साथ ही साथ ग्रह-नक्षत्र जन्य अरिष्टों के शमन पर भी प्रकाश डाला गया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि वेदों में वर्णित विभिन्न यज्ञादि के अनुष्ठान हेतु प्रशस्त नक्षत्र सम्बन्धी अवधारणाओं का अत्यन्त विकसित स्वरूप वेदाङ्ग ज्योतिष के प्रत्येक संस्करण में उपलब्ध होता है। वेदाङ्ग ज्योतिष के प्रणयन के बाद ये नक्षत्र

---

1 मित्रवर्गाश्च मैत्रे तु न भवन्ति यथा पुरा।
हते परममैत्रे तु मनोनित्यं न तुष्यति।।
— आथर्वण ज्यो॰; 127

2 यद्यत्पीडयते नक्षत्रं यस्मिन्यस्मिन्यदा गणे।
तत्ततकर्म न कुर्वीत पुरस्ताद् यत्प्रणोदितम्।।
— वही; 128

3 एवं नक्षत्रयोगेषु त्रिषु कर्मसमारभेत्।
धर्मार्थ कर्मणामर्थे स्वकर्म फलमश्नुते।।
— वही; 158

4 उपवासैर्गवांदानैस्तर्पणैश्च मनीषिणाम्।
ग्रहनक्षत्रजाः दाषाः प्रशाम्यन्तीह देहिनाम्।।
— वही; 160

5 नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव देवता पितरौ द्विजाः।
पूजिता प्रति पूज्यन्ते निर्दहन्त्यपमानिताः।।
— वही; 161

केवल आकाश मण्डल में विभिन्न तारक पुञ्जों द्वारा निर्मित आकृत्ति न होकर शुभाशुभ फलों की उत्पत्ति में समर्थ कालावयन बन चुके थे।

पञ्चम अध्याय

पञ्चम अध्याय

वेदाङ्ग ज्योतिष की कैलेण्डर पद्धति की गणितीय प्रक्रियाएँ

वैदिक साहित्य में काल सम्बन्धी विशद वर्णन के सम्बन्ध में काल परिमाण की विभिन्न इकाईयाँ जैसे की युग, सम्वत्सर, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र, नक्षत्र, मुहूर्त्त इत्यादि का बारम्बार प्रयोग हुआ। इन समस्त प्रयासों का एक ही उद्देश्य परिलक्षित होता है वह यह है कि काल खण्डों के शुभाशुभत्व तथा उनके आनयन का निर्धारण। वैदिक ऋषियों ने अपनी मेधा से ऐसी कैलेण्डर पद्धति का विकास किया जिसके द्वारा काल परिमाणों के सुव्यवस्थित गणना का मार्ग प्रशस्त हो सके।

वेदाङ्ग ज्योतिष के विभिन्न संस्करणों को सर्वप्राचीन तथा महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में स्वीकार किया जाता है।[1] इन वेदाङ्ग ज्योतिषीय ग्रन्थों में वैदिक कैलेण्डर से संबंधित सिद्धान्त उपलब्ध होते हैं या फिर दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर वेदाङ्ग ज्योतिषकालीन कैलेण्डर का निर्माण होता था। इस वैदिक कैलेण्डर में पञ्चवर्षीय युग चक्र के साथ नियमित दिन, माह व ऋतु आदि का उल्लेख था।[2] भारतीय वैदिक कैलेण्डर की पद्धति पर विचार करने से पूर्व आवश्यक है कि कैलेण्डर के स्वरूप को स्पष्ट किया जाय।

5.1 कैलेण्डर

कैलेण्डर को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि यह एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा वर्ष के आरम्भ व समाप्ति के साथ-साथ इसके अन्य विभागों को भी सूचित किया

1 Sewell, Robert – ***The Siddhantas and the Indian Calander,*** Asian Educational Services, New Delhi, 1989, P. viii

2 शर्मा, अपर्णा-भारतीय संवतो का इतिहास, एस.एस. पब्लिशर्स, दिल्ली, 1994, पृ. 3

जाता है।[1] इसी तरह समय की वह अवधि जो युग से प्रारम्भ होकर अब तक भूतकाल की गणना कराती है कैलेण्डर कहा जाता है।[2] कैलेण्डर से संबन्धित उद्धरण सिद्ध करते है कि गणनात्मक काल को स्पष्ट करने की पद्धति ही कैलेण्डर है। यही कैलेण्डर भारतीय साहित्य में पञ्चाङ्ग नाम से जाना जाता है।[3] पञ्चाङ्ग का अर्थ प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि नागरिक जीवन में सुविधा, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, सामाजिक व धार्मिक कार्यों की व्यवस्था के लिए दिनों के समूहीकरण की प्रक्रिया ही पञ्चाङ्ग कहा जाता है।[4]

5.2 कैलेण्डर विकास की प्रक्रिया

कैलेण्डर पद्धति का आरम्भ मानव सभ्यता के आरम्भ से ही हुआ होगा क्योंकि प्राय: ऋतुचक्र जिज्ञासा को प्रभावित करता रहा होगा। परन्तु इस पद्धति का व्यवस्थित व विकसित स्वरूप वैदिक साहित्य में ही सर्वप्रथम उपलब्ध होता है। काल की सूक्ष्म इकाईयों से लेकर दिन[5], रात्रि[6], अहोरात्र[7], पक्ष[8], मास[9], ऋतु[10],

---

1 "A system by which the beginning length and subdivisions of the year are fixed"
– ***Oxford Dictionary***, Oxford University Press, New york, 2003, P. 119

2 A time scale to indicate past time since an epoch is a calandar.
– Upadhyaya, A.K. - ***Siddhāntdarpana,*** Part II, P. 261

3 Apte, Vaman Shivram – ***English Sanskrit Dictionary,*** Mrs. Radhabai Atmaram Sagoon Bookseller and Publishers, Bombay, 1893, P. 43

4 ***Encyclopedia Britannica,*** Vol-III, Japan, 1967, P. 595

5 द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानिक उ तच्चिकेत।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिता: वष्टिर्न चलाचलास:।।
– ऋ०; 1-164-48

6 वही

7 समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विद्धदिवश्वस्य मिषतो वशी।
– वही; 10-192-2

8 पूर्वपक्षा वै यवाऽअपरपक्षाऽअयवास्ते हीदं सर्वं युवते चायुवते च।
– शत०ब्रा०; 8-4-2-11

9 वेदमासो धृतवासो द्वादश प्रजावत:। वेद य उपजायते।
– ऋ०; 1-25-8

10 मुखं वा एतदृतूनां। यद्वसन्त:।
– तै०ब्रा०; 1-1-2- (6, 7)

अयन[1], वर्ष (सम्वत्सर)[2], व युगादि[3] का वर्णन वैदिक साहित्य में उपलब्ध है। जैसा कि कैलेण्डर की परिभाषा से स्पष्ट है कि एक निश्चित कालावधि के आरम्भ तथा अन्त के साथ-साथ उसके बीच आने वाले कालमान को भी व्यवस्थित रूप से विभाजित करना ही इसका उद्देश्य है। कैलेण्डर का विकास सूक्ष्म से वृहद कालमान की दिशा में हुआ होगा। जैसे पहले दिन व रात के आधार पर स्थूल रूप से दिन व रात साधारण जन को भी दृष्टिगोचर होते थे तदुपरान्त तिथि, मास, ऋतु, वर्ष, युगादि वृहद् कालमान का उपयोग हुआ होगा। इन्हीं वृहद् कालमानों के आरम्भ तथा समाप्ति के मध्य अन्य सूक्ष्म कालमानों को व्यवस्थित करना ही कैलेण्डर का मुख्य लक्ष्य था। कैलेण्डर अर्थात् पञ्चाङ्ग संबंधी विचार वैदिक संहिता में उपलब्ध तो है पर अल्पविकसित रूप में, जबकि वेदाङ्ग ज्योतिष के संस्करणों में कैलेण्डर पद्धति अत्यधिक विकसित स्वरूप को प्राप्त कर चुका था। अतः आवश्यक है कि वैदिक कैलेण्डर पद्धति तथा वेदाङ्ग ज्योतिष कैलेण्डर पद्धति पर पृथक् पृथक् विचार किया जाए और साथ ही साथ इस कैलेण्डर पद्धति के निर्माण में जो गणितीय प्रक्रियाएँ प्रयोग में आयी, अथवा जिन गणितीय प्रक्रियाओं से कैलेण्डर निर्माण में सुविधा हुई उन्हें भी प्रकाश में लाया जाए।

5.2.1 वैदिक कैलेण्डर

ऋग्वेद में युग शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है।[4] इसी संहिता में एक अन्य स्थान पर प्राप्त उद्धरण दश वर्षात्मक युग के अस्तित्व का बोध कराते है।[5] जबकि वाजसनेयी

---

[1] तस्मादित्यः षण्मासो दक्षिणेनैति षडुत्तरेण।
— तै॰ सं॰; 6-5-3

[2] संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः।
— ऋ॰ 1-140-2

[3] देवाना पूर्व्ये युगे सतः सदजायत्।
— वही; 10-72-2

[4] वही

[5] वही; 1-158-6

संहिता के मन्त्रों में प्राप्त 'युग' शब्द का अर्थ ऋतु से करते हैं और 'त्रियुग' शब्द से वसन्त, वर्षा और शरद ऋतु का अभिप्राय ग्रहण करते हैं।[1] इस युग का विभाजन पुनः पाँच संवत्सरों अर्थात् संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, इद्वत्सर और वत्सर में विभाजित किए गए हैं।[2] ये कालमान वर्ष नाम से भी जाने जाते हैं।[3] यह वर्ष 12 मासों से मिलकर बना था[4] और ये मास चान्द्र मास थे।[5] वर्ष कुल मिलाकर 360 दिन और 360 रात्रि से मिलकर बने हुए माने जाते थे।[6] वर्ष के अंदर जो 12 मास थे उनके नाम मधु, माधव, शुक्र, शुचि, नभस, नभस्य, इष, ऊर्ज, सहस, सहस्य, तपस तथा तपस्य थे[7] इन मासों को ऋतुओं से जोड़ा गया और इन्हें इस प्रकार विभक्त किया गया है-

ऋतु	**वसन्त**	**ग्रीष्म**	**वर्षा**	**शरद्**	**हेमन्त**	**शिशिर**
मास	मधु, माधव	शुक्र, शुचि	नभस्य, नभस्य	इष, ऊर्ज	सहस्, सहस्य	तपस्, तपस्य

स्पष्ट है कि सम्वत्सर में छः ऋतुएँ होती हैं[8] इन ऋतुओं में वसन्त पहला माना

---

1 या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगम्पुरा।
— वा॰सं॰; 12-75

2 वही; 30-16

3 शत॰ब्रा॰ 2-2-3

4 ऋ॰; 1-25-8

5 (i) दीक्षित, शंकरबालकृष्ण- भारतीय ज्योतिष, अनु. झारखण्डी, शिवनाथ, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, 1963, पृ. 40

(ii) Tilak Bal Gangadhar – ***Vedic Chronology and Vedanga Jyotisha,*** Messrs Tilak Bros, Poona, 1925, P. 20

6 ऋ॰; 1-164-48

7 मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृत् शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृत् नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृत् इषश्चोर्जश्च शारदावृ तूसहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृत्।
— तै॰स॰; 4-4-11

8 वही; 5-6-7

जाता था।[1] वर्ष को पुनः दो अयनों उत्तरायण तथा दक्षिणायन में विभक्त किया गया था।[2] एक अन्य ध्यातव्य तथ्य यह है कि मासों को भी आधे भाग में बाँटा गया और ये मासार्ध कहे जाते थे।[3] मास पक्षों में बँटे थे- कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष।[4] इसमें भी पूर्व पक्ष शुक्ल पक्ष था।[5] महीने में 30 दिन माने जाते थे और इन्हें कृष्ण पक्ष तथा शुक्ल पक्ष के आधार पर विभाजित कर अलग-अलग संज्ञाओं से जाना जाता था।[6] वार का स्पष्ट रूप से उल्लेख वैदिक संहिताओं में नहीं मिलता, परन्तु 'वासर' शब्द अवश्य उपलब्ध होता है।[7] जहाँ तक दिन का प्रश्न है ये मान घटते-बढ़ते थे।[8] दिन भी पूर्वाह्ण, मध्याह्न तथा अपराह्ण में विभक्त किए गए थे।[9] दिन तथा रात्रि 15 मुहूर्तों में बँटे हुए थे।[10]

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर सिद्ध होता है कि वैदिक कैलेण्डर का स्वरूप काफी विकसित अवस्था में नहीं था। यद्यपि, युग, सम्वत्सर, अयन, ऋतु, मास, नक्षत्र, वार, तिथि, दिन, मुहुर्त आदि शब्द उपलब्ध तो हैं परन्तु उनमें स्पष्ट सम्बन्ध स्थापित नहीं किया गया है। अभिप्राय यह है कि कैलेण्डर पद्धति पूरी तरह विकसित नहीं थी।

5.2.2 वेदाङ्ग ज्योतिष कैलेण्डर

वेदाङ्ग ज्योतिष कैलेण्डर पर यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाए तो स्पष्ट होता है कि ये सभी गणितीय सिद्धान्त पर आधारित है जैसे-

---

1 तै०ब्रा०; 1-1-2-(6-7)

2 तै०सं०; 6-5-3

3 तै०ब्रा०; 3-10-1

4 दीक्षित, शंकरबालकृष्ण- भारतीय ज्योतिष, अनु. झारखण्डी, शिवनाथ, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1963, पृ. 58

5 तै०ब्रा०; 3-10-4-1

6 वही; 3-10-1-1

7 ऋ०; 8-16-30

8 वही; 8-48-7

9 तै०ब्रा०; 3-12-9-1

10 वही; 3-10-9

1 युग = 5 वर्ष

1 वर्ष = 12 मास / 5 ऋतु / 2 अयन

1 मास = 30 अहोरात्र / दो पक्ष

1 पक्ष = 15 अहोरात्र

1 अहोरात्र = 30 मुहूर्त्त

ऋक् तथा याजुष् ज्योतिष के ग्रन्थों में उपलब्ध सूत्रों के आधार पर वेदाङ्ग ज्योतिष के कैलेण्डर को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

वेदाङ्ग ज्योतिष कैलेण्डर[1]

मास	वर्षों के नाम				
	संवत्सर	परिवत्सर	इदावत्सर	अनुवत्सर	इद्वत्सर
	1	2	3	4	5
माघ	30	29	29	29	29
फाल्गुन	30	30	30	30	30
चैत्र	29	29	29	29	29
वैशाख	30	30	30	30	30
ज्येष्ठ	29	29	29	29	29
आषाढ़	30	30	30	30	30
श्रावण (अधिक)	–	–	–	–	–
श्रावण	29	29	29	29	29
भाद्रपद	30	30	30	30	30
आश्विन	29	29	29	29	29
कार्त्तिक	30	30	30	30	30
मार्गशीर्ष	29	29	29	29	29
पौष	30	30	30	30	30
पौष या माघ (अधिक)	–	–	29 या 30	–	29 या 30
प्रत्येक वर्ष में दिनों की कुल संख्या	355	354	384	354	383 या 384
एक युग में कुल दिन	1830 या 1832 दिन				

1 Chatterjee, S.K. and Chakravarty, Apurva Kumar – ***Indian Calendar From Post Vedic Period to AD 1900 in History of Astronomy in India,*** Indian National Science Academy, P. 256

वेदाङ्ग ज्योतिषीय कैलेण्डर पूर्णतः गणित संक्रियाओं पर आधारित है, अतः गणित तथा उसके क्षेत्र का सामान्य परिचय अनिवार्य है। इसलिए गणित विषयक सामान्य परिचय प्रस्तुत है-

5.3 गणित

वेदाङ्ग ज्योतिष में गणित शास्त्र को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानते हुए इसकी तुलना नाग की मणि तथा मयूर की कलगी से की।[1] गणित की विधियों का आश्रय लेकर ही पाँच संवत्सर वाले युग[2] तथा अन्य कालमानों यथा ऋतु[3], मास[4], पक्ष[5], युगारम्भ[6], मुहूर्त्त[7], कला[8], काष्ठा[9] आदि को स्पष्ट किया है। इसलिए यह अतीव महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि कैलेण्डर पद्धति के मूल अर्थात् गणित शास्त्र तथा उसकी संक्रियाओं को समझा जाए।

---

1 यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गाशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्।।
— याजुष् ज्यो०; 4

2 पञ्चसंवत्सरमय-युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः।।
— ऋक् ज्यो०; 1

3 एकान्तरेऽह्नि मासे च पूर्वान् कृत्वादिरूत्तरः।
अर्धयोःपञ्चपर्वाणां मृद् पञ्चदशाष्टमौ।।
— याजुष् ज्यो०; 11

4 त्रिशत्यह्नां सषट्षष्टिरब्दः पञ्चर्त्तवोऽयने।
मासा द्वादश सौराः स्युरेतत् पञ्चगुणं युगम्।।
— वही; 28

5 माघशुक्लप्रवृतस्य पौषकृष्णसमापिनः।
युगस्य पञ्चवर्षस्य कालज्ञानं प्रचक्षते।।
— ऋक् ज्यो०; 32

6 वही

7 त्रुटीनां तु भवेत् त्रिंशन्मुहूर्तस्य प्रयोजनम्।
द्वादशांगुलमुक्षेपं तस्य छाया प्रमाणतः।।
— आथर्वण ज्यो०; 5

8 ऋक् ज्यो०; 16

9 याजुष् ज्यो०; 39

अन्य शास्त्रों के समान ही 'गणितशास्त्र' भी अपने मूल रूप में वेदों में विद्यमान था। संख्याओं[1] तथा ज्यामितीय संरचनाओं[2] का वैदिक संहिताओं में उपलब्ध होना तत्कालीन समाज में गणित शास्त्र की उपस्थिति को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। पर यह भी सत्य है कि गणित का जैसा विकसित स्वरूप आज प्राप्त होता है वह अचानक ही नहीं हुआ अपितु इसके विकास में हजारों वर्ष लगे हैं। उपनिषदों में तो अन्य शास्त्रों के साथ-साथ अंकविद्या अर्थात् गणित शास्त्र को भी एक स्वतंत्र शास्त्र के रूप में मान्यता मिल गई थी।[3]

5.3.1 'गणित' शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ

गणित शब्द गण धातु में 'क्त' प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है तथा गण धातु का अर्थ है 'गिनना'।[4] अर्थात् गणित वह शास्त्र है जिसमें मूल रूप से गणना की जाती है। सामान्यतया 'क्त' प्रत्यय भूतकाल के अर्थ में प्रयुक्त होता है अतः इस अर्थ में 'गणित' शब्द गिने हुए अर्थ का बोधक है। गणित के अन्तर्गत सामान्य रूप से तीन विषयों का समावेश होता है- अंकगणित, बीजगणित तथा रेखागणित और इनमें भी रेखागणित का उदय सर्वप्राचीन माना जाता है।[5] गणित के लिए संख्यान का भी प्रयोग

---

1 द्वादशारं हि तज्जराय वर्वति चक्रं परिद्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः।।
— ऋ०; 1-164-11

2 i) कासीरप्रभा प्रतिभा किं निदानम्। आज्यं किमासीत् परिधिः क आसीत्।
— वही; 10-103-3
ii) इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणे अन्धसा। भिनद्वलस्य परिधि रिव त्रितः।।
— वही; 1-52-5

3 स होवाचर्ग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदꣳसामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं तिऽयꣳ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳसर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि।
— छा०उप०; 7-1-2

4 उपाध्याय, बलदेव- प्राचीन भारतीय गणित, विज्ञान भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978, पृ० 103

5 उपाध्याय, बलदेव- संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1994, पृ० 83

किया गया है।[1] उपरोक्त विषयों अर्थात् अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित के अतिरिक्त भी अन्य कई विषय हैं जिन्हें गणितशास्त्र के अन्तर्गत अन्तर्निहित माना गया है ये है- परिकर्म, व्यवहार, रज्जु (रस्सी अर्थात् क्षेत्र गणित) राशि (त्रैराशिक) कला सवर्णन (भिन्न सम्बन्धी परिकर्म) यावत्तावत् (जितना उतना अर्थात् अज्ञात राशि का प्रयोग) वर्ग, घन, वर्गावर्ग (चतुर्घात) तथा विकल्प (क्रमचय और संचय)।[2] स्पष्ट है कि प्राचीन काल के भारतीय समाज में गणित शास्त्र केवल जोड़ने घटाने तथा गुणन व भाग के नियमों तक ही सीमित न रहकर काफी विस्तार को प्राप्त हो चुका था। इसी गणित शास्त्र को सभी विज्ञानों का मूलाधार माना गया है।[3]

5.4 वेदाङ्ग ज्योतिष के संस्करणों में प्रयुक्त गणितीय संक्रियाएँ तथा सिद्धान्त

ज्योतिषशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों में लगध मुनि प्रणीत वेदाङ्ग ज्योतिष की गणना की जाती है। इन प्राचीन ग्रन्थों में 'गणित' शब्द तो प्राप्त होता ही है[4] साथ ही साथ गणित को वेदाङ्ग साहित्य में सर्वश्रेष्ठ भी घोषित किया गया है।[5] यद्यपि वेदाङ्ग ज्योतिष, ज्योतिष शास्त्र विषयक प्राचीनतम ग्रंथ है। फिर भी इसे गणित शास्त्र का मूलग्रन्थ नहीं कह सकते। ग्रंथकार ने स्वयं भी इस ग्रन्थ को यज्ञार्थ कालनिर्णय के

---

1 वृतचौलकर्मा लिपिं संख्यानं चोपयुंजीत।
— कौ॰अर्थ॰; 11-4-4

2 परिकम्मं ववहारो रज्जु राशी कलासवन्ने य।
जावन्तावति वग्गो घनो ततह वग्गवग्गो विकप्पो त।।
— स्था॰सू॰; 747

3 प्रभु पंढरीनाथ- भारत में शास्त्रों का उद्‌गम और विकास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988, पृ॰ 31

4 यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्यौतिषंमूर्धनि स्थितम्।।
— ऋक् ज्यो॰; 35

5 यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्।।
— याजुष् ज्यो॰; 4

लिए ही श्रेष्ठ माना है।[1] परन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि बिना गणितीय संक्रियाओं के काल निर्णय संभव नहीं है। यही कारण है कि वेदाङ्ग ज्योतिष के प्रत्येक संस्करण अर्थात् ऋक्, याजुष् तथा आथर्वण में गणित विषयक प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। इन गणितीय सामग्री में संख्याओं का उल्लेख[2], जोड़[3], घटाव[4], गुणा[5], भाग[6], त्रैराशिक नियम[7] आदि सम्मिलित है। अतः आवश्यक है कि वेदाङ्ग ज्योतिष में प्राप्त गणित विषयक अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए प्रत्येक संस्करण पर अलग-अलग दृष्टिपात किया जाय।

5.4.1 संख्याएँ

गणित शास्त्र के अनुसार संख्याएँ अनन्त है शून्य जैसी सूक्ष्म संख्या से लेकर कई अंकों वाली संख्याओं के प्रयोग का संकेत गणित शास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध होता है ये संख्याएँ- हजार, लाख, करोड़, अरब से लेकर महाशंख इत्यादि

---

1 वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्यौतिषं वेद से वेद यज्ञम्।।
— याजुष् ज्यो॰; 3

2 षडष्टौ नव चत्वारि पक्षछिद्राणि वर्जयेत्।
अपि नक्षत्रसम्पन्नां वर्जयेत्तु चतुर्दशीम्।।
— आथर्वण ज्यो॰; 65

3 निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं चापसंयुतम्।
षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरूच्यते।।
— याजुष् ज्यो॰; 13

4 पक्षात् पञ्चदशाच्चोर्ध्वे तद्भुक्तमिति निर्दिशेत्।
नवभिस्तूद्गतोऽशः स्याद्युक्तांशो व्द्रिकेन तु।।
— ऋक् ज्यो॰; 13

5 याजुष् ज्यो॰; 13

6 यदर्धं दिनभागानां सदा पर्वणि पर्वणि।
ऋतुशेषं तु तद्विद्यात् संख्यया सह पर्वणाम्।।
— ऋक् ज्यो॰; 23

7 इत्युपायसमुद्देशो भूयोऽप्येवं प्रकल्पयेत्।
ज्ञेयराशिं गताभ्यस्तं विभजेज्ज्ञानराशिना।।
— वही; 24

तक पहुँच गई है। परन्तु ध्यातव्य तथ्य यह है कि वैदिक ज्योतिष के विभिन्न संस्करणों में संख्याओं का सीमित प्रयोग हुआ है अतः संख्या के दृष्टिकोण से इन संस्करणों का परीक्षण प्रस्तुत है।

5.4.1.1 ऋक् ज्योतिष

महर्षि लगध प्रणीत इस ग्रन्थ में कुल 36 श्लोक है जिसमें कई संख्याओं का प्रयोग हुआ है वे एक अंक, दो अंक तथा तीन अंकों वाली संख्याएँ हैं।

5.4.1.1.1 एक अंक वाली संख्याएँ

एक[1], दो[2], तीन[3], चार[4], पाँच[5], छः[6], सात[7], आठ[8], नौ[9]। स्पष्ट है कि एक अंक वाली समस्त संख्याओं का प्रयोग इस ग्रन्थ में हुआ है। यह इस बात का सूचक है कि

---

[1] कार्या भांशाष्टकास्थाने कला एकोन्नविंशतिः।
ऊनस्थाने द्विसप्ततिमावपेदिनसंयुताम्।।
— ऋक् ज्यो॰; 11

[2] निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम्।
षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरूच्यते।।
— वही; 4

[3] त्रयंशो भशेषो दिवसस्य भागश्चतुर्दशस्याप्यपनीय भिन्नम्।
भार्धेऽधिके वाऽल्पगते परोंशो द्यावुक्तमेतन्नवकैर्भवेद्यः।।
— वही; 12

[4] प्रथमं सप्तमं चाहुरयनाद्यं त्रयोदशम्।
चतुर्थं दशमं चैव द्विर्युग्मं बहुलेऽप्यृतौ।।
— वही; 8

[5] पञ्चसंवत्सरमय-युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः।।
— वही; 1

[6] धर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ।
दक्षिणेतौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्यर्यनेन तु।।
— वही; 7

[7] वही; 8

[8] भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः।
एकादशगुणाश्चेन्दोः शुक्लेऽर्धं चैन्दवा यदि।।
— वही; 10

[9] वही; 12

ग्रन्थकर्त्ता को इन संख्याओं का ज्ञान अवश्य था। इन संख्याओं के लिए जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है वे निम्नलिखित हैं-

1- एक[1]

2- द्वि[2]

3- त्रि[3]

4- चतुर्थ[4]

5- पञ्च[5]

6- षट्[6]

7- सप्तम[7]

8- अष्टम[8]

---

[1] कार्या भांशाष्टकास्थाने कला एकोन्नविंशतिः।
ऊनस्थाने द्विसप्ततिमावपेदिनसंयुताम्।।

— ऋक् ज्यो॰; 11

[2] निरेकं द्वारशाभ्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम्।
षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरूच्यते।।

— वही; 4

[3] तृतीयायां नवम्यां च पौर्णमास्यां त्रिकद्विके।
द्वादश्यां विषुवान् प्रोक्तो द्वादश्यां दशमं भवेत्।।

— वही; 33

[4] प्रथमं सप्तमं चाहुरयनाद्यं त्रयोदशम्।
चतुर्थ दशमं चैव द्विर्युग्मं बहुलेऽप्यृतौ।।

— वही; 8

[5] पञ्चसंवत्सरमय- युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्त्वयनमासाङ्ग प्रणम्य शिरसा शुचिः।।

— वही; 1

[6] धर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ।
दक्षिणेतौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्त्ययनेन तु।।

— वही; 7

[7] वही; 8

[8] भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः।
एकादशगुणाश्चेन्दोः शुक्लेऽर्ध चैन्दवा यदि।।

— वही; 10

9- नव[1]

5.4.1.1.2 दो अङ्को वाली संख्याएँ

एक अंक वाली संख्याओं के अतिरिक्त दो अंकों वाली संख्याओं का भी प्रयोग इस ग्रंथ में प्रचुरता से किया गया है। ये अङ्क हैं- दस[2], ग्यारह[3], बारह[4], तेरह[5], चौदह[6], पन्द्रह[7], उन्नीस[8], तीस[9], पचास[10], साठ[11], एकसठ[12], बासठ[13] और

---

1 पक्षात् पञ्च्चदशाच्चोर्ध्वे तद्भुक्तमिति निर्दिशेत्।
नवभिस्तूद्गतोंऽशः स्याद्युक्तांशो द्वयद्रिकेन तु।।
— ऋक् ज्यो॰; 13

2 वही; 8

3 वही; 10

4 वही

5 ससप्तैकं भयुक् सोमः सूर्यो द्यूनि त्रयोदश।
नवमानि च पञ्चान्हः काष्ठा पञ्चाक्षरा भवेत्।।
— वही; 18

6 जावाद्यंशैः समं विद्यात् पूर्वार्धे पर्व तूत्तरे।
भादान स्याच्चतुर्दश्यां द्विभागेभ्योऽधिके यदि।।
— वही; 15

7 वही; 13

8 कार्या भांशाष्टकास्थाने कला एकोन्नविंशतिः।
ऊनस्थाने द्विसप्ततिमावपेदिनसंयुताम्।।
— वही; 11

9 कला दश च विंशा स्याद् द्वे मुहूर्त्तस्य नाडिके।
तत्रिंशद द्युकलानां तु षट्शती त्र्यधिका भवेत्।।
— वही; 16

10 नाडिके द्वे मुहूर्त्तस्तु पञ्चाशत्पलमाढकम्।
आढकात् कुम्भिका द्रोणः कुडवैर्वर्धते त्रिभिः।।
— वही; 17

11 निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम्।
षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरूच्यते।।
— वही; 4

12 यदुत्तरस्यायनतो गतं स्याच्छेषं तु यद्दक्षिणतोऽयनस्य।
तदेकषष्ट्या द्विगुणं विभक्तं सद्वादशं स्याद्दिवसप्रमाणम्।।
— वही; 22

13 वही; 4

बहत्तर[1]। इन संख्याओं के लिए प्रयुक्त शब्द अधोलिखित हैं-

दस- दश[2]

ग्यारह- एकादश[3]

बारह- द्वादश[4]

तेरह- त्रयोदश[5]

चौदह- चतुर्दश[6]

पन्द्रह- पञ्चदश[7]

उन्नीस- एकोन्नविंशतिः[8]

---

1 कार्या भांशाष्टकास्थाने कला एकोन्नविंशतिः।
ऊनस्थाने द्विसप्ततिमावपेदिनसंयुताम्।।
— ऋक् ज्यो॰; 11

2 प्रथमं सप्तमं चाहुरयनाद्यं त्रयोदशम्।
चतुर्थ दशमं चैव द्विर्युग्मं बहुलेऽप्यृतौ।।
— वही; 8

3 भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्‌गताः।
एकादशगुणाश्चेन्दोः शुक्लेऽर्धं चैन्दवा यदि।।
— वही; 10

4 वही

5 ससप्तैकं भयुक् सोमः सूर्यो यूनि त्रयोदशः।
नवमानि च पञ्चान्हः काष्ठा पञ्चाक्षरा स्मृता।।
— वही; 18

6 जावाद्यंशैः समं विद्यात् पूर्वार्धे पर्व तूत्तरे।
भादानं स्याच्चतुर्दश्यां द्विभागेभ्योऽधिके यदि।।
— वही; 15

7 पक्षात् पञ्चदशाच्चोर्ध्वे तद्‌भुक्तमिति निर्दिशेत्।
नवभिस्तूद्‌गतोंऽशः स्याद्युक्तांशो द्वयद्रिकेन तु।।
— वही; 13

8 वही; 11

तीस- त्रिंशत[1]

पचास- पंचाशद[2]

साठ- षष्टिः[3]

एकसठ- एकषष्टिः[4]

बासठ- षष्ट्या युतं द्वाभ्यां[5]

बहत्तर- द्विसप्तति[6]

5.4.1.1.3 तीन अङ्कों वाली संख्याएँ

एक अङ्कवाली संख्या तथा दो अङ्कों वाली संख्या के अतिरिक्त बड़ी संख्याओं के रूप में तीन अङ्कों वाली संख्याओं का प्रयोग भी इस ग्रन्थ में द्रष्टव्य है। इन बड़ी संख्याओं में छः सौ तीन[7] संख्या मिलती है। इस संख्या के लिए निम्नलिखित शब्द प्रयुक्त हुआ है।

छः सौ तीन (603)-षट्शती त्र्यधिका[8]

---

[1] कला दश च विंशा स्याद् द्वे मुहूर्त्तस्य नाडिके।
तत्रिंशद् द्युकलानां तु षट्शती त्र्यधिका भवेत्।।
— ऋक् ज्यो॰; 16

[2] नाडिके द्वे मुहूर्त्तस्तु पञ्चाशत्पलमाढकम्।
आढकात् कुम्भिका द्रोणः कुडवैर्वर्धते त्रिभिः।।
— वही; 17

[3] निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम्।
षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरूच्यते।।
— वही; 4

[4] यदुत्तरस्यायनतो गतं स्याच्छेषं तु यद्दक्षिणतोऽयनस्य।
तदेकषष्ट्या द्विगुणं विभक्तं सद्वादशं स्याद्दिवसप्रमाणम्।।
— वही; 22

[5] वही; 4

[6] वही; 11

[7] वही; 16

[8] वही

5.4.1.2 याजुष् ज्योतिष

याजुष् ज्योतिष में भी संख्याओं का विशेष प्रयोग मिलता है। एक अंकवाली संख्या, दो अंकवाली संख्या तथा तीन अंक वाली संख्याओं का प्रयोग इस वेदाङ्ग में किया गया है।

5.4.1.2.1 एक अङ्कवाली संख्याएँ

एक अङ्कवाली संख्या में एक से लेकर नौ तक की समस्त संख्याओं अर्थात् एक[1], दो[2], तीन[3], चार[4], पाँच[5], छः[6], सात[7], आठ[8] तथा नौ[9] इन सब का प्रयोग प्राप्त होता है। इन संख्याओं के लिए जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है, वे निम्नलिखित हैं–

---

1 एकान्तरेऽह्नि मासे च पूर्वान् कृत्वादिरूत्तरः।
अर्धयोः पञ्चपर्वाणां मृदू पञ्चदशाष्टमौ।।
— याजुष् ज्यो०; 11

2 कला दश सविंशा स्याद् द्वे मुहूर्त्तस्य नाडिके।
तत्रिंशतद्युकलानां तु षट्शती त्र्यधिका भवेत।।
— वही; 38

3 पलानि पञ्चाशदपां धृतानि तदाढकं द्रोणमतः प्रमेयम्।
त्रिभिर्विहीनं कुडवैस्तु कार्यं तन्नाडिकायास्तु भवेत् प्रमाणम्।।
— वही; 24

4 प्रथमं सप्तमं चाहुरयनाद्यं त्रयोदशम्।
चतुर्थं दशमं चैव द्विर्युग्माद्यं बहुलेऽप्यृतौ।।
— वही; 9

5 उदया वासवस्य स्युर्दिनराशिः सपञ्चकः।
ऋषेर्द्विषषिृहीनं स्याद् विंशत्या चैकया स्तृणाम्।।
— वही; 29

6 धर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ।
दक्षिणेतौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्त्ययमेन तु।।
— वही; 8

7 या पर्वभादानकलास्तासु सप्तगुणा तिथिः।
युक्ता स्तासां विजानीयात् तिथिभादानिकाः कला।।
— वही; 21

8 वही; 11

9 त्र्यंशी भशेषो दिवसांशभागश्चतुर्दशश्चाप्यपनीय भिन्नम्।
भार्धेऽधिके चापि गते परोंऽशो द्वावुत्तमे तन्नवकैरवेद्युः।।
— वही; 27

एक–एक[1]

दो– द्वि[2]

तीन– त्रि[3]

चार– चतुर्थ[4]

पाँच– पञ्च[5]

छः– षट्[6]

सात– सप्त[7]

---

1 सावनेन्दुस्तृमासानां षष्टिः सैकद्विसप्तिका।
द्यु त्रिंशत् सावनस्याब्द सूर्यस्तृणां सिपर्ययः।।
— याजुष् ज्यो॰; 31

2 सूर्यर्क्षभागान् नवभिर्विभज्य शेषं द्विरभ्यस्य दिनोपभुक्तिः।
तिथियुता भुक्तिदिनेषु कालो योगो दिनैकादशकेन तद्भम्।।
— वही; 26

3 पलानि पञ्चाशदपां धृतानि तदाढकं द्रोणमतः प्रमेयम्।
त्रिभिर्विहीनं कुडवैस्तु कार्यं तन्नाडिकायास्तु भवेत् प्रमाणम्।।
— वही; 24

4 प्रथमं सप्तमं चाहुरयनाद्यं त्रयोदशम्।
चतुर्थें दशमं चैव द्विर्युग्माद्यं बहुलेऽप्यृतौ।।
— वही; 9

5 ससप्तैकं भयुक् सोमः सूर्यो द्यूनि त्रयोदश।
उत्तमानि तु पञ्चान्हः काष्ठा पञ्चाक्षरा भवेत्।।
— वही; 39

6 त्रिशत्यन्हां सषष्टषष्टिरब्दः पञ्चर्त्तवोऽयने।
मासाद्वादश सौराः स्युरेतत् पञ्चगुणं युगम्।।
— वही; 28

7 नवकैरूद्गतोंऽशः स्याद्युतः सप्तगुणो भवेत्।
आवापस्त्वयुजे द्वौ स्यात् पौलस्त्येऽस्तं गतेऽपरम्।।
— वही; 16

आठ- अष्ट[1]

नौ- नव[2]

स्पष्ट है कि एक अङ्कवाली इन संख्याओं के लिए जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है वे आज भी संस्कृत साहित्य में सुरक्षित हैं।

5.4.1.2.2 दो अङ्को वाली संख्याएँ

जहाँ तक दो अङ्को वाली संख्याओं का प्रश्न है ये संख्याएँ 10 से प्रारम्भ होकर 99 तक हैं। इन समस्त संख्याओं का प्रयोग इस लघुकाय वेदाङ्ग ग्रन्थ में तो उपलब्ध नहीं होगा, परन्तु प्रसङ्गवश दो अङ्कवाली अनेक संख्याओं का प्रयोग इस ग्रन्थ में अवश्य दृष्टिगत होता है। ये संख्याएँ हैं- दस[3], ग्यारह[4], बारह[5], तेरह[6], चौदह[7],

---

1 एकान्तरेऽन्हि मासे च पूर्वान् कृत्वादिरूत्तरः।
अर्धयोः पञ्चपर्वाणां मृदु पञ्चदशाष्टमौ।।
— याजुष् ज्यो॰; 11

2 त्र्यंशी भशेषो दिवसांशभागश्चतुर्दशश्चाप्यपनीय भिन्नम्।
भार्धेऽधिके चापि गते परोंऽशो द्वावुत्तमे तन्नवकैरवेद्युः।।
— वही; 27

3 तिथिमर्कदशाभ्यस्तां पर्वभांशसमन्विताम्।
विभज्य भसमूहेन तिथिनक्षत्रमादिशेत्।।
— वही; 20

4 एकादशभिरभ्यस्य पर्वाणि नवभिस्तिथिम्।
युगलब्धं सपर्व स्याद्वर्त्तमानार्कभक्रमात्।।
— वही; 25

5 निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं चापसंयुतम्।
षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरूच्यते।।
— वही; 13

6 ससप्तैकं भयुक् सोमः सूर्यो द्यूनि त्रयोदश।
उत्तमानि तु पञ्चान्हः काष्ठा पञ्चाक्षरा भवेत्।।
— वही; 39

7 वही; 27

इक्कीस[1], तीस[2], इक्तीस[3], पचास[4], साठ[5], एकसठ[6], बासठ[7] और सरसठ[8], बहत्तर[9] इन संख्याओं के लिए निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग हुआ है-

दस- दश[10]

ग्यारह- एकादश[11]

---

1 उदया वासवस्य स्युर्दिनराशिः सपञ्चकः।
ऋषेर्द्विषष्टिहीनं स्याद् विंशत्या चैकया स्तृणाम्।।
— याजुष् ज्यो॰; 29

2 कला दश सविंशा स्याद् द्वे मुहूर्त्तस्य नाडिके।
तन्त्रिशत् द्युकलानां तु षट्शती त्र्यधिका भवेत्।।
— वही; 38

3 दुहेयं पर्व चेत् पादे पादस्त्रिंशत् तु सैकिका।
भागात्मनापवृज्यांशान् निर्द्दिशेदधिको यदि।।
— वही; 12

4 पलानि पञ्चाशदपां धृतानि तदाढकं द्रोणमतः प्रमेयम्।
त्रिभिर्विहीनं कुडवैस्तु कार्यं तन्नाडिकायास्तु भवेत् प्रमाणम्।।
— वही; 24

5 वही; 13

6 यदुत्तरस्यायनतो गतं स्याच्छेषं तथा दक्षिणतोऽयनस्य।
तदेकषष्ट्या द्विगुणं विभक्तं सद्वादशं स्याद् दिवसप्रमाणम्।।
— वही; 40

7 द्यूनं द्विषष्टिभागेन ज्ञेयं सौरं सपार्वणम्।
यत्कृतावुपजायेते मध्येऽन्ते चाधिमासकौ।।
— वही; 37

8 सावनेन्दुस्तृमासानां पष्टिः सैकद्विसप्तिका।
द्यु त्रिंशत् सावनस्याब्दः सौरस्तृणां सिपर्ययः।।
— वही; 31

9 कार्या भांशाष्टकास्थाने कला एकोन्नविंशतिः।
ऊनस्थाने द्विसप्तनि मुद्वपेद्युक्तसम्भवे।।
— वही; 19

10 प्रथमं सप्तमं चाहुरयनाद्यं त्रयोदशम्।
चतुर्थं दशमं चैव द्विर्युग्माद्यं बहुलेऽप्यृतौ।।
— वही; 9

11 एकादशभिरभ्यस्य पर्वाणि नवभिस्तिथिम्।
युगलब्धं सपर्व स्याद्वर्त्तमानार्कभक्रमात्।।
— वही; 25

बारह- द्वादश[1]

तेरह- त्रयोदश[2]

चौदह- चतुर्दश[3]

उन्नीस- एकोन्नविंशति[4]

इक्कीस- विंशति च एकम्[5]

तीस- त्रिंशत्[6]

एकतीस- त्रिंशत सैकिका[7]

पचास- पंचाशद[8]

---

[1] निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं चापसंयुतम्।
षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरूच्यते।।

— याजुष् ज्यो॰; 13

[2] ससप्तैकं भयुक् सोमः सूर्यो द्यूनि त्रयोदश।
उत्तमानि तु पञ्चान्हः काष्ठा पञ्चाक्षरा भवेत्।।

— वही; 39

[3] जावाद्यंशैः समं विद्यात् पूर्वार्धे पर्वसूत्तराः।
भादानं स्याच्चतुर्दश्यां द्विभागेभ्योऽधिको यदि।।

— वही; 17

[4] वही; 19

[5] उदया वासवस्य स्युर्दिनराशिः सपञ्चकः।
ऋषेर्द्विषष्टिहीनं स्याद् विशंत्या चैकया स्तृणाम्।।

— वही; 29

[6] कला दश सविंशा स्याद् द्वे मुहूर्त्तस्य नाडिके।
तत्रिंशत द्युकलानां तु षट्शती त्र्यधिका भवेत्।।

— वही; 38

[7] दुहेयं पर्व चेत् पादे पादस्त्रिंशत् तु सैकिका।
भागात्मनापवृज्यांशान् निर्द्दिशेदधिकको यदि।।

— वही; 12

[8] पलानि पञ्चाशदपां धृतानि तदाढकं द्रोणमतः प्रमेयम्।
त्रिभिर्विहीनं कुडवैस्तु कार्यं तन्नाडिकायास्तु भवेत् प्रमाणम्।।

— वही; 24

साठ- षष्टिः[1]

एकसठ- एकषष्टिः[2]

बासठ- द्विषष्टिः[3]

सरसठ- सप्तिषष्टिः[4]

बहत्तर- द्विसप्तति[5]

5.4.1.2.3 तीन अङ्कवाली संख्याएँ

तीन अङ्कवाली संख्याओं से तात्पर्य सैकड़े वाली संख्याओं से है और ये संख्याएँ 100 से प्रारंभ होकर 999 तक की हैं। इस ग्रन्थ में ऐसी सभी संख्याएँ तो नहीं मिलती परन्तु कुछ संख्याओं का उल्लेख अवश्य मिलता है। ये संख्याएँ हैं- एक सौ चौबीस[6],

---

[1] निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं चापसंयुतम्।
षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरूच्यते।।
— याजुष् ज्यो॰; 13

[2] यदुत्तरस्यायनतो गतं स्याच्छेषं तथा दक्षिणतोऽयनस्य।
तदेकषष्ट्या द्विगुणं विभक्तं सद्वादशं स्याद् दिवसप्रमाणम्।।
— वही; 40

[3] ह्यूनं द्विषष्टिभागेनं ज्ञेयं सौरं सपार्वणम्।
यत्कृतावुपजायेते मध्येऽन्ते चाधिमासकौ।।
— वही; 37

[4] सावनेन्दुस्तृमासानां षष्टिः सैकद्विसप्तिका।
द्यु त्रिंशत् सावनस्याब्दः सौरस्तृणां सिपर्ययः।।
— वही; 31

[5] कार्या भांशाष्टकास्थाने कला एकोन्नविंशतिः।
ऊनस्थाने द्विसप्तति मुद्धपेद्युक्तसम्भवे।।
— वही; 19

[6] तिथिमर्कदशाभ्यस्तां पर्वभांशसमन्वितान्।
विभज्य भसमूहेन तिथिनक्षत्रमादिशेत्।।
— वही; 20

एक सौ चौंतीस[1], एक सौ पैंतीस[2], तीन सौ छयासठ[3] और छः सौ तीन।[4] इन संख्याओं के लिए अधोलिखित शब्द प्रयुक्त हुए हैं-

एक सौ चौबीस (124)- पर्व तथा भांश के गणना संदर्भ में संकेत रूप[5]

एक सौ चौंतीस (134)- एकोन पंचत्रिंशं शतं[6]

एक सौ पैंतीस (135)- पंचत्रिंशंशतं[7]

तीन सौ छयासठ (366)- त्रिंशत् सषट्षष्टिः[8]

छः सौ तीन (603)- षट्शती त्र्यधिका[9]

5.4.1.3 आथर्वण ज्योतिष

आथर्वण ज्योतिष में एक अंकवाली संख्या, दो अंकों वाली संख्या और तीन अंकों वाली संख्याओं का उल्लेख है। इन संख्याओं को विभिन्न प्रसङ्गों में बार-बार उल्लेख किया गया है।

---

1 पञ्चत्रिंशं शतं पौष्णमेकोनमयनान्यृषेः।
पर्वणां स्याच्चतुष्पादी काष्ठानां चैवताः कला।।
— याजुष् ज्यो॰; 30

2 वही

3 त्रिशत्यन्हां सषष्टषष्टिरब्दः पञ्चर्त्तवोऽयने।
मासाद्वादश सूर्याः स्युरेतत् पञ्चगुणं युगम्।।
— वही; 28

4 कला दश सविंशा स्याद द्वे मुहूर्त्तस्य नाडिके।
तत्रिंशत द्युकलानां तु षट्शती त्र्यधिका भवेत्।।
— वही; 38

5 वही; 20

6 वही; 30

7 वही

8 वही; 28

9 वही; 38

5.4.1.3.1 एक अङ्कवाली संख्याएँ

एक अङ्कवाली संख्याओं में एक[1], दो[2], तीन[3], चार[4], पांच[5], छ:[6], सात[7], आठ[8] तथा नौ[9] इन समस्त संख्याओं का उल्लेख आथर्वण ज्योतिष में प्राप्त होता है। इन संख्याओं के लिए निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग हुआ है-

एक- एक[10]

---

1 शकुनिं चतुष्पदं नागं चतुर्थं कौस्तुभं भवेत्।
एकैकस्यतु यत्कर्म तद्वक्ष्यामि पृथक् पृथक्।।
— आथर्वण ज्यो॰; 35

2 सर्व युग्मं छिद्र माहुस्तिथिज्ञा: सामावस्या न द्वितीया दशम्यौ।
कुज श्रेष्ठं तत्रजाग्रं तृतीया सर्वारम्भा वर्जनीया नवम्याम्।।
— वही; 71

3 आधाने जन्मकर्मादौ ज्ञेयान्येतानि पूर्वश:।
त्रिनक्षत्रा: नवगणास्तेषां कर्मफलं श्रृणु:।।
— वही; 111

4 ऋतु: स्वाभाविकस्त्रीणां रात्रय: षोडश: स्मृता:।
चतुर्भिरितरै: सार्धमहोभि: सिद्धिगर्हितै:।।
— वही; 141

5 नन्दाभद्रा जया रिक्ता पूर्णा पक्षस्तु पंचमी।
तिथय: पंच विज्ञेया पक्षयोरूभयोरपि।।
— वही; 66

6 षडष्टौ नव चत्वारि पक्षछिद्राणि वर्जयेत्।
अपि नक्षत्रसम्पन्नां वर्जयेत्तु चतुर्दशीम्।।
— वही; 65

7 पञ्चम्यां पुत्रिणी नारी षष्टयां पुत्रस्तु पुत्रवान्।
सप्तम्यां प्रजां कन्यामष्टम्यामीश्वर: सुत:।।
— वही; 146

8 तृतीया चाष्टमी चैव जया च स्यात् त्रयोदशी।
चतुर्थी नवमी रिक्ता तथैव चतुर्दशी।।
— वही; 68

9 षष्ठीत्वं न लाभाय सप्तमीत्वन्न भाग्भवेत्।
अष्टमी रोगलाभाय नवम्यां न निवर्तते।।
— वही; 61

10 शकुनिं चतुष्पदं नागं चतुर्थं कौस्तुभं भवेत्।
एकैकस्यतु यत्कर्म तद्वक्ष्यामि पृथक् पृथक्।।
— वही; 35

दो- द्वौ[1]

तीन- त्रयः[2]

चार- चतुर्थ[3]

पाँच- पञ्च[4]

छः- षट्[5]

सात- सप्त[6]

आठ- अष्ट[7]

नौ- नव[8]

---

1 मैत्रे मैत्राणि कुर्वीत मित्रकार्याणि नित्यशः।
पञ्चमैत्रं भवेत् किञ्चित् सर्वमेतेन कारयेत्।।

— आथर्वण ज्यो॰; 15

2 वही

3 प्राचीं वैगामिनीं छायां रौहिणास्त्रिषु वर्तते।
बलश्चतुर्षु विख्यातो विजयः पञ्चसु स्मृतः।।

— वही; 9

4 नन्दा भृगौ सोमसुते च भद्रा भौमे जया सूर्यसुते च रिक्ता।
पूर्णा गुरौ पंचसु पंच एते जयावहाः सर्वफलप्रदाश्च।।

— वही; 70

5 नैर्ऋतस्तु षंडगुल्यो वारुणो द्वादशांगुलः।
सौम्यः षष्ठिः समाख्यातो भगस्तु परमस्तथा।।

— वही; 10

6 एकादशभिः करणै मासः संप्रतिपद्यते।
ध्रुवाणि तत्र चत्वारि चराण्यन्यानि सप्त च।।

— वही; 38

7 आगतंतु घटिका पंच वर्तमाने चतुर्दश।
मध्येचाष्टौ विजानीयाद् विष्टिपुच्छेत्रयः स्मृतः।।

— वही; 54

8 सर्व युग्मं छिद्र माहुस्तिथिज्ञाः सामावस्या न द्वितीया दशम्यौ।
कुज श्रेष्ठं तत्रजाग्रं तृतीया, सर्वारम्भा वर्जनीया नवम्याम्।।

— वही; 71

5.4.1.3.2 दो अङ्कोंवाली संख्याएँ

दो अङ्कवाली संख्याएँ दस (10) से प्रारम्भ होकर निनन्यानवे (99) तक हैं। इन समस्त संख्याओं का उल्लेख आथर्वण ज्योतिष में तो नहीं मिलता पर इतना अवश्य है कि दो अङ्कों वाली अनेक संख्याओं का यहाँ उल्लेख अवश्य हुआ है। इन संख्याओं में दस[1], ग्यारह[2], बारह[3], तेरह[4], चौदह[5], पंद्रह[6], सोलह[7], सत्रह[8], अठारह[9], उन्नीस[10],

---

[1] ऐते मुहूर्ता व्याख्याता दशद्वौच तथा त्रयः।
अहन्येव तु विज्ञेया रात्रावपि न संशयः।।
— आथर्वण ज्यो॰; 11

[2] एकादशभिः करणैः मासः संप्रतिपद्यते।
ध्रुवाणि तत्र चत्वारि चराण्यन्यानि सप्त च।।
— वही; 33

[3] नैर्ऋतस्तु षडंगुल्यो वारुणो द्वादशांगुलः।
सौम्यः षष्ठिः समाख्यातो भगस्तु परमस्तथा।।
— वही; 10

[4] द्वादशीत्वर्थनाशाय सन्धि कुर्यात् त्रयोदशी।
चतुर्दशी चलत्कर्म कौतुकान्यत्र कारयेत्।।
— वही; 63

[5] आद्यंतु शकुनिं नाम रात्रौ कृष्ण चतुर्दशी।
आधाने हरणे चैव तथैव च पलायने।।
श्रुत्यानामथ योधानां पक्षिणां ग्रहपोषणे।
चिकित्सायां तु युद्वे च सर्वत्रैतत्प्रशस्यते।।
— वही; 36

[6] सोदकानि च कार्याणि सर्वाण्येवाऽत्र कारयेत्।
कृष्णपञ्चदशीं रात्रौ नागकरणमुच्यते।।
— वही; 39

[7] ऋतुः स्वाभाविकस्त्रीणां रात्रयः षोडशः स्मृताः।
चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सिद्धिगर्हितैः।।
— वही; 141

[8] मैत्रे सप्तदशं विद्यात् षडविंशतिश्चाष्टमम्।
सप्तविंशपरं मैत्रं नवमष्टादशं च यत्।।
— वही; 109

[9] वही

[10] दशमं जन्म नक्षत्रात् कर्म नक्षत्रमुच्यते।
एकोनविंशतिचैव गर्भाधानकमुच्यते।।
— वही; 105

बीस[1], इक्कीस[2], बाईस[3], तेईस[4], चौबीस[5], पच्चीस[6], छब्बीस[7], सत्ताईस[8], तीस[9], बत्तीस[10], साठ[11], नब्बे[12], छियानवे[13] सम्मिलित हैं। इन शब्दों के लिए निम्नलिखित शब्द प्रयुक्त हुए हैं–

---

1 द्वितीयमेकादशमं विंशतिः सम्पत्करोगणः।
तृतीयमेकविंशं तु द्वादशं तु विपत्करम्।।
— आथर्वण ज्यो॰; 106

2 वही

3 क्षेम्यं चतुर्थ द्वाविंशं भवेद्यच्च त्रयोदशम्।
प्रत्वरं पञ्चमं विद्यात्त्रयोविंशं चतुर्दशम्।।
— वही; 107

4 वही

5 साधकं तु चतुर्विंशं षष्ठं पञ्चदशं च यत्।
नैधनं पञ्चविंशं तु षोडशं सप्तमं तथा।।
— वही; 108

6 वही

7 मैत्रे सप्तदशं विद्यात् षडविंशतिश्चाष्टमम्।
सप्तविंशपरं मैत्रं नवमष्टादशं च यत्।।
— वही; 109

8 वही

9 त्रुटीनां तु भवेत् त्रिंशन्मुहूर्तस्य प्रयोजनम्।
द्वादशांगुलमुक्षेपं तस्य छाया प्रमाणतः।।
— वही; 5

10 वारश्चाष्ट गुणः प्रोक्तः करणं षोडशान्वितम्।
द्वात्रिंशत् गुणयोगश्च ताराषष्टि समन्विता।।
— वही; 91

11 श्वेतः षष्टिः समाख्यातो मैत्रोवै द्वादशांगुलः।
षट् सुसारभटोज्ञेयः सावित्रः पञ्चसुस्मृतः।।
— वही; 7

12 नवति षंडगुलाश्चैव प्रतीचीं तां प्रकाशयेत्।
पुरस्तात् सन्धिवेलायां मुहूर्तो रौद्र उच्यते।।
— वही; 6

13 नैर्ऋतस्तु षंडगुल्यो वारुणो द्वादशांगुलः।
सौम्यः षष्ठिः समाख्यातो भगस्तु परमस्तथा।।
— वही; 10

दस- दश[1]

ग्यारह- एकादश[2]

बारह- द्वादश[3]

तेरह- त्रयोदश[4]

चौदह- चतुर्दश[5]

पन्द्रह- पञ्चदश[6]

सोलह- षोडश[7]

---

1 तासामाद्याश्चतस्नस्तु निन्दित्तैकादशी तु या।
त्रयोदशीच शेषास्यु: प्रशस्ता: दशरात्रय:।।
— आथर्वण ज्यो॰; 142

2 पौर्णमास्यां ववं रात्रौ तच्चतुर्थ्यां पुनर्दिवा।
तद्धि तत्सप्तम्यां रात्रौ तच्चैवैकादश्यां दिवा।।
— वही; 31

3 द्वादशीत्वर्थनाशाय सन्धि कुर्यात् त्रयोदशी।
चतुर्दशी चलत्कर्म कौतुकान्यत्र कारयेत्।।
— वही; 63

4 वही

5 आद्यंतु शकुनिं नाम रात्रौ कृष्ण चतुर्दशीं।
आधाने हरणे चैव तथैव च पलायने।।
श्रुत्यानामथ योधानां पक्षिणां गृहपोषणे।
चिकित्सायां तु युद्धे च सर्वत्रैतत्प्रशत्यते।।
— वही; 36

6 भूततन्त्र बलिदद्याच्छत्रूणां परघातकम्।
करणं चतुष्पदं नाम कृष्ण पञ्चदशीं दिवा।।
— वही; 37

7 ऋतु: स्वाभाविकस्त्रीणां रात्रय: षोडश: स्मृता:।
चतुर्भिरितरं सार्धमहोभि: सिद्धिगर्हितै:।।
— वही; 141

सतरह- सप्तदश[1]

अठारह- अष्टादश[2]

उन्नीस- एकोनविंशति[3]

बीस- विंशतिः[4]

इक्कीस- एकविंशः[5]

बाइस- द्वाविंशम्[6]

तेईस- त्रयोविंशम्[7]

चौबीस- चतुर्विंशम्[8]

पच्चीस- पञ्चविंशम्[9]

---

1 मैत्रे सप्तदशं विद्यात् षडविंशतिश्चाष्टमम्।
सप्तविंशपरं मैत्रं नवमष्टादशं च यत्।।

— आथर्वण ज्यो०; 109

2 वही

3 दशमं जन्म नक्षत्रात् कर्म नक्षत्रमुच्यते।
एकोनविंशतिचैव गर्भाधानकमुच्यते।।

— वही; 105

4 द्वितीयमेकादशमं विंशतिः सम्पत्करोगणः।
तृतीयमेकविंशं तु द्वादशं तु विपत्करम्।।

— वही; 106

5 वही

6 क्षेम्यं चतुर्थ द्वाविंशं भवेद्यच्च त्रयोदशम्।
प्रत्वरं पञ्चमं विद्यात्त्रयोविंशं चतुर्दशम्।।

— वही; 107

7 वही

8 साधकं तु चतुर्विंशं षष्ठं पञ्चदशं च यत्।
नैधनं पञ्चविंशं तु षोडशं सप्तमं तथा।

— वही; 108

9 वही

छब्बीस– षड्विंशतिः[1]

सत्ताईस– सप्तविंश[2]

तीस– त्रिंशत्[3]

बतीस्– द्वात्रिंशत्[4]

साठ– षष्टिः[5]

नब्बे– नवति[6]

छियानवे– षड्नवति[7]

उपरोक्त संख्याओं के लिए जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है वे आज भी प्रयुक्त होते हैं।

---

1 मैत्रे सप्तदशं विद्यात् षडविंशतिश्चाष्टमम्।
सप्तविंशपरं मैत्रं नवमष्टादशं च यत्।।
— आथर्वण ज्यो॰; 109

2 वही

3 त्रुटीनां तु भवेत् त्रिंशन्मुहूर्तस्य प्रयोजनम्।
द्वादशांगुलमुक्षेपं तस्य छाया प्रमाणतः।।
— वही; 5

4 वारश्चाष्ट गुणः प्रोक्तः करणं षोडशान्वितम्।
द्वात्रिंशत् गुणयोगश्च ताराषष्टि समन्विता।।
— वही; 91

5 श्वेतः षष्टि समाख्याते मैत्रोवै द्वादशांगुलः।
षट् सुसारभटोज्ञेयः सावित्रः पञ्चसुस्मृतः।।
— वही; 7

6 नवति षडंगुलाश्चैव प्रतीचीं तां प्रकाशयेत्।
पुरस्तात् सन्धिवेलायां मुहर्तो रौद्र उच्यते।।
— वही; 6

7 वही

5.4.1.3.3 तीन अङ्को वाली संख्या

आथर्वण ज्योतिष में तीन अङ्को वाली एक मात्र संख्या का प्रयोग हुआ है और वह संख्या सौ है[1] और इसके लिए 'शत' शब्द प्रयुक्त हुआ है।[2]

संख्याविषयक उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि ऋक् तथा याजुष् ज्योतिष में संख्या सूचक शब्दों के लिए सामान्य अङ्क पद्धति का आश्रय लिया गया है न कि शब्दाकों का।[3] शब्दाङ्क ऐसे संख्यासूचक शब्द होते हैं जिनका प्रयोग संख्याओं के रूप में होता है[4] जैसे गुण-3, युग-4 आदि। वेदाङ्ग ज्योतिष के इन दोनों (ऋक् तथा याजुष्) संस्करणों के अस्तित्व में आने के समय तक शब्दाङ्कों के प्रयोग की शैली का प्रयोग प्रारम्भ नहीं हो पाया था ऐसा उपरोक्त उद्धरणों से सिद्ध होता है।

परन्तु आथर्वण ज्योतिष में संख्याओं के प्रयोग में एक नवीन शैली का प्रयोग हुआ है। संख्याओं के लिए शब्दों का प्रयोग इस ग्रन्थ की विशेषता है। सात के लिए अश्व शब्द का प्रयोग है[5] जबकि पन्द्रह के लिए पूर्ण[6] शब्द प्रयुक्त है। शब्द सङ्केत के अलावा कुछ संकेतों का भी प्रयोग इस ग्रन्थ में मिलता है जैसे चार के लिए चः[7] शब्द का प्रयोग, सम तथा विषम संख्याओं का उल्लेख भी यहाँ मिलता है।[8] सम संख्याओं

---

1 चन्द्रः शतगुणः प्रोक्तस्तस्माच्चन्द्र बलाबलम्।
समीक्ष्य चन्द्रस्य बलाबलानि ग्रहाः प्रयच्छन्ति शुभाशुभानि।
मनः समेतानि यथेन्द्रियाणि कर्माण्यथा यान्ति न केवलानि।।
— आथर्वण ज्यो०; 92

2 वही

3 मुळे, गुणाकर- भारतीय अङ्क पद्धति की कहानी, राजकमल प्रकाशन, पटना, 1975, पृ० 62

4 वही

5 कृत्रिरासदिवादरंभूत दिवाशुचष्ट दिवाहर पूर्णदिवा।
इतिविष्टिरहर्गण रात्रिचरानच कर्म भवेत् कृतमाशु शुभम्।।
— आथर्वण ज्यो०; 58

6 वही

7 वही

8 युग्मासु पुत्राः जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
तस्माद् युग्मासुपुत्रार्थी संविशेदार्तवेस्त्रियाम्।।
— वही; 143

के लिए युग्म शब्द तथा विषम संख्याओं के लिए अयुग्म शब्द का प्रयोग होता है।[1] इन विषम संख्याओं के लिए विकल[2] शब्द भी प्रयोग में आया है।

5.4.2 गणितीय संक्रियाएँ

गणित शास्त्र में वर्णित संक्रियाओं में से जिन संक्रियाओं का प्रयोग वेदाङ्ग ज्योतिष के ऋक्, याजुष् तथा आथर्वण संस्करण में हुआ है अब वेदाङ्ग ज्योतिष में उपलब्ध गणितीय संक्रियाओं को क्रमशः प्रस्तुत किया जा रहा है।

5.4.2.1 योग

गणित की इस संक्रिया के लिए अभ्यास, एकीकरण, जोड़, संकलन, संकलित, मिश्रण, सम्मेलन, सम्मिलन, सम्मीलन, मिलन, प्रक्षेपण, संयोजन, युक्ति, योजन, योजना, युति, समास आदि शब्द भी प्रयुक्त होते है।[3] अनेक संख्याओं का एकीकरण ही जोड़ कहा जाता है।[4] 'योग' शब्द 'युजिर' धातु से 'घञ' प्रत्यय लगाकर बना है, 'युजिर' का अर्थ है योग करना।[5] 'आपस्तम्ब धर्मसूत्र' में भी इस विधि का उल्लेख और इसके लिए 'अभ्यास' तथा 'अभ्यस्त' शब्दों का प्रयोग किया गया है।[6] इसी क्रिया के लिए संकलन शब्द भी प्रयुक्त है। संकलित या संकलन शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक कल संख्याने धातु से बना है, जिसका अर्थ है सम् अर्थात् एक साथ कलन अर्थात् गणन

---

1 युग्मासु पुत्राः जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
तस्माद् युग्मासुपुत्रार्थी संविशेदार्तवेस्त्रियाम्।।
— आथर्वण ज्यो॰; 143

2 कन्या तु विकले ज्ञेया युग्मे भवति मानवः।
तृतीया संततिर्यस्य तदरक्षेत् कुलदूषकम्।।
— वही; 152

3 उपाध्याय, बलदेव- प्राचीन भारतीय गणित, विज्ञान भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978, पृ॰ 148-149

4 संख्यावतां बहूनामेकीकरणं तदेव संकलितम्।
— महा॰सि॰; 15-21

5 वही

6 त्रिक चतुष्कयोः पंचिकाऽक्ष्ण्यारज्जुः। ताभिस्त्रिरग्यताभिरसौ। चतुरभ्यस्ताभिश्श्रोणी।
— आप॰धर्म॰; पृ॰ 761

अर्थात् संख्याओं को एक साथ करना या जोड़ना।[1] गणित की यही क्रिया आङ्ग्लभाषा में Addition नाम से जानी जाती है। जिसका अभिप्राय है- जोड़ना, और इसे स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि दो संख्याओं को एक साथ जोड़ना ही Addition कहा जाता है।[2] विभिन्न वेदों में इस क्रिया की सूचना के लिए 'च'[3] 'साकम्'[4] शब्दों का प्रयोग प्राप्त होता है।

5.4.2.1.1 ऋक् ज्योतिष

गणित की इस संक्रिया का उल्लेख ऋक् ज्योतिष में अनेक स्थानों पर मिलता है। तिथि नक्षत्र में संस्कार विशेष के निरूपण प्रसङ्ग में प्राप्त तिथिभांश को नव अंशों से जोड़ने का निर्देश है।[5] ठीक इसी प्रकार इष्ट तिथि के तुल्य होने पर गत नक्षत्र में उसके कलानयन की प्रक्रिया के सन्दर्भ में भी कला तथा सप्तगुणित तिथि को जोड़ने का निर्देश मिलता है।[6] ऋक् ज्योतिष में ऐसे कई प्रसङ्ग हैं जहाँ जोड़ अर्थात् संकलित

---

1 उपाध्याय, बलदेव- प्राचीन भारतीय गणित, विज्ञान भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978, पृ० 148

2 The process of finding the sum of two numbers called is Addition. In the elementary arthmetic of whole numbers, addition can be regard as the process of accumulating sets of objects.

– Tanton, James - ***Eycyclopedia of Mathematics***. Facts on file, New york, 2005, P. 6

3 i) ये ते रात्रि नृचक्षसो दष्टारो नवतिर्नव।

— अथर्व०; 19-47-3

ii) त्रीणि शता त्री सहस्राण्यगिं त्रिंशच् च देवा नव चासपर्यन्।
औक्षन् घृतैर अस्तृणन् बर्हिर अस्मा आद्इद् धोतारं न्यसादयन्त।।

— ऋ०; 3-9-9

iii) त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिशच्च देवा नव चासपर्यन।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्वोतारं न्यसादयन्त।।

— वही; 10-52-6

4 अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासम् अतिथिग्वं यद् आवम्।।

— वही; 4-26-3

5 पक्षात् पञ्चदशाच्चोर्ध्वं तद् भुक्तमिति निर्दिशेत्।
नवभिस्तद्गतोंऽशः स्याद्युक्तांशो द्वयद्रिकेन तु।।

— ऋक् ज्यो०; 13

6 याः पर्वभादानकलास्तासु सप्तगुणां तिथिम्।
प्रक्षिपेत् तत्समूहं तु विद्याद्भादानिकाः कलाः।।

— वही; 21

की प्रक्रिया का निर्देश मिलता है। उन समस्त प्रसङ्गों को यहाँ सूचीबद्ध किया जा रहा है–

– पाँच संवत्सरात्मक युग की वर्तमान संवत्सर संख्या में से एक घटाकर शेष में बारह का गुणा करें, उसमें **गत माह जोड़ें,** योग को द्विगुणित करे, साठ के प्रत्येक पर्यय में **दो-दो जोड़ें,** यही पर्वों की राशि कही जाती है।[1]

– वर्तमान अब्द में बारह मासों में प्राप्त को अभीष्ट पक्ष करें, वे पक्ष ग्यारह से गुणित होने पर चन्द्रमा के भांश होते हैं, यदि चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में हो तो पूर्व आगत भांश में **आधा जोड़ें।**[2]

– एक वर्ष में चार अष्टकाएँ होती हैं, भांशों के अष्टका स्थान में उन्नीस कलाएँ करे, हीन अष्टका स्थान में **बारह सहित** बहत्तर का क्षेप करें।[3]

– पूर्व प्रकार से पूर्व समय में जो भांश ग्रहण कला प्राप्त होती है, उसमें **सात गुणित तिथि जोड़ें,** तिथि के समान गत नक्षत्र के होने पर ग्रहण करने योग्य कला समझें। यदि पर्व से गत तिथि संख्या समान ही नक्षत्र मान हो तब पर्व नक्षत्र ग्रहण कला में सात से **गुणित तिथि को जोड़ें।**[4]

– अयन के आरम्भ दिन से उत्तर अयन का जो गत भूमि दिनमान हो तथा

---

[1] निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम्।
षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरूच्यते।।
– ऋक् ज्यो॰; 4

[2] भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः।
एकादशगुणाश्चेन्दोः शुक्लेऽर्ध चैन्दवा यदि।।
– वही; 10

[3] कार्या भांशाष्टकास्थाने कला एकोन्नविंशतिः।
ऊनस्थाने द्विसप्ततिमावपेदिनसंयुताम्।।
– वही; 11

[4] याः पर्वभादानकलास्तासु सप्तगुणां तिथिम्।
प्रक्षिपेत् तत्समूहं तु विद्याद्भादानिकाः कलाः।।
– वही; 21

दक्षिणायन आरम्भ दिन से दक्षिणायन का जो गत भूमि दिनमान हो, उसे अयनान्तर्गत कुदिन मान से घटाकर जो शेष दिनमान बचे उसे दो से गुणा कर गुणनफल में एकसठ का भाग देने पर और **लब्ध में बारह जोड़ने से** मुहूर्त्तात्मक दिनमान होता है।[1]

– प्रत्येक पर्व में चान्द्र दिन भाग को जो आधा शेष हो उसे चान्द्र सौर पर्वान्तर पर्वों की **संख्या के साथ जोड़ने पर** जो आये उसे इष्ट पर्व समय में रवि चन्द्र पर्वान्तर समान ऋतु शेष जानना चाहिए।[2]

– पन्द्रह तिथ्यात्मक पक्ष से ऊपर अर्थात् शुक्ल पक्ष के अवसान पर जो तिथिभांश प्राप्त हो उसे **नव अंशों से जोड़ें** युक्तांश वास्तव भांश होगा, उस भांशमान को भुक्त कहें, यदि नक्षत्रवश सावन दिन अपेक्षित हो तो एक कुदिन तथा सात कलामित प्रति नक्षत्र सम्बन्धी कुदिन होता है।[3]

उपरोक्त प्रसङ्ग गणिक के सङ्कलन संक्रिया वेदाङ्ग ज्योतिषीय प्रयोग के लिए प्रमाण सिद्ध होते हैं।

5.4.2.1.2 याजुष् ज्योतिष

सङ्कलन से सम्बन्धित अनेक प्रसङ्ग याजुष् ज्योतिष में निम्नलिखित है-

– सूर्य के उत्तरायण में जाने पर जल के एक परिमाण मात्र दिन बड़ा और रात

---

1 यदुत्तरस्यायनतो गतं स्याच्छेषं तु यद्दक्षिणतोऽयनस्य।
तदेकषष्ट्या द्विगुणं विभक्तं सद्वादशं स्याद्दिवसप्रमाणम्।।
– ऋक् ज्यो॰; 22

2 यदर्धं दिनभागानां सदा पर्वणि पर्वणि।
ऋतुशेषं तु तद्विद्यात् संख्यया सह पर्वणाम्।।
– वही; 23

3 पक्षात् पञ्चदशाच्चोर्ध्वे तद्भुक्तमिति निर्दिशेत्।
नवभिस्तूद्गतोंऽशः स्याद्युक्तांशो त्वद्रिकेन तु।।
– वही; 13

छोटी होती है अयन से रात और दिन में छह मुहूर्त की **वृद्धि** होती है।[1]

– वर्तमान सौराब्द मान को एक हीन कर बारह से गुणित कर गुणनफल को दूना करे, उसमें **गत पर्व को जोड़ें,** जोड़ें हुए को साठ-साठ पदों से **युत करें,** यही चान्द्र पर्वों की राशि होती है।[2]

– वर्तमान अब्द में बारह मासों में प्राप्त को अभीष्ट पक्ष करें। वे पक्ष ग्यारह से गुणित होने पर चन्द्र के अंश होते हैं। यदि चान्द्र पक्ष शुक्ल पक्ष में हो तो पूर्व आगत भांश में **आधा जोड़ें।**[3]

– एक वर्ष में चार अष्टकाएँ होती हैं। भांशों के अष्टका स्थान से उन्नीस कलाएँ करें, हीन स्थान में गणक सूर्य अर्थात् **बारह से युक्त** बहत्तर का प्रक्षेप करें।[4]

– पर्व के **नक्षत्रांश से युक्त** तिथि को बारह और दस से गुणा करें उसे नक्षत्र समूह अर्थात् 124 से विभाजित कर लब्ध को तिथि संबंधी नक्षत्र जानें।[5]

– पर्व समय में जो भांश ग्रहण कला प्राप्त हुई उसमें सात से गुणित **तिथि को जोड़कर** गणक तिथि के समान गत नक्षत्र के होने पर ग्रहण करने योग्य कला

---

1 धर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ।
दक्षिणेतौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्ययनेन तु।।
– याजुष् ज्यो०; 8

2 निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं चापसंयुतम्।
षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरूच्यते।।
– वही; 13

3 भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः।
एकादशगुणश्चोनः शुक्लेऽर्धं चैन्दवा यदि।।
– वही; 15

4 कार्या भांशाष्टकास्थाने कला एकोन्नविंशतिः।
ऊनस्थाने द्विसप्तति मुद्वपेद्युक्तसम्भवे।।
– वही; 19

5 तिथिमर्कदशाभ्यस्तां पर्वभांशसमन्विताम्।
विभज्य भसमूहेन तिथिनक्षत्रमादिशेत।।
– वही; 20

जानें। यदि पर्व से गत तिथि संख्या समान ही गत नक्षत्र मान हो तब पर्व नक्षत्र ग्रहण कला में सात से गुणित **तिथि को जोड़ें।**[1]

उपरोक्त प्रसङ्गों के अतिरिक्त अन्य स्थानों[2] पर भी गणित विषयक संक्रिया का उल्लेख किया गया है।

5.4.2.1.3 आथर्वण ज्योतिष

वेदाङ्ग ज्योतिष के इस संस्करण में गणित की सङ्कलन विधि का प्रयोग प्राप्त नहीं होता है।

5.4.2.2 व्यकलन

किसी राशि में से कुछ घटाने को 'व्यकलित' या 'व्यकलन' कहा जाता है।[3] इस गणितीय क्रिया के लिए व्यकलन, पातन, विशोधन, वियोजन, अपगम, व्युत्कलन तथा व्युत्कलित शब्दों का भी प्रयोग होता है।[4] सामान्य रूप से इसे घटाना भी कहते हैं। घटाना 'घट' धातु के णिजन्त रूप घाटयति से बना है, घाटयति का अर्थ है– हानि पहुँचाना।[5] जबकि इसी क्रिया का सूचक एक अन्य शब्द 'व्यकलित' वि+अव+कल (संख्याने) धातु से कर्त्ताकारक के अर्थ में 'नपुसके भावेक्तः' सूत्र से क्त प्रत्यय लगकर बना है। व्यवकलन तथा व्यवकलित दोनों ही भावार्थक शब्द है और दोनों का अर्थ है 'घटाना'।[6] आचार्य ब्रह्मगुप्त ने 'ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त' में इसके

---

1 याः पर्वभादानकलास्तासु सप्तगुणा तिथिः।
युक्ता स्तासांविजानीयात् तिथिभादानिकाः कलाः।।
— याजुष् ज्यो॰; 21

2 वही; 25, 29, 31, 37, 38, 40, 41

3 संख्यावतां बहूनामेकीकरणं तदेव सङ्कलितम्।
यदपास्तं सर्वधनात् तद्व्यवकलितं तु शेषकं शेषम्।।
— महा॰सि॰; 15–2

4 उपाध्याय, बलदेव– प्राचीन भारतीय गणित, विज्ञान भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978, पृ॰ 154

5 वही, पृ॰ 149

6 वही; पृ॰ 150

लिए व्यवकलित और शोधन शब्दों का प्रयोग किया है[1] इसी प्रकार व्यवकलन तथा अपगम शब्दों का क्रमशः लीलावती[2] तथा श्रीधरकृत पाटी गणित[3] में किया गया है। श्रीधर इसके लिए क्षयात्मक का भी प्रयोग करते हैं।[4] आङ्गलभाषा में यही क्रिया Subtraction कही जाती है और इसे स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि दो संख्याओं के मध्य अंतर को जानने की विधि ही Subtraction है।[5] जबकि Oxford Dictionary के अनुसार एक संख्या में से दूसरे का हटाना ही Subtract कहा जाता है।[6] गणित की इस प्रक्रिया के लिए वेदों में अनेक शब्द जैसे अवम्[7]

---

1 अव्यक्तवर्गधनवर्गवर्गपंचगत षड्गतादीनाम्।
तुल्यानां संकलितव्यवकलिते पृथगतुल्यानाम्।।

— ब्र०सि०; 18-41

2 यदि व्यक्ते युक्तिर्व्यवकलन मार्गेऽसि कुशला।

— लीला०; 11, पृ० 10

3 क्षेपसमं खं योगे राशिरविकृतः खयोजनापागमे।
खस्य गुणनादिके खं सङ्गुणने खेन न खमेव।।

— पा०ग०; 21

4 अभ्यधिकपदस्यैवं विजये संख्या प्रजायते पुंसः।
संख्या क्षयात्मिका चेद् भवति जयो हीनगच्छस्य।।

— वही; पृ० 145

5 "The process of finding the difference of two numbers is called subtraction, in the elementary Arthmetic of whole Numbers, subtraction can be thought of as the process of removing a subset from a set."

– Tanton, James- ***Eycyclopedia of Mathematics,*** Facts on file, New york, 2005, P. 487

6 Deduct (a part-quantity or number) from another-

– Webster, Thomas- ***Illustrated Oxford Dictionary,*** Oxford University Press, New york, 2006, P. 830

7 ये ते रात्रि नृचक्षसो दष्टारो नवतिर्नव।
अशीतिः सन्त्यष्टा उतो त सप्त सप्ततिः।।
पष्टिश्च षट् च रेवती पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि।
चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयत्रिंशच्च वाजिनी।।
द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः।
तेभिनो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः।।

— अथर्व०; 119-47-(3-5)

ऊन[1] एकान्त[2] छिद्र[3] आदि प्रयुक्त हुए हैं। घटाने की क्रिया को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि अंकों को अपने-अपने स्थानों के अनुसार क्रम से अथवा उत्क्रम से घटाना चाहिए।[4] जिस संख्या में कोई संख्या घटाई जाती है उसे सर्वधन या वियोज्य कहा जाता है और जो संख्या घटाई जाती है उसे वियोजक कहते हैं जबकि घटाने से बची हुई संख्या को शेष अथवा अन्तर कहा जाता है।[5]

5.4.2.2.1 ऋक् ज्योतिष

गणित शास्त्र के इस मौलिक प्रक्रिया का प्रयोग ऋक् ज्योतिष में हुआ है। व्यकलन से संबंधित कुछ प्रसङ्ग अधोलिखित है।

- सूर्य के उत्तरायण में जल के एक प्रस्थ समान दिन बढ़ता है और **रात घटती है।** दक्षिणायन की स्थिति इसके विपरीत होती है और अयन में छः मुहूर्त्त **दिन-रात में अन्तर** होता है।[6]

- पाँच संवत्सरात्मक युग की वर्त्तमान संवत्सर संख्या में **से एक घटाकर** शेष में बारह का गुणा करें, उसमें गत माह जोड़ें, योग को द्विगुणित करें, साठ के

---

[1] i) तन्वा ऊनम्

— यजु॰; 3-17

ii) दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते।

— अथर्व॰; 10-8-15

[2] एकान्नविंशति, एकान्नचत्वारिंशत्, एकान्नशत्।

— तै॰सं॰; 17-2-11

[3] यत् मे छिद्रं चक्षुषः हृदयस्य वा।

— यजु॰; 36-2

[4] कार्यः क्रमादुत्क्रमतोऽथ वाऽङ्कयोगो यथास्थानकमन्तरं वा।

— लीला॰; 4, पृ॰ 10

[5] दत्त विभूतिभूषण तथा सिंह अवधेष नारायण- हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास, प्रकाशन ब्यूरो, लखनऊ, 1956, पृ॰ 125

[6] धर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ।
दक्षिणेतौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्त्ययनेन तु।।

— ऋक् ज्यो॰; 7

प्रत्येक पर्यय में दो-दो जोड़ें यह पर्वों की राशि होती है।[1]

– सूर्योदय से **बीते हुए** पर्व के उन्नतांश जो एक सावन दिन में एक सौ चौबीस होते हैं, उनसे द्विगुणित **तिथि को शोधित करें,** शेष उन रात-दिन के वृत्त भागों में जब सूर्य आता है तब वह सूर्य तिथिमान के अन्त को प्राप्त करता है।[2]

– अयन के आरम्भ दिन से उत्तर अयन का जो गत भूमि दिनमान हो तथा दक्षिणायन आरम्भ दिन से दक्षिणायन का जो गत भूमि दिनमान हो, उसे अयनान्तर्गत **कुदिन मान से घटाकर** जो शेष दिनमान बचे, उसे दो से गुणा कर गुणनफल में एकसठ से भाग देने पर और लब्ध में बारह जोड़ने पर मुहूर्तात्मक दिनमान प्राप्त होता है।[3]

– समान दिन-रात काल विषुवत् को दो से गुणित कर एक **एक घटायें** उसे छः से गुणित करें, लब्ध पर्व होगा, उसका आधा भाग तिथि होगा।[4]

उपरोक्त उद्धरण ऋक ज्योतिष में गणितशास्त्र के व्यकलन विषयक प्रयोग की प्रौढ़ता को प्रदर्शित करते हैं।

---

1 निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम्।
षष्ट्या षष्ट्या यतुं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरूच्यते।।
– ऋक् ज्यो०; 4

2 अतीतपार्वभागेभ्यः शोधयेद्द्विगुणं तिथिम्।
तेषु मण्डलभागेषु तिथिनिष्ठां गतो रविः।।
– वही; 20

3 यदुत्तरस्यायनतो गतं स्याच्छेषं तु यद्दक्षिणतोऽयनस्य।
तदेकषष्ट्या द्विगुणं विभक्तं सद्वादशं स्याद्दिवसप्रमाणम्।।
– वही; 22

4 विषुवत् तद्गुणं द्वाभ्यां रूपहीनं तु षड्गुणम्।
यल्लब्धं तानि पर्वाणि तदर्ध सा तिथिर्भवेत्।।
– वही; 31

5.4.2.2.2 याजुष् ज्योतिष

व्यकलन अर्थात् घटाव से सम्बन्धित अनेक प्रसङ्ग याजुष् ज्योतिष में भी उपलब्ध होते है। इस विषय में अधोलिखित उद्धरण द्रष्टव्य है।

– वर्तमान सौराब्द मान को **एक हीन कर** बारह से गुणित कर गुणनफल को दूना करें। उसमें गत पर्व को जोड़ें, जोड़ें हुए को साठ-साठ पदों से युत करें।[1]

– तिथिमान आनयन प्रकार सूर्योदय से गत पर्वों के भुक्त भाग को दो से गुणा कर तिथियों को **उनमें से घटा दें।** उस अहोरात्र वृत्त भाग में सूर्य के होने पर, सूर्य की तिथि में स्थित तिथि का मान गत होता है।[2]

– विषुव संख्या के संख्यात्मक मान है, उसमें दो से गुणा करें, गुणित फल को **एक से रहित करें,** शेष को छः से गुणा करें, यही गुणनफल अपने विषुवत में युगादि से पक्ष होता है।[3]

– वर्तमान सूर्य नक्षत्र के जो भुक्त भाग है उनमें नौ से भाग देकर फल ग्रहण करें, उस फल को दो बार दो से गुणित कर गुणित फल दिनांशमान से पूर्वागत फल **दिनात्मक को हीनकर** शेष ग्रहण करें, वही शेष सूर्य की दिनोपभुक्ति होगा।[4]

---

1 निरेकं द्वादशाभ्यस्तं, द्विगुणं चापसंयुतम्।
षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरूच्यते।।

– याजुष् ज्यो॰; 13

2 अतीतपर्वभागेभ्यः शोधयेद् द्विगुणां तिथिम्।
तेषु मण्डलभागेषु तिथिनिष्ठां गतो रविः।।

– वही; 22

3 विषुवन्तं द्विरभ्यस्तं रूपोनं षड्गुणीकृतम्।
पक्षा यदर्धं पक्षाणां तिथिः स विषुवान स्मृतः।।

– वही; 23

4 सूर्यर्क्षभागान् नवभिर्विभज्य शेषं द्विरभ्यस्य दिनोपभुक्तिः।
तिथि युता भुक्तिदिनेषु कालो योगो दिनैकादशकेन तद्भम्।।

– वही; 26

– युगीन सावन दिन की संख्या के साथ पाँच योग करने से तत्संख्यक सावन दिन में धनिष्ठा नक्षत्र की उदय संख्या होती है। उक्त सावन दिन संख्या **से बासठ घटाने पर** चन्द्र की सावन दिन संख्या होती है तथा इक्कीस घटाने पर चन्द्र के नक्षत्र भोग की संख्या मिलती है।[1]

– अयन के आरम्भ दिन से उत्तर अयन का जो गत भूमि दिनमान हो तथा दक्षिणायन आरम्भ दिन से दक्षिणायन का जो गत भूमि दिनमान हो उसे अयनान्तर्गत **कुदिन मान से घटाकर** जो शेष दिनमान हो, उसे दो से गुणा कर गुणनफल में एकसठ का भाग देने पर लब्ध में बारह जोड़ने पर मुहूर्त्तात्मक दिनमान होगा।[2]

उपरोक्त उद्धरण गणित की व्यकलन परिकर्म पर आधारित है। इन समस्त उदाहरणों में कालमान निर्धारण हेतु व्यकलन क्रिया का आश्रय लिया गया है। इनके अतिरिक्त कई अन्य स्थानों पर भी घटाव क्रिया का वर्णन है।[3]

5.4.2.2.3 आथर्वण ज्योतिष

करण निर्धारण के प्रसङ्ग में गणित की इस संक्रिया का प्रयोग हुआ है।[4] यहाँ कहा गया है कि जिस तिथि में करण जानना है उस तिथि को शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से गिनकर जो संख्या मिले, उसे दूना कर फिर इसमें **एक संख्या घटा दें,** जो शेष

---

1 उदया वासवस्य स्युर्दिनराशिः सपञ्चकः।
ऋषेर्द्विषष्टिहीनं स्यादं विंशत्या चैकया स्तृणाम्।।
– याजुष् ज्यो॰; 29

2 यदुत्तरस्यायनतो गतं स्याच्छेषं तथा दक्षिणतोऽयनस्य।
तदेव षष्ट्या द्विगुणं विभक्तं सद्वादशं स्याद् दिवसप्रमाणम्।।
– वही; 40

3 वही; 41, 8, 13, 17, 21, 22, 23, 24, 26, 27, 29, 30

4 तां तिथिं द्विगुणीकृत्य हीनमेकन्तु कारयेत।
सप्तभिश्च हरेद् भागं शेषं करणमुच्यते।।
– आथर्वण ज्यो॰; 31

रहे उसमें सात का भाग दें, भाग देने पर जो शेष बचे उसको वव से विष्टि पर्यन्त क्रमशः करण समझा जाता[1] है। गर्भाधान प्रसङ्ग में भी व्यकलन का प्रयोग हुआ है।[2]

5.4.2.3 गुणन

संस्कृत में 'गुण' शब्द का सर्व प्राचीन अर्थ रस्सी है और गुने देने से रस्सी जिस प्रकार दुगुनी, त्रिगुनी हो जाती है, ठीक उसी प्रकार गुणन द्वारा भी संख्याएँ दुगुनी, तिगुनी आदि हो जाती है।[3] 'गुण' शब्द अत्यन्त प्राचीन है और इसका उल्लेख गोपथ ब्राह्मण[4] अथर्ववेद[5], वेदाङ्ग साहित्य[6] आदि में मिलता है। परन्तु इतना अवश्य है कि गुणन प्रक्रिया के सूचक के रूप में यह शब्द पहली बार अथर्ववेद[7] में ही प्रयुक्त हुआ है। गुणन प्रक्रिया के लिए समूह, हनन, वध, अभिहित, आहति, कुट्टन, समाहति, प्रहति, घात, क्षय, संताडन आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं।[8] गुणन के लिए आङ्गल भाषा में

---

1 तां तिथिं द्विगुणीकृत्य हीनमेकन्तु कारयेत।
सप्तभिश्च हरेद् भागं शेषं करणमुच्यते।।
— आथर्वण ज्यो॰; 31

2 युग्मासु पुत्राः जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
तस्माद् युग्मासुपुत्रार्थी संविशेदार्तवेस्त्रियाम्।।
— वही; 143

3 उपाध्याय, बलदेव- प्राचीन भारतीय गणित, विज्ञान भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978, पृ॰ 154

4 स चासुसम्भृतस्त्रेधा विह्वत्तः, प्राणोऽपानो व्यान इति ततोऽन्यत्र गुणितस्तथाह, यजमानः सर्वमायुरेव्यस्मिल्लोह आर्ध्नोत्याप्रोत्यमृतत्वमक्षितं स्वर्गे लोके।
— गो॰ब्रा॰; 2-3-7

5 पुण्डरोकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद वै ब्रह्मविदो विदुः।।
— अथर्व॰; 10-8-43

6 निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम्।
षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरूच्यते।।
— ऋक् ज्यो॰; 4

7 पुण्डरोकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद वै ब्रह्मविदो विदुः।।
— अथर्व॰; 10-8-43

8 उपाध्याय, बलदेव- प्राचीन भारतीय गणित, विज्ञान भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978, पृ॰ 155

Multiplication शब्द प्रयोग किया जाता है और इसके विषय में कहा गया है कि दो समान संख्याओं वाले कई समूहों के संग्रह मान को Multiplication कहते हैं।[1] जिस संख्या को गुणा किया जाता है उसे गुणा कहते हैं और जिस संख्या से गुणा किया जाता है उसे 'गुणक' अथवा 'गुणकार' कहते हैं जबकि गुणा करने से संख्या प्राप्त होती है उसे गुणनफल या प्रत्युत्पन्न कहते हैं।[2] आर्यभट्ट के समय तक गुणन की विधियाँ काफी प्रचलित थी और यही कारण है कि उनके ग्रन्थ आर्यभटीय में गुणन की सामान्य विधियों का निवेश नहीं मिलता।[3] ब्रह्मगुप्त ने अपनी रचना में गोमूत्रिका, खण्ड, भेद और इष्ट इन गुणनविधियों का प्रयोग किया है।[4] आर्यभट ने गुणन की कपाटसंधि विधि का उल्लेख करते हुए कहा है कि गुणक की इकाई का अंक गुण्य के अन्तिम वाले अंक के ठीक ऊपर रखते हुए गुणक और गुण्य ऊपर नीचे रखकर स्थापित करें तथा उसके बाद एक-एक करके गुण्य के प्रत्येक अंक से गुणक के सभी अंकों को गुणा करना चाहिए।[5] ब्रह्मगुप्त ने भी इसी प्रक्रिया के निरूपण प्रसङ्ग में

---

1 The process of finding the product of two numbers is called Multiplication. In elementary arithmetic, multiplication can be defined as the process of finding the total number of elements in a collection of sets where each set in that covection has the same number of elements.

– Tanton, James - ***Eycyclopedia of Mathematics,*** Facts on file, New york, 2005

2 दत्त विभूतिभूषण तथा सिंह अवधेष नारायण- हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास, प्रकाशन ब्यूरो, लखनऊ, 1956, पृ॰ 127

3 इष्टं व्येकं दलितं सपूर्वमुत्तरगुणं समुखमध्यं।
इष्टगुणितमिष्टधनं त्वथवाद्यन्तं पदार्घहतं।।
त्रैराशिकफलराशिं तमथेच्छाराशिना हतं कृत्वा।
लब्धं प्रमाणभजितं तस्मादिच्छाफलमिदं स्यात्।।

— आर्य॰; गणितपाद- 19, 26

4 गुणकार खण्डतुल्यो गुण्यौ गोमूत्रिकाक्रतो गुणितः।
सहितः प्रत्युत्पन्नो गुणकारक भेदतुल्यो वा।।
गुण्यो राशिर्गुणकारराशिनेष्टधिकोनकेन गुणः।
गुण्येष्टवधो न युतो गुणकेभ्यधिकोनके कार्यः।।

— ब्र॰सि॰-12-(55-56)

5 गुण्यान्त्यस्थानोपरि गुणकाद्यं स्थापयेत् ततो गुणयेत्।
गुणकस्थानैरखिलैर्गुण्यस्थानानि सर्वाणि।।

— महा॰सि॰; 15-3

इसे वज्रवध[1] शब्द से सूचित किया है। वैदिक ग्रन्थों में गुणन प्रक्रिया हेतु स् प्रत्यय [2], वृत्त[3], ता व धा प्रत्यय [4] कृत्[5] तथा कृत्व[6] प्रत्यय का प्रयोग किया जाता था।

5.4.2.3.1 ऋक् ज्योतिष

'गुणन' गणितशास्त्र की मूलभूत संक्रियाओं में से एक है और इसका प्रयोग ऋक् ज्योतिष में बहुलता से प्राप्त होता है। इस प्रसङ्ग में निम्नलिखित उद्धरण विशेष महत्त्वपूर्ण है।

– सत्ताईस भगण में से धनिष्ठा से जो इष्ट काल भाग हो उसे **गुणित किया** जाता है, उन भागों को धनिष्ठा से गिनकर पूर्व दिशा में भांशों का निर्देश करें,

---

1 वज्रवधैक्यं प्रथमं प्रक्षेपः क्षेपवधतुल्यः।
प्रक्षेपशोधकहृते मूले प्रक्षेपके रूपे।।

– ब्र॰सि॰; 18–68

2 i) द्विर्दश

– ऋ॰; 1–53–9

ii) त्रिः एकादशाः त्रयस्त्रिंशाः।

– काठ॰सं॰; 38–11

3 द्विवद् हिरण्यं दक्षिणा।

– वही; 11–4

4 i) कृणुत द्विता।

– ऋ॰; 10–48–9

ii) द्विधा।

– वही; 10–56–6

iii) अथ वासः। द्विगुणं वा चतुर्गुणं वा प्राग्दशं वोदग्दशं वोपस्तृणाति तद्राज्ञानं मिमीते स यद्राज्ञानं मिमीते तस्मान्मात्रा मनुष्येषु मात्रो यो चाप्यन्या मात्रा।

– शत॰ब्रा॰; 3–3–2–9

5 सकृत्।

– ऋ॰; 1–105–18

6 i) त्रि कृत्वो हरति।

– मैत्रा॰सं॰; 14–1–10

ii) नव कृत्वो निग्राभमुपैति।

– वही; 4–5–7

स्व नाक्षत्र मासों को **छः से गुणित करके** चन्द्र सम्बन्धी ऋतुओं को जाना जा सकता है।[1]

– सूर्योदय से बीते हुए पर्व के उन्नतांश जो एक सावन दिन में एक सौ चौबीस होते हैं, उनसे **द्विगुणित तिथि** को शोधित करें शेष उन रात-दिन के वृत्त भागों में जब सूर्य आता है, तब वह सूर्य तिथिमान के अन्त को प्राप्त करता है।[2]

– पूर्व प्रकार से पर्व समय में जो भांश ग्रहण कला प्राप्त हुई, उसमें **सात से गुणित तिथि** को जोड़ें, तिथि के समान गत नक्षत्र के होने पर ग्रहण करने योग्य कला होती है। यदि पर्व से गत तिथि संख्या समान ही नक्षत्र मान हो तब पर्व नक्षत्र ग्रहण कला में **सात से गुणित तिथि** को जोड़ें।[3]

– अयन के आरम्भ दिन से उत्तर अयन का जो गत भूमि दिनमान हो तथा दक्षिणायन आरम्भ दिन से दक्षिणायन का जो गत भूमि दिनमान हो, उसे अयनान्तर्गत कुदिन मान से घटाकर जो शेष दिनमान बचे, उसे **दो से गुणा कर** गुणनफल में एकसठ से भाग देने पर और लब्ध में बारह जोड़ने से मुहूर्त्तात्मक दिनमान होता है।[4]

---

1 श्रविष्ठाभ्यो गणाभ्यस्तान प्राग् विलग्नान् विनिर्दिशेत्।
स्वार्क्षान्मासान् षडभ्यस्तान् विद्याच्चान्द्रमसानृतून।।
– ऋक् ज्यो०; 19

2 अतीतपार्वभागेभ्यः शोधयेद्द्विगुणं तिथिम्।
तेषु मण्डलाभागेषु तिथिनिष्ठां गतो रविः।।
– वही; 20

3 या पर्वभादानकलास्तासु सप्तगुणां तिथिम्।
प्रक्षिपेत् तत्समूहं तु विद्याद्भादानिकाः कलाः।।
– वही; 21

4 यदुत्तरस्यायनतो गतं स्याच्छेषं तु यद्दक्षिणतोऽयनस्य।
तदेकषष्ट्या द्विगुणं विभक्तं सद्वादशं स्याद्दिवसप्रमाणम्।।
– वही; 22

– पाँच संवत्सरात्मक युग की वर्त्तमान संवत्सर संख्या में से एक घटाकर शेष में **बारह का गुणा करें,** उससे गत माह जोड़े, योग को **द्विगुणित करें,** साठ के प्रत्येक पर्यय में दो–दो जोड़ें यह पर्वों की राशि कही जाती है।[1]

– वर्तमान अब्द में बारह मासों में प्राप्त अभीष्ट पक्ष करें, वे पक्ष **ग्यारह से गुणित** होने पर चन्द्रमा के भांश होंगे, यदि चन्द्र पक्ष शुक्ल पक्ष में हो तो पूर्व आगत भांश में आधा जोड़ें।[2]

उपरोक्त उद्धरणों में विभिन्न कालमान आनयन के लिए गुणन का प्रयोग किया गया है।

5.4.2.3.2 याजुष् ज्योतिष

गुणन परिकर्म से सम्बन्धित अनेक उदाहरण याजुष् ज्योतिष में प्राप्त होते हैं। इस दृष्टि से अधोलिखित उद्धरण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

– वर्तमान सौराब्द मान को एक हीन कर **बारह से गुणित कर गुणनफल को दूना करें।** उसमें गतपर्व को जोड़ें, जोड़ें हुए को साठ–साठ पदों से युत करें।[3]

– वर्तमान अब्द में बारह मासों में प्राप्त अभीष्ट पक्ष करें। वे पक्ष **ग्यारह से गुणित होने** पर चन्द्र के भांश होंगे, यदि चान्द्र पक्ष शुक्ल पक्ष में हो तो पूर्व आगत भांश से आधा जोड़ें।[4]

---

[1] निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम्।
षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरूच्यते।।
– ऋक् ज्यो॰; 4

[2] भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः।
एकादशगुणाश्चेन्दोः शुक्लेऽर्धं चैन्दवा यदि।।
– वही; 10

[3] निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं चापसंयुतम्।
षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरूच्यते।।
– याजुष् ज्यो॰; 13

[4] भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः।
एकादशगुणश्चोनः शुक्लेऽर्धं चैन्दवा यदि।।
– वही; 15

– विषम पक्ष अर्थात् शुक्ल पक्ष के अवसान होने पर पन्द्रहवीं तिथि के उपस्थित होने पर प्राप्त भांश को नवमांशों से **वर्धित (गुणित)** करें तब वास्तव भांशमान होगा। अनन्तर **गतभांश सात गुने से** युत होने पर सावयव रवि सावन दिन होता है।[1]

– पर्व के नक्षत्रांश से युक्त तिथि को **बारह और दस से गुणा कर** उसे नक्षत्र समूह अर्थात् 124 से विभाजित कर लब्ध को तिथि सम्बन्धी नक्षत्र जानें।[2]

– सूर्योदय से बीते हुए पर्व के अन्नतांश जो एक सावन दिन में एक सौ चौबीस होते हैं **उनसे द्विगुणित** तिथि को गणक शोधित करें, शेष उन दिन-रात के वृत्त भागों में जब सूर्य आता है तब वह सूर्य तिथिमान के अन्त को प्राप्त करता है।[3]

– विषुवत के संख्यात्मक मान को **दो से गुणा करें,** गुणित फल को एक से रहित करें, शेष को **छः से गुणा करें,** यह गुणनफल अपने विषुवत् में युगादि से पक्ष होता है।[4]

– युगादि से वर्तमान पर्व पर्यन्त जितने पर्व हो, उन्हें **ग्यारह से गुणित** कर फिर पर्व के अनन्तर जो तिथि हो, उस तिथि की संख्या को **नौ से गुणा कर** दोनों

---

1 नवकैरूद्गतोंऽशः स्याद्युतः सप्तगुणो भवेत्।
आवापस्त्वयुजे द्वौ स्यात् पौलस्त्येऽस्तं गते परम्।।
– याजुष् ज्यो०; 16

2 तिथिमर्कदशाभ्यस्तां पर्वभांशसमन्विताम्।
विभज्य भसमूहेन तिथिनक्षत्रमादिशेत्।।
– वही; 20

3 अतीतपर्वभागेभ्यः शोधयेद् द्विगुणां तिथिम्।
तेषु मण्डलभागेषु तिथिनिष्ठां गतो रविः।।
– वही; 22

4 विषुवन्तं द्विरभ्यस्तं रूपोनं षड्गुणीकृतम्।
पक्षा यदर्धं पक्षाणां तिथिः स विषुवान् स्मृतः।।
– वही; 23

को एकत्रित कर युग में जितन पर्व हो उस संख्या से लब्धफल पर्वमान के सहित किया जाय तो वह क्रम से सूर्य नक्षत्र होता है।[1]

याजुष् ज्योतिष में उपरोक्त उद्धरणों के अतिरिक्त अन्य कई प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं[2], जिनमें गुणन की विधि का वर्णन प्राप्त होता है।

5.4.2.3.3 आथर्वण ज्योतिष

गुणन की प्रक्रिया भी इस ग्रन्थ में अनेक स्थान पर वर्णित है। इस विषय पर निम्नलिखित सन्दर्भ द्रष्टव्य हैं-

– जिस तिथि में करण जानना हो, उस तिथि को शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से गिनकर जो संख्या मिले, **उसे दो गुणा कर** फिर उसमें एक संख्या घटा दें, जो शेष रहे उसमें सात का भाग दें, भाग देने पर जो शेष मिले उसको वव से विष्टि पर्यन्त क्रमशः करण समझा जा सकता है।[3]

– जैसे पति के विदेश जाने पर या बीमार अथवा मर जाने पर पत्नी सभी कार्यों को करती है, उसी प्रकार चन्द्रमा के कृष्ण पक्ष में न रहने पर **तिथि एक गुना** तथा **नक्षत्र चौगुना** शुभदायी कहा गया है, अर्थात् तिथि का एक गुण और नक्षत्र का चार गुण मान्य होता है।[4]

– वार अर्थात् दिन का **आठ गुणाफल** करण का **सोलह गुणाफल** योग का

---

1 एकादशभिरभ्यस्य पर्वाणि नवभिस्तिथिम्।
युगलब्धं सपर्व स्याद्वर्त्तमानार्कभक्रमात्।।
– याजुष् ज्यो०; 25

2 वही; 26, 28, 30, 38, 40

3 तां तिथिं द्विगुणीकृत्य हीनमेकन्तु कारयेत।
सप्तभिश्च हरेद् भागं शेषं करणमुच्यते।।
– आथर्वण ज्यो०; 31

4 विदेश जाते विकले चपत्यौ सर्वाणि कार्याणि करोति पत्नी।
तिथिरेकं गुणा प्रोक्ता नक्षत्रं च चतुर्गुणम्।।
– वही; 90

बत्तीस गुणाफल, तारा का साठ गुणा फल होता है।[1]

– चन्द्रमा का **फल सौ गुणा** होता है, इसलिए चन्द्रमा का बलाबल अवश्य देखना चाहिए, क्योंकि अन्य ग्रह भी चन्द्रमा के बलाबल के अनुसार ही शुभ या अशुभ फल देते है।[2]

उपरोक्त उद्धरण गणित के गुणन संक्रिया के महत्त्वपूर्ण उदाहरण है।

5.4.2.4 भाग

भाग शब्द 'भज्' (विश्राण ने) धातु से घञ् प्रत्यय लगकर बना है। विश्राणन का अर्थ है- बाँटना।[3] प्राचीन काल से 'भाग' शब्द का प्रयोग 'हिस्सा' अर्थ में होता रहा है।[4] भाग अर्थ को प्रकट करने के लिए भज् धातु के अतिरिक्त वि-भज् धातु[5], वि द्या धातु[6], वन धातु[7], सन् धातु[8], धा प्रत्यय तथा शः प्रत्यय[9] का प्रयोग वैदिक

---

1 वारश्चाष्ट गुणः प्रोक्तः करणं षोडशान्विताम्।
द्वात्रिंशत् गुणयोगश्च ताराषष्टि समन्विता।।
— आथर्वण ज्यो॰; 91

2 चन्दः शतगुणं प्रोक्तस्तस्माच्चन्द्र बलाबलम्।
समीक्ष्य चन्द्रस्य बलाबलानि ग्रहाः प्रयच्छन्ति शुभाशुभानि।
मनः समेतानि यथेन्द्रियाणि कर्माण्यथा यान्ति न केवलानि।।
— वही; 92

3 उपाध्याय, बलदेव- प्राचीन भारतीय गणित, विज्ञान भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978, पृ॰ 159

4 अधारयन्त वह्नयो भजन्त सुकृत्यया। भागं देवेषु यज्ञम्।
— ऋ॰; 1-20-8

5 भागं विभजसि
— वही; 1-123-3

6 अर्थान् त्यदधात्।
— यजु॰; 40-81

7 अस्मभ्यं वनसे रत्नम्।
— ऋ॰; 1-40-11

8 सनोति वाजम्।
— वही; 13-25-21

9 एकैकशः।
— शत॰ब्रा॰; 19-1

संहिताओं में मिलता है। भाग की संक्रिया के लिए भागहर, भाजन, विभाजन, विभाग, छेद, हरण आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं[1] आङ्गलभाषा में भाग की विधि को Divison शब्द से सूचित करते हैं। Division शब्द को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि किसी संख्या में दूसरी संख्या को बार-बार घटाने की प्रक्रिया को Division कहा जाता है।[2] जिस संख्या को भाग दें वह भाज्य, विभाज्य छेद्य, हार्य तथा जिसमें भाग देने में जितने 'बार' (आवृत्ति) जाय उन्हें लब्धि या लक्ष्य कहते हैं और भाज्य का भाजक से छोटा जो अंश बचा रहता है उसे शेष कहते हैं।[3] इस गणितीय संक्रिया का उल्लेख करते हुए आर्यभट्ट द्वितीय ने कहा है कि- भाज्य के नीचे बाँयी और भाजक को रखकर, भाज्य में से भाजका का जितने गुना घट सके घटाओ, इस प्रकार जितने गुणा भाजक घट जाए, वह आंशिक लब्धि हुई। इसके बाद भाजक को एक स्थान हटाकर रखो और उससे शेष (भाज्य) को पूर्ववत् भाग दें, जब तक भाज्य भाजक से कम न हो जाय, ऐसा ही करते रहना चाहिए।[4]

5.4.2.4.1 ऋक् ज्योतिष

भाग की संक्रिया का प्रयोग वेदाङ्ग ज्योतिष के ऋक् संस्करण में बहुलता से किया गया है। भाग की इस संक्रिया के स्वरूप को समझने के लिए अधोलिखित प्रसङ्ग द्रष्टव्य हैं-

— समान दिन-रात काल विषुवत् को दो से गुणित कर एक घटायें, उसे छः से

---

1 उपाध्याय, बलदेव- प्राचीन भारतीय गणित, विज्ञान भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978, पृ० 160

2 The process of finding the quatient of two numbers is called division. In elementary arthmetic, the process of division can be viewed as repeated Subtration.

– Tanton James - ***Encyclopedia of Mathematics,*** Facts on file, New york, 2005

3 उपाध्याय, बलदेव- प्राचीन भारतीय गणित, विज्ञान भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978, पृ० 160

4 भाज्यस्याधो हारं निधाय भाज्यात् त्यजेदमीष्टगुणम्।
हारमीष्टं लब्धं शेषं विभजेद्धरं समुत्सार्य।।
गुणहारौ गुण्यहरौ भाज्यच्छेदेन केनापि।
विभजेत् तल्लब्धाभ्यामविकृतजसमं फलं भवति।।

— महा०सि०; 15 (4-5)

गुणित करें वही लब्ध पर्व होता है तथा उसका **आधा भाग (½)** तिथि होती है।[1]

– वेध से ज्ञात राशि में प्राप्त किसी पदार्थ को जानकर ज्ञेय राशि में उस पदार्थ को ले आने के लिए– ज्ञान राशि सम्बन्धी गत पदार्थ से गुणित ज्ञेय राशि को ज्ञान **राशि से विभाजित** करें, फल ज्ञेय राशि सम्बन्धी उस पदार्थ का मान होगा, इसी प्रकार ज्ञान राशि से पुनः पुनः सावनदिनादि जानें।[2]

– अयन के आरम्भ दिन से उत्तर अयन का जो गत भूमि दिनमान हो तथा दक्षिणायन आरम्भ दिन से दक्षिणायन का जो गत भूमि दिनमान हो, उसे अयनान्तर्गत कुदिन मान से घटाकर जो शेष दिनमान बचे, उसे दो से गुणा कर गुणनफल में **एकसठ से भाग देने** पर और लब्ध में बारह जोड़ने से मुहूर्तात्मक दिनमान होगा।[3]

– चन्द्रमा जितने समय में नक्षत्र से युक्त होता है वह समय सात कला अधिक एक रवि सावन दिन होता है। इसी प्रकार सूर्य जितने काल में एक नक्षत्र भोगता है वह काल तेरह सावन दिन तथा **पाँच बटा नव ($^5/_9$) भाग** होता है। पाँच गुरू अक्षरों के उच्चारण समकाल की एक काष्ठा होती है।[4]

---

1 विषवत् तद्गुणं द्वाभ्यां रूपहीनं तु षडगुणम्।
यल्लब्धं तानि पर्वाणि तदर्धं सा तिथिर्भवेत्।।

– ऋक् ज्यो॰; 31

2 इत्युपायसमुद्देशो भूयोऽप्येवं प्रकल्पयेत्।
ज्ञेयराशिं गताभ्यस्तं विभजेज्ज्ञानराशिना।।

– वही; 24

3 यदुत्तरस्यायनतो गतं स्याच्छेषं तु यद्दक्षिणतोऽयनस्य।
तदेकषष्ट्या द्विगुणं विभक्तं सद्वादशं स्याद्दिवसप्रमाणम्।।

– वही; 22

4 ससप्तैकं भयुक् सोमः सूर्यो द्यूनि त्रयोदश।
नवमानि च पञ्चान्हः काष्ठा पञ्चाक्षरा स्मृता।।

– वही; 18

– प्रत्येक पर्व में चान्द्र दिन भाग को जो **आधा (½)** शेष हो, उसे चान्द्र सौर पर्वान्तर पर्वो की संख्या के साथ जोड़ने पर जो आये उसे इष्ट पर्व समय में रवि चन्द्र पर्वान्तर समान ऋतु शेष जाने।[1]

गणित की इस संक्रिया के ये प्रयोग ग्रन्थकार के गणित विषयक ज्ञात की सूक्ष्मता को सिद्ध करते हैं।

5.4.2.4.2 याजुष् ज्योतिष

गणित की इस प्रक्रिया का बाहुल्य ऋक् ज्योतिष के समान ही याजुष् ज्योतिष में भी किया गया है। जैसे अनेक प्रसङ्ग हैं जिनमें भाग की विधि का उल्लेख तथा प्रयोग किया गया है। ऐसे कुछ उद्धरण निम्नलिखित हैं–

– पर्व के नक्षत्रांश से युक्त तिथि को बारह और दस से गुणा कर उसे नक्षत्र समूह अर्थात् **125 से विभाजित कर लब्ध** को तिथि सम्बन्धी नक्षत्र जानें।[2]

– वर्तमान सूर्य नक्षत्र के जो भुक्त भाग हो उन्हें **नव से विभाजित कर** फल ग्रहण करें उस फल को दो बार दो से गुणित कर गुणित फल दिनांशमान से पूर्वागत फल दिनात्मक को हीन कर शेष ग्रहण करें, वही शेष सूर्य की दिनोपभुक्ति होगा।[3]

– सौर नक्षत्रमान युग में एक सौ पैंतीस होता है, यह मान एक कम अर्थात् एक

---

1 यदर्धं दिनभागानां सदा पर्वणि पर्वणि।
ऋतुशेषं तु तद्विद्यात् संख्यया सह पर्वणाम्।।
– ऋक् ज्यो॰; 23

2 तिथिमर्कदशाभ्यस्तां पर्वभांशसमन्विताम्।
विभज्य भसमूहेन तिथिनक्षत्रमादिशेत्।।
– याजुष् ज्यो॰; 20

3 सूर्यर्क्षभागान् नवभिर्विभज्य शेषं द्विरभ्यस्य दिनोपभुक्तिः।
तिथि युता भुक्तिदिनेषु कालो योगो दिनैकादशकेन तद्भम्।।
– वही; 26

सौ चौंतीस युग में चन्द्र का अयन होता है। युग में जो चन्द्रपर्व एक सौ चौबीस होते है, उनका **चतुर्थांश (चौथा भाग)** पर्वपाद कहा जाता है।[1]

– चन्द्रमा जितने समय में नक्षत्र से युक्त होता है, वह समय सात कला अधिक एक रवि सावन दिन होता है। इसी प्रकार सूर्य जितने काल में एक नक्षत्र का भोग करता है वह काल तेरह सावन दिन तथा **दिन का पाँच भाग नव ($^5/_9$)** होता है।[2]

– अयन के आरम्भ दिन से उत्तर अयन का जो गत भूमि दिनमान हो तथा दक्षिणायन आरम्भ दिन से दक्षिणायन का जो गत भूमि दिनमान हो उसे अयनान्तर्गत कुदिनमान से घटाकर जो शेष दिनमान हो उसे दो से गुणा कर गुणनफल में **एकसठ का भाग देने पर** लब्ध में बारह जोड़ने पर मुहूर्त्तात्मक दिनमान प्राप्त होता है।[3]

– पूर्व प्रतिपादित विधि से वेधोपाय का उपदेश समझे–वेध से ज्ञात राशि में प्राप्त किसी पदार्थ को जानकर, ज्ञेयराशि में उस पदार्थ को ले जाने के लिए ज्ञान राशि सम्बन्धी गत पदार्थ से गुणित ज्ञेयराशि को **ज्ञान राशि से विभाजित करें,** फल ज्ञेयराशि सम्बन्धी उस पदार्थ का मान होता है।[4]

---

1 पञ्चत्रिंशं शतं पौष्णमेकोनमयनान्यृषेः।
पर्वणां स्याच्चतुष्पादी काष्ठानां चैवताः कला।।
– याजुष् ज्यो॰; 30

2 ससप्तैकं भयुक् सोमः सूर्यो द्यूनि त्रयोदश।
उत्तमानि तु पञ्चान्हः काष्ठा पञ्चाक्षरा भवेत्।।
– वही; 39

3 यदुत्तरस्यायनतो गतं स्याच्छेषं तथा दक्षिणतोऽयनस्य।
तदेव षष्ट्या द्विगुणं विभक्तं सद्वादश स्याद् दिवसप्रमाणम्।।
– वही; 40

4 इत्युपायसमुद्देशो भूयोऽप्यन्हः प्रकल्पयेत्।
ज्ञेयराशिं गताभ्यस्तं विभजेज्ज्ञानराशिना।।
– वही; 42

उपरोक्त उद्धरणों में सामान्य भाग की क्रिया का उल्लेख तो किया गया ही है, साथ ही साथ भिन्न का भी प्रयोग किया गया है।

5.4.2.4.3 आथर्वण ज्योतिष

भाग की प्रक्रिया का उल्लेख आथर्वण ज्योतिष में उपलब्ध है। निम्नलिखित प्रसङ्ग द्रष्टव्य हैं-

- ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र इन सभी वर्णों के सम्बन्ध में मध्यादिन 'अभिजित्' मुहूर्त्त श्रेष्ठ माना गया है।[1] इस उदाहरण में 'मध्यदिन' का मान बिना भाग की क्रिया के संभव नहीं।
- जिस तिथि का करण जानना हो उस तिथि को शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से गिनकर जो संख्या मिले, उसे दूना कर फिर उसमें एक संख्या घटा दें। जो शेष रहे उसमें **सात का भाग दें, भाग देने पर** जो शेष मिले उसको वव से विष्टि पर्यन्त क्रमशः करण समझें।[2]

5.4.2.5 त्रैराशिक नियम

त्रैराशिक शब्द का अर्थ है- तीन-राशियाँ अर्थात् तीन राशियों से सम्बन्ध रखने वाला नियम।[3] क्योंकि इस संक्रिया में न्याय और करण के लिए तीन राशियों की आवश्यकता पड़ती है, अतएव यह नियम त्रैराशिक कहलाता है।[4] त्रैराशिक के प्रश्नों को हल करने के लिए निम्नलिखित नियम दिया गया है- त्रैराशिक के प्रश्नों में

---

[1] ब्रह्म क्षत्रिय वैश्यानां शूद्राणां चापि नित्यशः।
सर्वेषामेव वर्णानां योगो मध्यं दिनेऽभिजित्।।
— आथर्वण ज्यो॰; 20

[2] तां तिथिं द्विगुणीकृत्य हीनमेकन्तु कारयेत।
सप्तभिश्च हरेद् भागं शेषं करणमुच्यते।।
— वही; 31

[3] दत्त, विभूतिभूषण तथा अवशेष नारायण- हिन्दू गणितशास्त्र का इतिहास, प्रकाशन ब्यूरो, लखनऊ, 1956, पृ॰ 193

[4] भास्करकृत आर्यभटीय भाष्य।

फलराशि को इच्छा राशि से गुणा करना चाहिए और प्राप्त गुणनफल को प्रमाण राशि से भाग देना चाहिए। इस प्रकार भाग करने से जो लब्धि प्राप्त होती है वही इच्छा फल है।[1] इसी प्रक्रिया हेतु ब्रह्मगुप्त का कथन है कि "त्रैराशिक में प्रमाण, फल और इच्छा नाम की तीन राशियाँ होती हैं, जिनमें पहली और अंतिम राशियाँ एक जाति की होती है। इच्छा को फल से गुणा करने पर और उस गुणनफल को प्रमाण से भाग देने पर इच्छा फल मिलता है।"[2]

त्रैराशिक की विभिन्न राशियों के पारिभाषिक शब्दावली में भी कुछ मतान्तर है। इस सन्दर्भ में आर्यभट का कथन है कि "पहली राशि को 'मान' कहते है, मध्य राशि को विनिमय कहते हैं और अन्तिम राशि को 'इच्छा' कहते हैं।" पहली और अन्तिम राशियाँ एक जाति की होती हैं। 'मध्य' राशि को 'अन्तिम' राशि से गुणा करके गुणनफल को 'पहली' राशि से भाग देने पर इच्छा फल मिलता है।[3]

इस गणितीय संक्रिया में तीन ज्ञात राशियों के आधार पर चौथी अज्ञात राशि ज्ञात करने का विधान मिलता है। तीन ज्ञात राशियाँ– प्रमाण राशि, फल राशि और इच्छा राशि होती हैं।[4] अज्ञात राशि प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित सूत्र का आश्रय लिया जाता है।[5]

---

1 त्रैराशिफलराशिं तमथेच्छराशिना हतं कृत्वा।
लब्धं प्रमाणभजितं तस्मादिच्छाफलमिदं स्यात्।।
— आर्य॰; गणितपाद, 26

2 त्रैराशिके प्रमाणफलमिछाद्यं तयोः सदृशराशिः।
इच्छाफलेन गुणिता प्रमाणाभक्ताफलं भवति।।
— ब्र॰सि॰; 12-101

3 आघो राशिर्मानं विनियमसंज्ञो भवेन्मध्यः।
इच्छासंज्ञोऽन्त्यः स्यादाद्यान्तावेकजातीया।।
— महा॰सि॰; 15-24

4 उपाध्याय, बलदेव- प्राचीन भारतीय गणित, विज्ञान भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978, पृ॰ 175

5 प्रमाणमिच्छा च समानजाती आघन्तयोस्तत्फलमन्यजातिः।
मध्ये तदिच्छाहतमाद्यहृत् स्यादिच्छाफल व्यस्तविधिर्विलोमे।।
— लीला॰; 7, पृ॰ 100

$$\text{अज्ञात राशि} = \frac{\text{इच्छा राशि} \times \text{फल राशि}}{\text{प्रमाण राशि}}$$

उपरोक्त नियम को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

– यदि 200 आम का मूल्य 1000 रु. है। तो 300 आम का मूल्य क्या होगा?

– इस उदाहरण में प्रमाण राशि 200, फलराशि 1000 एवं इच्छाराशि 300 है। अतः अभीष्ट राशि का मान = $\frac{300 \times 1000}{200} = 1500$ रु.

इस नियम की भारतीय गणित परम्परा में बड़ी ही प्रतिष्ठा है और इसे समस्त अंकगणित का मूल कहा गया है और विमलबुद्धि ही बीज गणित है, अर्थात् समस्त अंकगणित त्रैराशिक से ओतप्रोत है।[1]

5.4.2.5.1 ऋक् ज्योतिष

त्रैराशिक नियम को ऋक् ज्योतिष में प्रस्तुत किया गया है और कहा गया है- वेध से ज्ञात राशि में प्राप्त किसी पदार्थ को जानकर, ज्ञेय राशि में उस पदार्थ को ले आने के लिए, ज्ञान राशि सम्बन्धी गत पदार्थ से गुणित ज्ञेय राशि को ज्ञान राशि से विभाजित करें। फल ज्ञेय राशि सम्बन्धी उस पदार्थ का मान होगा, इसी प्रकार ज्ञान राशि से पुनः पुनः सावनादि दिन जानें।[2]

5.4.2.5.2 याजुष् ज्योतिष

इसी त्रैराशिक नियम के सन्दर्भ में याजुष् ज्योतिष में भी चर्चा की गई है और कहा गया है कि "पूर्वोक्त विधि से कहा गया बार-बार सब कर्मों में प्रकल्पि करना

---

1 अस्तित्रैराशिकं पाटी बीजं च विमला मतिः।
किमज्ञातं सुबुद्धीनामतो मन्दार्थमुच्यते।।
– लीला॰; 12, पृ॰ 93

2 इत्युपायसमुद्देशो भूयोऽप्येवं प्रकल्पयेत्।
ज्ञेयराशिं गताभ्यस्तं विभजेज्ज्ञानराशिना।।
– ऋक् ज्यो॰; 24

चाहिए। वेध के द्वारा ज्ञात राशि को प्राप्त करके पदार्थ को जानकर, उसके बाद ज्ञेयराशि में उस पदार्थ का आनयन करके, गणना करके, ज्ञानराशि सम्बन्धितगत होने से गुणा करने के उपरान्त गत ज्ञान राशि के द्वारा विभाजित कर देना चाहिए। लब्धि ज्ञेयराशि सम्बन्धी उस पदार्थ का नाम होगा।[1]

5.4.2.5.3 आथर्वण ज्योतिष

आथर्वण ज्योतिष में गणित शास्त्र की इस संक्रिया से सम्बन्धित उदाहरण का अभाव है।

वैदिक संहिताओं तथा वेदाङ्ग ज्योतिष के संस्करणों में प्राप्त तथ्य इंगित करते हैं कि प्राचीन भारतीय कैलेण्डर पद्धति मूल रूप से गणित पर ही आधारित था। जहाँ वैदिक संहिताओं में उपलब्ध वैदिक कैलेण्डर अव्यवस्थित था वही वेदाङ्ग ज्योतिष कालीन कैलेण्डर पद्धति पूर्णत: गणितशास्त्रीय सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण तात्कालिन परिस्थितियों के दृष्टिकोण से भी शुद्ध था। स्पष्ट है कि इन वेदाङ्ग ग्रन्थों में उपलब्ध गणितशास्त्र के सिद्धान्त अत्यन्त स्फुट तथा विकसित हैं।

---

[1] इत्युपायसमुद्देशो भूयोऽप्यन्ह: प्रकल्पयेत्।
ज्ञेयराशिं गताभ्यस्तं विभजेज्ज्ञानराशिना।।
– याजुष् ज्यो॰; 42

उपसंहार

उपसंहार

मानव ने सृष्टि के आरम्भ से ही ज्योतिष-शास्त्र के अस्तित्व को स्वीकार किया है जिसका रूप समय-समय पर परिवर्तित व संशोधित होता गया। जब मनुष्य ने पहली बार सूर्य, चन्द्रमा या तारों को आकाशमण्डल में प्रतिभासित होते हुए देखा होगा तभी ज्योतिषमान् पिण्डों के अवलोकन स्वरूप ज्योतिषशास्त्र अस्तित्व में आ गया ऐसा माना जा सकता है क्योंकि नभोमण्डल में उपस्थित ज्योतिषमान् पिण्डों का अवलोकन अध्ययन आदि ही तो ज्योतिषशास्त्र कहा जाता है। सूर्य की उपस्थिति तथा अनुपस्थिति को आधार मानकर दिन तथा रात की परिकल्पना प्रारम्भ हुई और फिर इसके बाद मौसम तथा वातावरण के अन्य अवयवों यथा वृष्टि, रात्र में चन्द्रमा की उपस्थिति ने भी इस कालबोधक शास्त्र के विकास को गति प्रदान की। सम्पूर्ण विश्व का बुद्धिजीवी वर्ग एक स्वर से वेदों को मानव जाति की सर्वाधिक प्राचीन रचना मानता है, भले ही इसके रचनाकाल को लेकर मतान्तर हो। परन्तु यह ग्रन्थ ज्ञान के अगाध भण्डार के रूप में आज भी प्रतिष्ठित है। अत्यधिक प्राचीन रचना होने के कारण इसकी भाषा अत्यन्त जटिल और दुर्बोध है और यह स्थिति ईस्वी सन् के ठीक बाद की कुछ सदियों में ही उत्पन्न हो गई थी। तभी से वेद के प्रकाण्ड विद्वानों ने इसे सरल, सुबोध तथा सर्वगम्य बनाने की दिशा में विशेष प्रयास किये। यही कारण है कि षड् वेदाङ्ग शिक्षा, कल्प, निरूक्त, व्याकरण, छन्द और ज्योतिष अस्तित्व में आए।

वैदिक साहित्य में देवताओं तथा प्राकृतिक शक्तियों के मानवीकरण की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। यही कारण है स्वयं वैदिक साहित्य भी इस प्रवृत्ति से अछूता नहीं रहा और सम्पूर्ण वैदिक साहित्य को एक पुरुष के रूप में परिकल्पित कर इसे 'वेद पुरुष' नाम से अभिहित कर दिया गया। इस वेद पुरुष के विभिन्न अङ्गो के रूप में वेदाङ्ग प्रतिष्ठित हुए और इन अङ्गों में भी सर्वप्रथम अङ्ग नेत्र रूप में ज्योतिष शास्त्र

को ही मान्यता मिली। काल का निर्धारण आकाशस्थ ज्योतिषमान् पिण्डों पर ही आधारित था और इसके सूक्ष्म अवलोकन हेतु नेत्रों का ही आश्रय लिया जाता था, अतः यही कारण हो सकता है कि ज्योतिष वेदाङ्ग को वेद पुरुष का नेत्र माना गया।

सम्पूर्ण वैदिक साहित्य कर्मकाण्ड प्रधान है। ऋग्वेद के अधिकांश भागों में यज्ञ, स्तुति, प्रार्थना आदि का वर्णन, सम्पूर्ण यजुर्वेद का यज्ञपरक होना, सामवेद में यजन के समय प्रयुक्त होने वाले सामों का सङ्कलन तथा अथर्ववेद के विभिन्न कर्म-काण्ड व तान्त्रिक क्रियाएँ इस मत को प्रबलता से पुष्ट करते है। ध्यान देने वाली बात यह है कि ये समस्त यज्ञ काल सापेक्ष माने गए है अर्थात् एक काल विशेष में ही इन यागों के अनुष्ठान का विधान किया गया है। स्पष्ट है कि यदि उचित समय में किए गए यज्ञ यजमान को तत्काल शुभ फल प्रदान करते है तो अशुभ या अनुचित समय में किए गए यागादि अनुष्ठान अनिष्ट फलोत्पादक होगे। यही कारण है कि इन यागों के उचित काल निर्धारण हेतु ही ज्योतिष वेदाङ्ग अस्तित्व में आया।

वैदिक संहिताओं यथा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद अपने वर्ण्य विषय की दृष्टि से नितान्त भिन्न प्रतीत होते है। यही कारण है कि सामवेद को छोड़कर प्रत्येक वैदिक संहिता का अपना ज्योतिष वेदाङ्ग प्राप्त होता है। ऋग्वेद संहिता का ज्योतिष वेदाङ्ग "ऋक् ज्योतिष" यजुर्वेद संहिता का ज्योतिष वेदाङ्ग "याजुष् ज्योतिष" तथा अथर्ववेद का ज्योतिष वेदाङ्ग "आथर्वण ज्योतिष" नाम से उपलब्ध है। इनमें से ऋक् व याजुष् ज्योतिष के रचनाकार महर्षि लगध है जबकि आथर्वण ज्योतिष ब्रह्मा व काश्यप ऋषि के सम्वाद रूप में है। इन ग्रन्थों में काल के अखण्ड तथा कलनात्मक स्वरूप दोनों पर ही चर्चा की गई है और ये ग्रन्थ इन्हीं कालमानों के शुभाशुभत्व निर्धारण और इनके वैशिष्ट्य को स्थापित करने के लिए प्रतिबद्ध प्रतीत होते है।

वैदिक संहिताओं के समान इन ज्योतिष वेदाङ्ग विषयक ग्रन्थों में भी

ज्ञान-विज्ञान दर्शन आदि से सम्बन्धित अनेक तथ्य प्राप्त हो जाते है। भारतीय ज्योतिषशास्त्र का विषय अत्यन्त विस्तीर्ण है और इसके तीन प्रमुख स्कन्ध माने गए है सिद्धान्त, संहिता और होरा। ज्योतिषशास्त्र की इन शाखाओं से संबंधित साहित्य तथा चिंतन की परम्परा का विकास यद्यपि परवर्ती काल में अधिक हुआ है फिर भी वेदाङ्ग ज्योतिष के विभिन्न संस्करणों में इनसे संबंधित अनेक तथ्य उपलब्ध हो जाते है। वेदाङ्ग ज्योतिष का प्रत्येक संस्करण ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही उद्घोष करता है कि इन ग्रन्थों का मूल उद्देश्य काल निर्धारण है। अतः यह सिद्ध होता है कि ये ग्रन्थ मूलरूप से काल तत्व को ही समर्पित है। अतः आवश्यक है कि इन ग्रन्थों में काल तत्त्व के स्वरूप को पहले समझ लिया जाय।

काल के जो दो स्वरूप अखण्ड काल तथा गणनात्मक काल दार्शनिक विचारधारा द्वारा स्वीकृत किए गए है वे दोनों ही स्वरूप इन ग्रन्थों में उपलब्ध होते है। इन ग्रन्थों में काल पुरुष का स्मरण उनकी वंदना और काल ज्ञान के कारण मरणोपरान्त ऊर्ध्वलोकों की प्राप्ति काल के अखण्ड और विभु स्वरूप का प्रतिपादन करता है और इसे ब्रह्म के समान ही अनन्त, विभु और अनश्वर सिद्ध करता है। इस अनन्त काल के प्रवाह को जो कि एक रेखा के समान न होकर एक वृत्त की परिधि के सदृश है, उसके कुछ छोटे खण्डों के स्वरूप का विश्लेषण और वर्णन ही गणनात्मक काल के स्वरूप में समझा जा सकता है।

नभस्थ सूर्य, चन्द्र व नक्षत्र समूहों की गति के आधार पर ज्योतिष वेदाङ्ग के इन संस्करणों में काल के विभिन्न खण्ड यथा युग, सम्वत्सर, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, अहोरात्र, मुहूर्त्त आदि स्थूल मानों का उल्लेख मिलता है। ऋक् ज्योतिष के आरंभ में ही पाँच वर्ष वाले एक वृहत 'युग', संज्ञक कालमान का उल्लेख किया है। इसके बाद उत्तरायण व दक्षिणायन का वर्णन तथा इन अयनों में दिन तथा रात के मान में होने वाले परिवर्त्तनों का भी उल्लेख है। ऋतु तथा मासों का उल्लेख इस ग्रन्थ में तो है ही साथ ही साथ कृष्ण पक्ष तथा शुक्ल पक्ष का भी वर्णन यहाँ मिल जाता है।

तिथि, दिवा व रात्रिमान का उल्लेख इस ग्रन्थ की महत्ता को स्पष्ट करने वाला है। अपेक्षाकृत सूक्ष्म कालमानों में मुहूर्त्त, नाडिका, कला, पल, आढक, कुम्भिका, द्रोण आदि के वर्णन के साथ-साथ इन कालमानों के पारस्परिक सम्बन्ध को भी दर्शाया गया है यथा एक भूदिन में तीस मुहूर्त्त, एक मुहूर्त्त में दो नाडिका, एक नाडिका, $10^1/_2$ कला के बराबर मानवाली होती है। ठीक यही प्रक्रिया याजुष् ज्योतिष में भी वर्णित है। इन सूक्ष्म कालमानों के साथ-साथ विभिन्न तिथियों का भी वर्णन यहाँ मिल जाता है। कालमान के विषय में आथर्वण ज्योतिष विशेष महत्व का है। इस ग्रन्थ में काल के वृहद खण्डों की अपेक्षा सूक्ष्म कालमानों पर विशेष चर्चा की गई है। संवत्सर, अयन, ऋतु आदि पर विशेष वृहद चर्चा न करते हुए महीने से छोटे कालमानों यथा पक्ष, तिथि, वार, करण, मुहूर्त्त, त्रुटि, कला लव, निमेष आदि पर विशेष चर्चा की गई है। मास का विभाजन कृष्ण पक्ष व शुक्ल पक्ष में है तथा इन्हें भी तिथियों में बाँटा गया है। ये तिथियाँ भी नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता तथा पूर्णा संज्ञक समूहों में विभक्त की गई है तथा अपने नामकरण के अनुसार ही शुभ तथा अशुभ फल देने वाली कही गई है। विभिन्न तिथियों में की जाने वाली यात्राओं के कारण उत्पन्न शुभाशुभ फलों पर भी इस ग्रन्थ में पर्याप्त विचार किया गया है।

ज्योतिष वेदाङ्ग के तीनों संस्करणों में से केवल आथर्वण ज्योतिष में ही वार विचार किया है और स्पष्ट रूप से इसका नामकरण रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरूवार, शुक्रवार व शनिवार इस प्रकार हुआ है। इन वारों को किये जाने वाले कर्मों पर भी यहाँ विस्तृत चर्चा मिलती है। तिथि से ठीक छोटा कालमान करण है और ये संख्या में ग्यारह माने गए है। करण दो समूहों में वर्गीकृत किए गए है ध्रुव तथा चर। इन करणों के स्वामी देवताओं के रूप में, गरूड़, वृषभ, नाग, कुबेर, विष्णु, प्रजापति, सोम, इन्द्र, वासुदेव, मणिभद्र तथा मृत्युदेव का उल्लेख है। करण संज्ञक कालमान का प्रयोग ज्योतिष वेदाङ्ग के इस संस्करण की नवीन चिंतन शैली का निदर्शन है। इन करणों में प्रशस्त तथा निन्दित कर्मों से संबंधित कार्यों पर भी विशेष

रूप से विचार किया गया है। ज्योतिष वेदाङ्ग के ऋक् तथा याजुष् संस्करणों में मुहूर्त्त संज्ञक कालमान का उल्लेख तो अवश्य है परन्तु मुहूर्त्त निर्धारण हेतु एक विशेष यंत्र का प्रयोग पहली बार इसी आथर्वण ज्योतिष में ही प्राप्त होता है। जहाँ बारह अंगुल वाली एक लकड़ी का प्रयोग यंत्र के रूप में किया गया है और सूर्य द्वारा बनने वाली इस लकड़ी की छाया के आधार पर ही मुहूर्त्त निर्धारण की एक नितान्त ही नवीन व सरल विधि का परिचय प्रस्तुत किया गया है। छाया की लंबाई के आधार पर ही मुहूर्त्तों का नामकरण किया गया है और ये संख्या में कुल तीस अर्थात् दिन में पन्द्रह और रात में पन्द्रह होते है। मुहूर्त्त के निर्धारण के बाद इन मुहूर्त्तों में करणीय और निन्दित कर्मों का भी यहाँ उल्लेख है और प्रत्येक का एक दूसरे के साथ तुलनात्मक मान भी स्पष्ट किया गया है।

सूर्य तथा चन्द्र के अतिरिक्त नक्षत्रों को भी काल निर्णय में प्रमुखता दी गई है। ये ग्रन्थ नक्षत्रों के नामकरण तो प्रस्तुत करते है और इस प्रस्तुतीकरण में भी वैज्ञानिक विधि का आश्रय लिया गया है। ये नाम संक्षिप्त तो है ही साथ ही साथ एक विशेष क्रम में भी रखे गए है। नक्षत्रों के नामकरण के अधिष्ठाता देवताओं का निरूपण इन ग्रन्थों के वैशिष्ट्य को और अधिक बढ़ा देता है। नक्षत्रों के नामकरण ऋक् ज्योतिष तथा याजुष् ज्योतिष में उपलब्ध होते है। साथ ही साथ इन नक्षत्रों के देवताओं का नामकरण भी इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है। याजुष् ज्योतिष नक्षत्रों को उग्र तथा क्रूर इन दो श्रेणियों में विभाजित करने का प्रयास करता है जबकि इस विषय में ऋक् ज्योतिष मौन है। नक्षत्रों के शुभाशुभत्व पर विशेष चर्चा आथर्वण ज्योतिष में उपलब्ध होती है जहाँ इनका विभाजन उत्तम, मध्यम और अधम वर्गों में किया गया है। नक्षत्रों का किया गया नामकरण यथा जन्म, संपत्कर, विपत्कर, क्षेम्य, प्रत्वर, साधक, नैधन, मित्र और परममैत्र में भी शुभाशुभत्व के संकेत मिल जाते है। इन नक्षत्रों में कृत्याकृत्य पर भी विशेष विचार किया गया है और यहाँ एक वृहत सूची के भी दर्शन होते है जिनमें विभिन्न नक्षत्रों में प्रशस्त तथा निषिद्ध कर्मों को सूचीबद्ध किया गया है।

ज्योतिष वेदाङ्ग का अथर्ववेदीय संस्करण विभिन्न कालावयवों यथा तिथि, करण, मुहूर्त्त आदि में से नक्षत्र को ही श्रेष्ठ मानता है और जीवन में उन्नति प्राप्ति हेतु नक्षत्रों के उचित ज्ञान की आवश्यकता पर भी बल देता है।

काल का स्वरूप, काल निर्धारण तत्त्व और विभिन्न काल-मानों के निर्धारण के मूल में गणितशास्त्र है। एक निश्चित काल खण्ड के आरम्भ तथा उसके अन्त के मध्य स्थित विभिन्न कालमानों को सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का साधन कैलेण्डर कहा जाता है और कैलेण्डर की यह पद्धति गणित शास्त्र पर ही आधारित है। यही कारण है कि भारतीय ऋषियों ने इस शास्त्र को विशेष प्रतिष्ठा प्रदान की है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही ज्योतिष शास्त्र के लिए 'गणित' शब्द का प्रयोग होता आ रहा है। याजुष् ज्योतिष में भी ज्योतिष शब्द के स्थान पर गणित शब्द प्रयुक्त है और इसकी श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए इसकी तुलना मोर की कलगी और नाग की मणि से की गई है। आज भी सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र को गणित व फलित दो भागों में ही विभक्त माना जाता है। गणितशास्त्र की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और ज्योतिष वेदाङ्ग भी इस शास्त्र की प्रतिष्ठा तथा विकास में पूर्णतः सहायक ही सिद्ध हुआ है। गणित शास्त्र में वर्णित संकलन, व्यकलन, गुणन, भाग, त्रैराशिक आदि परिकर्मों का प्रयोग ज्योतिष वेदाङ्ग के विभिन्न संस्करणों में हुआ है। ऋक् ज्योतिष तथा याजुष् ज्योतिष इस दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इन ग्रन्थों में गणित की प्रारम्भिक मौलिक परिकर्मों यथा जोड़, घटाव, गुणा, भाग आदि का प्रयोग तो यत्र-तत्र किया ही गया है, साथ ही साथ त्रैराशिक जैसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त का उल्लेख व प्रयोग इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता को और बढ़ा देता है। इन ग्रन्थों में छोटी तथा बड़ी दोनों ही संख्याओं का प्रयोग हुआ है। हाँ इतना अवश्य है कि संख्या की सीमा सहस्र को पार नहीं कर पाई है। अङ्को को सूचित करने के लिए संख्या के अतिरिक्त संख्या सूचक शब्दों यथा आदित्य (12) आदि का प्रयोग इन ग्रन्थों के महत्त्व को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

ग्रन्थ के साङ्गोपाङ्ग अध्ययन से स्पष्ट है कि ज्योतिष वेदाङ्ग के ये तीनों ही संस्करण भारतीय वैज्ञानिक, दार्शनिक, ज्योतिषीय तथा गणित शास्त्रीय दृष्टिकोण से अत्यन्त ही महत्त्व का है। ऋक् ज्योतिष तथा याजुष् ज्योतिष जहाँ भारतीय प्राचीन ज्ञान परम्परा का दर्शन कराने वाले है वही आथर्ववेदीय ज्योतिष वेदाङ्ग ज्योतिष शास्त्र के विकास का मार्ग प्रशस्त करने वाला सिद्ध होता है। कारण यह है कि यही वह पहला ज्योतिष वेदाङ्गीय ग्रन्थ है जहाँ विभिन्न कालमानों के शुभाशुभत्व पर इतना विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। इन्हीं ग्रन्थों को आधार मानकर परवर्त्ती शास्त्रकारों ने विभिन्न ग्रन्थों की रचना की तथा संस्कृत शास्त्र परम्परा को समद्ध बनाने की दिशा में अविस्मरणीय स्तुत्य प्रयास किया। ग्रन्थ में वर्णित काल विषयक चिन्तन, कैलेण्डर निर्माण विधि, गणित के विभिन्न सिद्धान्त, आकाशीय पिण्डों का अवलोकन व विश्लेषण फलित ज्योतिष के विकास सूत्र आदि अनेक ऐसे विषय है जो इन ज्योतिष वेदाङ्ग के ग्रन्थों को कालजयी होने के साथ-साथ विशिष्ट महत्त्व का सिद्ध करते है।

सङ्केत–सूची

अथर्व॰	–	अथर्ववेद
अष्टा॰	–	अष्टाध्यायी
आर्य॰	–	आर्यभटीयम
अ॰पु॰	–	अग्नि पुराण
आथर्व॰ ज्यो॰	–	आथर्वण ज्योतिषम्
आप॰ धर्म॰	–	आपस्तम्भ धर्मसूत्र
आश्व॰ गृह्य॰	–	आश्वलायन गृह्यसूत्र
आश्व॰ श्रौत॰	–	आश्वलायन श्रौतसूत्रम्
ईशा॰	–	ईशावास्योपनिषद्
ई॰प्र॰वि॰	–	ईश्वरप्रतिभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी
ऐ॰आ॰	–	ऐतरेय आरण्यक
ऐ॰ब्रा॰	–	ऐतरेय ब्राह्मण
ऋ॰	–	ऋग्वेद संहिता
ऋक्॰	–	ऋक्तन्त्र
ऋ॰ज्यो॰	–	ऋक् ज्योतिष
ऋ॰प्रा॰	–	ऋग्वेद प्रातिशाख्य
का॰सू॰	–	कामसूत्र

कारि॰	–	कारिकावली
काठ॰सं॰	–	काठक संहिता
कपि॰सं॰	–	कपिष्ठल संहिता
कौ॰अर्थ॰	–	कौटिल्य अर्थशास्त्र
कौ॰ब्रा॰	–	कौषीतकीय ब्राह्मण
गो॰ब्रा॰	–	गोपथ ब्राह्मण
च॰सं॰	–	चरक संहिता
छ॰सू॰	–	छन्दसूक्त
छा॰उप॰	–	छान्दोग्योपनिषद्
जात॰भ॰	–	जातकाभरणम्
जात॰सार॰	–	जातक सारदीप
ज्योति॰भ॰	–	ज्योतिर्विदाभरणम्
त॰सं॰	–	तर्कसंग्रह
त॰सि॰र॰	–	तन्त्रसिद्धान्तरत्नावली
ता॰ब्रा॰	–	ताण्डय ब्राह्मण
तै॰उप॰	–	तैत्तिरीय उपनिषद्
तै॰प्रा॰	–	तैत्तिरीय प्रातिशाख्य
तै॰सं॰	–	तैत्तिरीय संहिता
ना॰शा॰	–	नाट्य शास्त्र

ना॰महा॰	–	नारद महापुराण
ना॰सं॰	–	नारद संहिता
निरू॰	–	निरूक्त
न्याय॰म॰	–	न्यायमञ्जरी
पञ्च॰ब्रा॰	–	पञ्चविंश ब्राह्मण
पञ्च॰सि॰	–	पञ्च सिद्धान्तिका
पा॰	–	पाठ
पा॰ग॰	–	पाटी गणित
पार॰गृह्य॰	–	पारस्कर गृह्यसूत्र
पा॰शि॰	–	पाणिनि शिक्षा
प्र॰उप॰	–	प्रश्नोपनिषद्
प्र॰मा॰	–	प्रश्नमार्ग
प्र॰पा॰भा॰	–	प्रशस्त पाद भाष्यम्
बृहद॰उप॰	–	बृहदारण्यकोपनिषद्
बृ॰	–	बृहत्संहिता
बृ॰प॰हो॰	–	बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्
ब्रह्म॰पु॰	–	ब्रह्मवैवर्त पुराण
ब्र॰सि॰	–	ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त
भवि॰पु॰	–	भविष्य पुराण

भा॰प॰	–	भाषा परिच्छेद
मनु॰	–	मनुस्मृत्ति
महा॰	–	महाभारतम्
महा॰भा॰	–	महाभाष्य
महा॰सि॰	–	महासिद्धान्त
म॰सि॰कौ॰	–	मध्यसिद्धान्तकौमुदी
मार्क॰पु॰	–	मार्कण्डेय पुराण
माण्डू॰उप॰	–	माण्डूक्योपनिषद्
मुण्डको॰	–	मुण्डकोपनिषद्
मु॰चि॰	–	मुहूर्त्तचिन्तामणि
मैत्रा॰उप॰	–	मैत्रायणी उपनिषद्
मैत्रा॰सं॰	–	मैत्रायणी संहिता
यजु॰	–	यजुर्वेद
याजुष् ज्यो॰	–	याजुष् ज्योतिष
याज्ञ॰स्मृ॰	–	याज्ञवल्क्यस्मृति
ल॰ज्यो॰	–	लगध ज्योतिष
लि॰पु॰	–	लिङ्ग पुराण
लीला॰	–	लीलावती
व॰सं॰	–	वशिष्ट संहिता

वा॰पदी॰	–	वाक्यपदीयम्
वा॰रा॰	–	वाल्मीकि रामायण
वा॰सं॰	–	वाजसनेयी संहिता
वा॰पु॰	–	वायु पुराण
वे॰ज्यो॰	–	वेदाङ्ग ज्योतिष
वै॰ज्यो॰	–	वैदिक ज्योतिष
वैशे॰सू॰	–	वैशेषिकसूत्रम्
शत॰ब्रा॰	–	शतपथ ब्राह्मण
शांखा॰आ॰	–	शांखायन आरण्यक
शांखा॰ श्रौ॰	–	शांखायन श्रौतसूत्र
शुक्र॰	–	शुक्रनीति
श्वेता॰	–	श्वेताश्वेतरोपनिषद्
श्लो॰वा॰	–	श्लोकवार्तिकम्
षड्॰ब्रा॰	–	षड्विंश ब्राह्मण
श्री॰भग॰गी॰	–	श्रीमद्भगवद्गीता
सर्वा॰चि॰	–	सर्वार्थ चिन्तामणि
सारा॰	–	सारावली
साम॰सं॰	–	सामवेद संहिता
सा॰वि॰ब्रा॰	–	सामविधान ब्राह्मण

सि॰द॰	–	सिद्धान्तदर्पण
सि॰बि॰	–	सिद्धान्तबिन्दु
सि॰शि॰	–	सिद्धान्तशिरोमणि
सू॰सि॰	–	सूर्यसिद्धान्त
स्था॰सू॰	–	स्थानांगसूत्र

शोध सार

सृष्टि के आरम्भ में सूर्य–चन्द्रादि आकाशीय पिण्डों के अस्तित्व में आते ही यह ज्योतिषशास्त्र भी अस्तित्व में आ गया। हाँ इतना अवश्य है कि इस शास्त्र के व्यवस्थित अध्ययन की परम्परा काफी बाद में शुरू हुई। मानव सभ्यता के आरम्भ में मनुष्य सूर्य, चन्द्रमा आदि प्राकृतिक तत्त्वों को बड़ी कौतुहलता के साथ देखता था। इसमें होने वाला परिवर्त्तन आदि मानव को भयभीत करते थे और यही कारण है कि इन प्राकृतिक तत्त्वों पर देवत्व को आरोपित किया गया और इनसे दया, क्षमा, स्नेह आदि की याचना की जाने लगी। वैदिक संहिताओं में भी यही भावना दृष्टिगत होती है। इन प्राकृतिक शक्तियों की प्रार्थना, उपासना आदि के लिए विभिन्न कर्मकाण्डों, यज्ञ, यागादि की व्यवस्था की गई। इन यज्ञों को काल विशेष में करने की आवश्यकता पर बल दिया गया और यही कारण है कि कालान्तर में ज्योतिष वेदाङ्ग अस्तित्व में आया। चारों वेदों में से सामवेद को छोड़कर शेष तीनों संहिताओं अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद के ज्योतिष वेदाङ्ग उपलब्ध होते है।

प्रथम अध्याय : ज्योतिष साहित्य परम्परा और वेदाङ्ग ज्योतिष

इस अध्याय में सर्वप्रथम ज्योतिष साहित्य की परम्परा को प्रस्तुत करने के क्रम में वैदिक साहित्य, स्मृति ग्रन्थों, पुराण, रामायण, महाभारत तथा अन्य स्वतन्त्र ज्योतिषाशास्त्रीय ग्रन्थों को आधार माना गया है। इन ग्रन्थों में उपलब्ध ज्योतिषशास्त्र विषयक सिद्धान्तों को भी यथावसर उद्धृत किया गया है। इसके बाद 'ज्योतिष' शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ को स्पष्ट करने के बाद ज्योतिषशास्त्र के पाँचों स्कन्धों का परिचय प्रस्तुत है। अध्याय में आगे वेदाङ्ग शब्द का अर्थ तथा महत्त्व को स्पष्ट करने के साथ–साथ छः वेदाङ्गों का सामान्य स्वरूप भी स्पष्ट किया गया है। वेदाङ्गों में शीर्षस्थ ज्योतिष वेदाङ्ग के उपलब्ध तीनों ही संस्करणों अर्थात् ऋक्, याजुष् तथा आथर्वण ज्योतिष का विशद् वर्णन किया गया है। वेदाङ्ग ज्योतिष के रचना काल को

स्पष्ट करने के क्रम में ग्रन्थ के आभ्यन्तर तथा बाह्य साक्ष्यों को आधार माना गया है। साथ ही साथ इन तीनों ही संस्करणों पर आधावधि पर्यन्त किए गए शोध-कार्यों का सार प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय : काल स्वरूप और वेदाङ्ग ज्योतिष

इस अध्याय के आरम्भ में 'काल' शब्द का सामान्य परिचय तथा 'काल' के विकास की परम्परा को प्रस्तुत किया गया है। इस क्रम में वैदिक साहित्य, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक ग्रन्थ, उपनिषद् साहित्य, रामायण तथा महाभारत में उपलब्ध तथ्यों को आधार माना गया है। प्राचीन संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त लौकिक साहित्य के विभिन्न शास्त्रीय ग्रन्थों को भी 'काल' के स्वरूप निर्धारण का आधार मानते हुए इन ग्रन्थों में उपलब्ध तथ्य तथा सिद्धान्त को समाहित किया गया है। इन लौकिक शास्त्रों में दर्शनशास्त्र, चिकित्सा शास्त्र तथा ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थों को प्रमुखता दी गई है। इस अध्याय के अंत में वेदाङ्ग ज्योतिष के विभिन्न संस्करणों अर्थात् ऋक्, याजुष् तथा आथर्वण ज्योतिष में उपलब्ध काल के स्वरूप को यथाशक्य उपस्थापित करने का प्रयास किया गया है।

तृतीय अध्याय : वेदाङ्ग ज्योतिष में वर्णित काल परिमाण की इकाईयाँ

तृतीय अध्याय काल की विभिन्न इकाईयों को समर्पित है। इस अध्याय में अलग-अलग उपशीर्षकों के द्वारा वेदाङ्ग ज्योतिष के ऋक्, याजुष् तथा आथर्वण संस्करणों में उपलब्ध काल इकाईयों के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। युग, सम्वत्सर, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वार, करण तथा मुहूर्त्त संज्ञक काल परिमाण की इकाईयों की वेदाङ्ग ज्योतिषीय आनयन प्रणाली का भी सम्यक् वर्णन इस अध्याय में उपलब्ध है। इन काल परिमाण की इकाईयों के अतिरिक्त कई अन्य सूक्ष्म कालमान भी इन ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। अतः इस अध्याय में एक पृथक् उपशीर्षक द्वारा इन सूक्ष्म काल मानों के आनयन विधि को स्पष्ट किया गया है।

चतुर्थ अध्याय : वेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्र सम्बन्धी अवधारणा

इस अध्याय में सर्वप्रथम 'नक्षत्र' शब्द की व्युत्पत्ति तथा परिभाषा को प्रस्तुत करने के बाद नक्षत्र के विकास क्रम को दर्शाया गया है। अश्विन्यादि सत्ताईस नक्षत्रों का क्रमिक विकास तथा वेदाङ्ग ज्योतिष में उपलब्ध इनके स्वरूप पर ही यह अध्याय पूर्णतः केन्द्रित है।

पञ्चम अध्याय : वेदाङ्ग ज्योतिष की कैलेण्डर पद्धति की गणितीय प्रक्रियाएँ

इस अध्याय में सर्वप्रथम कैलेण्डर शब्द को स्पष्ट करने के साथ कैलेण्डर के विकास की प्रक्रिया को भी प्रस्तुत किया गया है। इस सन्दर्भ में वैदिक कैलेण्डर तथा वेदाङ्ग ज्योतिषीय कैलेण्डर के स्वरूप को भी उपनिबद्ध किया गया है। कैलेण्डर पद्धति पूर्णतः गणितशास्त्र पर आधारित होती है, अतः 'गणित' शब्द का अर्थ तथा गणितशास्त्र के प्रतिपाद्य विषय को उपस्थापित किया गया है तथा वेदाङ्ग ज्योतिष के कैलेण्डर पद्धति में गणित की इन प्रक्रियाओं के उपयोग को भी स्पष्ट किया गया है। गणित की प्रक्रियाओं यथा- योग, व्यकलन, गुणन तथा भाग की प्रक्रिया की कैलेण्डर पद्धति में उपयोग को ऋक् ज्योतिष, याजुष् ज्योतिष तथा आथर्वण ज्योतिष के आधार पर पृथक्-पृथक् उपशीर्षक के अधीन उपनिबद्ध किया गया है।

इसके उपरान्त शोध-प्रबंध का उपसंहार प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थ के अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थ सूची संलग्न की गई है जिसमें अकारादि उच्चारण क्रम के आधार पर मूल तथा सहायक ग्रन्थों को सूचीबद्ध किया गया है। इसके बाद हिन्दी तथा अंग्रेजी सन्दर्भ ग्रन्थ तथा कोश ग्रन्थ भी सूचीबद्ध है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

मूल–ग्रन्थ

यहाँ मूल ग्रन्थों का क्रम संस्कृत वर्णमाला की ध्वनि के अनुसार निर्धारित किया गया है। अतः संस्कृत, हिन्दी व अंग्रेजी की प्रविष्टियाँ एक साथ ही की गयी हैं।

❖ ***अथर्ववेद*** – संपा० – सरस्वती, दयानन्द, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली, वि०सं० 1934

❖ ***अष्टाध्यायी*** – पाणिनि, व्या० – झा, नरेश, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2006

❖ ***आर्यभटीयम्*** – आर्यभट, व्या० – केने, एच., ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1874

❖ ***Aryabhatiya*** **–** Aryabhata, With the Commentary of Bhaskara and Someavara, edited by Shukla, Kripa Shankar, Indian National Science Academy, New Delhi, 1976

❖ ***अग्निपुराण*** – व्या० – झा, तारिणीश, त्रिपाठी, घनश्याम, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1998

❖ ***आथर्वण-ज्योतिषम्*** – संपा० – दत्त, भागवद, मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर, 1924

❖ ***आपस्तम्भ धर्मसूत्र*** – व्या० – पाण्डेय, उमेशचन्द्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 1969

❖ ***आश्वलायन ग्रह्यसूत्र*** – दी अडयार लाईब्रेरी एण्ड रिसर्च सेन्टर, मद्रास, 1980

❖ ***आश्वलायन श्रौतसूत्रम्*** – नारायणकृत वृत्ति, संपा० – मिश्र, मण्डन, श्रीलालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली, 1984

❖ ***ईश्वरप्रतिभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी*** – अभिनवगुप्त, संपा० – शास्त्री, मधुसूदन कौल, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1938

❖ ***ईशावास्योपनिषद्*** – व्या० – शशि तिवारी, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1986

❖ ***ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्*** – व्या० – शर्मा, वासुदेव, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 2002

❖ ***ईशादि नौ उपनिषद्*** – व्या० – गोयन्दका, हरिकृष्ण दास, गीता-प्रेस, गोरखपुर, वि०सं० 2059

❖ ***ऐतरेय आरण्यक*** – व्या० – कीथ, ए.बी., मास्टर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1981

❖ ***ऐतरेय ब्राह्मण*** – सुखप्रदाख्यवृत्ति सहित, नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1991

❖ ***ऋक्तन्त्र*** – पाण्डेय, सुरेश प्रकाश, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्र०सं० 1991

❖ ***ऋग्वेद*** –
(i) दयानन्द भाष्य, संपा० – मीमांसक, युधिष्ठिर, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत, हरियाणा
(ii) संपा० – मोक्षमूलर (प्रथम भाग), चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, तृ०सं०, 1964
(iii) अनु० व्या० एवं संपा० – कम्बोज, जियालाल (प्रथम मण्डल), विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 2004

❖ ***ऋग्वेद प्रातिशाख्यम्*** – उवट भाष्य, व्या० – वर्मा, वीरेन्द्र कुमार, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, द्वि०सं० 1976

❖ ***ऋग्वेद भाष्य भूमिका*** –
(i) व्या० – पाण्डेय, श्रीकान्त, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, प्र०सं० 1985
(ii) शौनक प्रणीत, संपा० – त्रिपाठी, रामप्रसाद, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1986

❖ ***कवितावली*** – टीका० – शास्त्री, चन्द्रशेखर, साहित्य भवन प्रा०लि०, इलाहाबाद, 1976

❖ ***कामसूत्र*** – वात्स्यायनप्रणीतम्, त्रिपाठी, राधावल्लभः, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 2005

❖ ***कारिकावली*** – विश्वनाथतर्कपञ्चानन, संपा० – शंकरराम, शास्त्री, श्री बाल मनोरमा प्रेस, मद्रास, 1923

❖ ***कपिष्ठल कठ संहिता*** – संपा० – रघुवीर, मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, दिल्ली, 1968

❖ ***कृष्ण यजुर्वेदीय तैतिरीय संहिता*** – संपा० – आर.एल., कश्यप, श्री अरविन्दो कपाली शास्त्री इन्स्टीट्यूट ऑफ वैदिक कलचर, बंगलौर, 2003

❖ ***कौटिल्य अर्थशास्त्रम्*** – कौटिल्य, व्या० – वाचस्पति, गैरोला, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1962

❖ ***Kaushitaki Brahmanam*** **–** Edited by Linder B., Hermann Costenoble, Jena, 1887

❖ ***गोपथ ब्राह्मण भाष्यम्*** – भाषा–त्रिवेदी, क्षेमकरणदास, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1993

❖ ***चरक संहिता*** – अग्निवेश, मुन्शीराम मनोहर लाल पब्लिशर्स प्रा०लि०, मुम्बई, 1941

❖ ***छन्दसूत्रम्*** – भाष्य० – शर्मा, अखिलानन्द, अनु० विरजानन्ददैवकरणि, आचार्य धर्मेन्द्र नाथ शास्त्री, प्राच्यविद्यापीठ, नई दिल्ली, 1965

❖ ***छान्दोग्योपनिषद्*** – भाष्य० – शर्मा, शिवशंकर, हरियाणा साहित्य संस्थान, रोहतक, प्र०सं० 2000

❖ ***जातकाभरणम्*** – ढुण्ढिराज, टीका० – झा, सीताराम, ठाकुर प्रसाद कैलाशनाथ बुक्सेलर, वाराणसी, 2000

❖ ***जातक सारदीप*** – नृसिंह, दैवज्ञ, व्या० – मिश्र, सुरेशचन्द्र, रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2001

- ***ज्योतिर्विदाभरणम्*** – संपा० और अनु० – पाण्डेय, रामचन्द्र, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1988
- ***तन्त्रसिद्धान्तरत्नावली*** – काशी हिन्दू महाविद्यालय, वाराणसी, 1997
- ***तर्कसंग्रह*** – अन्नमभट्टप्रणीतः, व्या० – भार्गव, दयानन्द, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1972
- ***ताण्डव ब्राह्मण*** – सायण भाष्य सहित, भूमिका व टिप्पणि सहित शास्त्री, ए. चिन्नस्वामी द्वारा सम्पादित, वाराणसी, 1936
- ***तैत्तिरीयोपनिषद्*** – सानुवाद शाङ्कर भाष्य सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० 2019
- ***तैत्तिरीय प्रातिशाख्य*** – संपा० – शर्मा, वेङ्कटराम, पाणिनी, नई दिल्ली, 1982
- ***तैत्तिरीय ब्राह्मण*** – सायणभाष्यसहित (3 भाग), आनन्दाश्रम, पुणे, 1934
- ***तैत्तिरीय संहिता*** – संपा० – कश्यप, आर.एल., श्री अरविन्दो कपाली शास्त्री, इंस्टीट्यूट ऑफ वैदिक कलचर, बंगलौर, 2004
- ***नाट्यशास्त्र*** – भरतमुनि, अनु० – घोष, मनमोहन, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, 1951
- ***नारद महापुराणम्*** – टीका० – शास्त्री, चारूदेव, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1984
- ***नारद संहिता*** – नारदऋषि, संपा० – शर्मा, वसतिराम, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, वि०सं० 1994
- ***निरुक्त*** – यास्काचार्य, संपा० – शास्त्री, छज्जूराम, मेहरचन्द्र लछमनदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1985
- ***न्यायमञ्जरी*** – जयन्तभट्ट, संपा० – शुक्ला, सूर्यनारायण, जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, बनारास, 1936
- ***पञ्चविंश ब्राह्मण*** – सायणभाष्यसहित, तिरूपति, 1967
- ***पञ्चसिद्धान्तिका*** – वराहमिहिर, टीका० – शर्मा, सत्यदेव, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2009

❖ ***पारस्कर ग्रह्यसूत्र*** – व्या० – शास्त्री, हरिदत्त (दो खण्डों में), भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1972

❖ ***पाटी गणित*** – श्रीधराचार्यकृत, संपा० – शुक्ला, कृपाशंकर, गणित ज्योतिष विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, 1959

❖ ***पाणिनीय शिक्षा*** – टीका० – दुबे, सत्यप्रकाश, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2004

❖ ***प्रकरण पञ्चिका*** – काशी हिन्दू महाविद्यालय, वाराणसी, 1969

❖ ***प्रश्नोपनिषद्*** – टीका० – शास्त्री, मोतीलाल, राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, 1995

❖ ***प्रश्नमार्ग*** – टीका० – चतुर्वेदी, शुकदेव, रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002

❖ ***प्रशस्तपाद भाष्यम्*** – प्रशस्तपाद, सम्पा० – मिश्र, नारायण, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 1966

❖ ***बृहदारण्यकोपनिषद्*** – व्या० – गिरी, विद्यानन्द, टीका० एवं संपा० – शास्त्री, उमेशानन्द, श्री कैलाश आश्रम शताब्दी समारोह महासमिति, ऋषिकेश

❖ ***बृहत्संहिता*** – वराहमिहिर, टीका० मिश्र सुरेशचन्द्र, रंजन पब्किेशन्स, नई दिल्ली, वि०सं० 1997

❖ ***बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्*** – पराशर, संपा० – शास्त्री, ताराचन्द्र, व्या० शर्मा, कामाख्या प्रसाद, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई, 2005

❖ ***ब्रह्मवैवर्त पुराण*** – संपा० – शास्त्री, जगदीश लाल, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1984

❖ ***ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त*** – संपा० – शर्मा, रामस्वरूप (भाग IV), इंडियन इन्स्टीटयूट ऑफ अस्ट्रानॉमिकल एण्ड संस्कृत रिसर्च, नई दिल्ली, 1966

❖ ***भगवद् गीता*** – भाष्य० – सिद्धान्तालङ्कार, सत्यव्रत, विजय कृष्ण लखनपात, नई दिल्ली

❖ ***भविष्य पुराण*** – संपा० – शर्मा, श्रीराम, संस्कृति संस्थान, बरेली, 1968

❖ ***भाषा परिच्छेद*** – विश्वनाथ, संपा० – शास्त्री, धर्मेन्द्रनाथ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1964

❖ ***मनुस्मृति*** – आचार्य मनुकृत, व्या० – उर्मिला रुस्तगी, जे.पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2005

❖ ***महाभारत*** – संपा० सातवलेकर, दामोदर, स्वाध्याय मण्डल, भारत मुद्रणालय, बलसाड (गुजरात), 1978

❖ ***महाभाष्य*** – पतञ्जलि कृत, अनु० – शास्त्री, चारूदेव, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सं० 2025

❖ ***महासिद्धान्त*** – आर्यभट्टकृत, संपा० – द्विवेदी, सुधाकर, बनारस, 1909

❖ ***मध्यसिद्धान्त कौमुदी*** – श्री वरदराजकृत, टीका० – मिश्र, प्रभाकर, अरविन्दमकरन्द प्रकाशन, वाराणसी, 1989

❖ ***मार्कण्डेय पुराण*** – अग्रवाल, वासुदेवशरण, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1962

❖ ***माण्डूक्योपनिषद्*** – गौड़पादीय कारिका, शाङ्करभाष्य, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० 2029

❖ ***मुण्डकोपनिषद्*** – शाङ्करभाष्य तथा हिन्दी व्याख्या सहित – तिवारी, शशि, मेहरचन्द्र लछमनदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1982

❖ ***मुहूर्त्त चिन्तामणि*** – रामाचार्य, व्या० – जोशी, केदारदत्त, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1982

❖ ***मंत्रायणी संहिता*** – संपा० – सातवलेकर, दामोदर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी (बलसाड), चतुर्थ सं० 1983

❖ ***मैत्रायणी उपनिषद्*** – निर्णय सागर संस्करण, बम्बई, 1930

❖ ***यजुर्वेद*** – सरस्वती, दयानंद, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली, वि०सं० 1934

❖ ***यजुर्वेदीय काठक संहिता*** – संपा० – सातवलेकर, पाददामोदर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी (गुजरात प्रान्त), चतु०सं० 1983

❖ ***याज्ञवल्क्यस्मृत्ति*** – याज्ञवल्क्य, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1985

❖ ***रामायण*** – वाल्मीकि, टीका० – सरस्वती, जगदीश्वरानन्द गोविन्दराम, हासानन्द, आर्य साहित्य भवन, दिल्ली, 1988

❖ ***लगध ज्योतिष*** – लगध, व्या० – शर्मा, पुनीता, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 2008

❖ ***लिंग महापुराण*** – वेदव्यास, अनु० एवं संपा० – मिश्र, द्वारकाप्रसाद शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, वि०सं० 2065

❖ ***लीलावती*** – भास्कराचार्य, व्या० – झा, लषणलाल, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 2001

❖ ***वशिष्ठ संहिता*** – वशिष्ट, संपा० – शास्त्री, गिरजाशङ्कर, ज्योतिष कर्मकाण्ड एवं अध्यात्म शोध संस्थान, प्रयाग, 2006

❖ ***वाक्यपदीयम्*** – भर्तृहरि, व्या० – शर्मा, रघुनाथ, सरस्वती ग्रन्थमाला सीरिज, निर्देशक अनुसंधान संस्थान, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1976

❖ ***वाल्मीकिय रामायण*** – (i) वाल्मीकि, संपा० – आर्य, रवि प्रकाश, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2004

(ii) अनु० – शर्मा, द्वारकाप्रसाद एवं चतुर्वेदी, रामनारायण, लाल पब्लिशर्स और बुक सेलर, इलाहाबाद, 1927

❖ ***वाजसनेयी संहिता*** – महीधर भाष्य सहित, सम्पा० – वेबर, ए., निर्णय सागर संस्करण, बम्बई, 1912

❖ ***वायुपुराण*** – आप्टे, हरिनारायण, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, 1905

❖ ***वेदाङ्ग ज्योतिष*** – व्या० – मिश्र, सुरेशचन्द्र, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2005

❖ ***Vedavyas E.* –** Astronomical Dating of the Mahabharata War, Agam Kala Prakashan, Delhi, 1986

❖ ***Vedanga Jyotish of Lagadha in its RK & Yajus Recensions*** with English trans. & notes by Prof. T.S. Kuppanna Sastri, ed. by K.V. Sharma, India National Science Academy, New Delhi, 1985.

❖ ***वैदिक ज्योतिष*** – संपा० – शास्त्री, गिरिजाशङ्कर, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, वि०सं० 2065

❖ ***वैशेषिक सूत्रम्*** – कणाद, संपा० – मिश्र, नारायण, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1966

❖ ***शतपथ ब्राह्मण*** – (i) भट्ट, जीत राम, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, प्र०सं० 2009
(ii) भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1989

❖ ***शाङ्खायनारण्यकम्***– आन्दाश्रम, पुणे, 1922

❖ ***शाङ्खायन श्रौतसूत्रम्***– आनर्तीयगोविन्दभाष्य सहित (2 भाग), दिल्ली, 1989

❖ ***शुक्लयजुर्वेद संहिता*** – उवट तथा महीधर भाष्य सहित, हिन्दी व्या० – शास्त्री, रामकृष्ण, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1992

❖ ***शुक्रनीति*** – शुक्राचार्य, व्या० – मिश्र, जगदीशचन्द्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्र०सं० 1998

❖ ***श्वेताश्वत्तरोपनिषद्*** – व्या० – शर्मा, तुलसीदास, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 2001

❖ ***षडविंश ब्राह्मण*** – शर्मा, के. रामचन्द्र, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठम्, तिरुपति, 1967

❖ ***सर्वार्थचिन्तामणि*** – वैंकटेश, शर्मा, व्या० – गौड, गुरुप्रसाद चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2006

❖ ***सारावली*** - कल्याणवर्मा, व्या० - चतुर्वेदी, मुरलीधर, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1977

❖ ***सामवेद संहिता*** - टीका० सातवलेकर, दामोदर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, गुजरात, चतु०सं०

❖ ***सामविधान ब्राह्मण*** - शर्मा, बी.आर., केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति, 1964

❖ ***सिद्धान्त दर्पण*** - (i) चन्द्रशेखर सिंह सामन्त कृत, अनु० - अरुण कुमार उपाध्याय, नाग प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1996

(ii) Siddhānta Darpana – Eng. Trans. with Mathematical Explanation and Notes by- Arun Kumar Upadhyaya, Nag Publishers, Delhi, 1988

❖ ***सिद्धान्तबिन्दु*** - मधुसूदन सरस्वती, संपा० - पन्त, श्रीकृष्ण, अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी, 1932

❖ ***सिद्धान्त शिरोमणि*** - व्या० - शर्मा, सत्यदेव (भाग I, II), चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्र०सं० 2007

❖ ***सूर्य सिद्धान्त*** - संपा० - पाण्डेय, रामचन्द्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2004

❖ ***स्थानांगसूत्र*** - व्या० - महाराज, घासीलाल, प्रकाशक श्रीमति विजय कुमारी जैन, श्री हजारी लाल जी जौहरी, दिल्ली, 1965

सहायक ग्रन्थ

हिन्दी

- उपाध्याय, बलदेव – ***प्राचीन भारतीय गणित***, विज्ञान भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978
- उपाध्याय, बलदेव – ***वैदिक साहित्य और संस्कृति***, शारदा संस्थान, वाराणसी, 2006
- उपाध्याय, बलदेव – ***संस्कृत शास्त्रों का इतिहास***, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1994
- ऋषि, उमाशङ्कर शर्मा – ***संस्कृत साहित्य का इतिहास***, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, 1994
- कीथ, ए.बी. – ***संस्कृत साहित्य का इतिहास***, अनुवादक शास्त्री मंगलदेव, मोतीलाल बनारसीदास, 1986
- गैरोला, वाचस्पति – ***संस्कृत साहित्य का इतिहास***, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2003
- गोरखप्रसाद – ***भारतीय ज्योतिष का इतिहास***, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2004
- दत्त, विभूतिभूषण तथा सिंह, अवधेश नारायण – ***हिन्दी गणित शास्त्र का इतिहास***, प्रकाशन ब्यूरो, लखनऊ, 1956
- दशोरा, नंदलाल – ***ब्रह्माण्ड और ज्योतिष रहस्य***, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, 1994
- दाहाल, लोकमणि – ***भारतीय ज्योतिषशास्त्रस्येतिहासः***, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2003
- दीक्षित, शंकरबालकृष्ण – ***भारतीय ज्योतिष***, अनुवादक – झारखण्डी, शिवनाथ, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, 1963

❖ द्विवेदी, कपिलदेव - ***वेदों में विज्ञान***, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर (उ०प्र०), सं० 2006 ई०

❖ पाण्डेय, दीपनारायण - ***प्राचीन भारत के युग चक्र***, उर्मिला पब्लिकेशन्स, जॉनपुर, 1993

❖ प्रभु, पंढरीनाथ - ***भारत में शास्त्रों का उद्गम और विकास***, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998

❖ मुळे, गुणाकर - ***भारतीय अङ्क पद्धति की कहानी***, राजकमल प्रकाशन, पटना, 1975

❖ लाल, बसन्त कुमार - ***समकालीन पाश्चात्य दर्शन***, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2003

❖ शर्मा, अपर्णा- ***भारतीय संवतो का इतिहास,*** एस॰एस॰ पब्लिशर्स, दिल्ली, 1994

❖ शर्मा, कुन्दनलाल - ***वेदाङ्ग वैदिक वाङ्मय का वृहद इतिहास***, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, 1985

❖ शर्मा, विनोद कुमार - ***ज्योतिर्विज्ञानामृतम***, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2004

❖ शर्मा, उमाशङ्कर - ***संस्कृत साहित्य का इतिहास***, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, 1999

❖ शर्मा, के.एल. - ***वेदाङ्ग विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान***, पंजाब, 1983

❖ शास्त्री, नेमिचन्द - ***भारतीय ज्योतिष***, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2004

❖ शुक्ल, दुर्गाप्रसाद - ***ज्योतिषकौमुदी***, मेघ प्रकाशन, दिल्ली, 2004

❖ सिंह, देवकीनन्दन - ***ज्योतिष रत्नाकर***, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2005

English

❖ Chatterjee, Chandi Charan – ***Human Physiology***, Medical Allied Agency, Calcutta, 1998

- Chatterjee, S.K. and Chakravarty, Apurva Kumar – ***Indian Calendar From Post Vedic Period to AD 1900 in History of Astronomy in India,*** Indian National Science Academy
- Holay, Prabhakar Vyankatesh – ***Vedic Astronomy***, Shribabasaheb Apte Smarak Samitee, Nagpur, 1989
- Jeans, James – ***Physics and Philosophy***, Cambridge University Press, 1943
- R.H. Allen – ***Star Names and Their Meanings,*** G.E. Stechert, New york, 1899
- Sewell, Robert – ***The Siddhantas and the Indian Calander,*** Asian Educational Services, New Delhi, 1989
- Subhakaran, K.T. – ***Nakshatra***, Sagar Publications, Delhi, 2004
- Tilak, Bal Gangadhar – ***Vedic Chronology and Vedanga Jyotisha***, Messrs Tilalk Bros, Poona, 1925
- Tilka, B.G. – ***The Orion***, Radhabhai Atmaram Sagoon Bookselleter and Publishers, Bombay, 1893

कोश ग्रन्थ

संस्कृत/हिन्दी

- अमरसिंह – ***अमरकोषः***, व्याख्याकार – शक्तिधर शास्त्री, रामकुमार प्रेस बुक डिपो, लखनऊ, वि०सं० 1975
- आप्टे, वामन शिवराम – ***संस्कृत हिन्दी कोश***, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1933 ई०
- जैन, उदयचन्द्र – ***बृहद संस्कृत-हिन्दी शब्द-कोष (भाग-2)***, न्यू भारती बुक कार्पोरेशन, दिल्ली, प्र०सं० 2006
- देव, राजा राधाकान्त – ***शब्दकल्पद्रुमः***, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 1987
- दैवज्ञ, मुकुन्द – ***ज्योतिषशब्दकोषः***, भुवनेश्वरी प्रिंटिग प्रेस, रतलाम, वि०सं० 2024
- शर्मा, हरिदत्त – ***ज्योतिष विश्वकोश***, सुबोध पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2000

English

- Apte, Vama Shivram – ***The Practical Sanskrit English Dictionary***, Motilal Banarsidass, Delhi, 1985
- Apte, Vama Shivram – ***The Students English Sanskrit Dictionary***, Mrs. Radhabai Atmaram Sagoon Bookseller and Publishers, Bombay, 1893
- Arthur, Macdonell – ***A Sanskrit English Dictionary***, Longmans Green and Co., London, 1893
- Coleman, J.A. – ***The Dictionary of Mythology, Ana-Z of Themes, Legends and Heroes***, Arcturus Publishing Limited, London, 2007
- Dowson, John – ***A Classical Dictionary of Hindu Mythology and Religion, Geography, History and Literature***, Trubner and Co., London, 1879

- ***Encyclopedia Britannica,*** Vol.- III, Japan, 1967
- ***Oxford Dictionary***, Oxford University Press, New York, 2003.
- Runes, Dagobert D. – ***The Dictionary of Philosophy***, Philosophical Library, New York
- Tanton, James – ***Encyclopedia of Mathematics***, Facts on File, New York, 2005
- Webster, Thomas – ***Illustrated Oxford Dictionary***, Oxford University Press, New York, 2006

Websites

- http://www.ulib.org
- http://www.wikipedia.org
- http://www.tamilbrahman.org